X92 1117

श्री हरिदास संस्कृत ग्रन्थमाला २७०

195

॥ श्रीः ॥

विद्यापरिणयनम्

'प्रकाश' हिन्दी व्याख्योपेतम्

व्याख्याकारः
आचार्य रामचन्द्र मिश्रः

कृत सीरीज आफिस, वाराणसी-१

1117

LIBRARY
Rashtriya Sanskrit Sansthan
Shastri Bhawan, New Delhi.

R. SK. S. LIBRARY
Acc. No. 117
Class No.

॥ श्रीः ॥

हरिदास संस्कृत ग्रन्थमाला

२७०

आनन्दरायमखिविरचितं

विद्यापरिणयनम्

'प्रकाश' हिन्दी व्याख्योपेतम्

व्याख्याकारः

आचार्य रामचन्द्र मिश्रः

(अध्यापक : राजकीय संस्कृत कालेज, पटना)

चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी-१

१९६७

प्रकाशक : चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी
मुद्रक : विद्याविलास प्रेस, वाराणसी
संस्करण : प्रथम, वि० सं० २०२४
मूल्य : ४-५०

B. SK. S. LIBRARY
Acc. No. 1117
Class No.

© The Chowkhamba Sanskrit Series Office,
P. O. Chowkhamba, P. O. Box 8,
Varanasi-1 (India)
1967
Phone : 3145

THE
HARIDAS SANSKRIT SERIES
270

VIDYĀPARINAYANA

OF

ĀNANDARĀYA MAKHĪ

Edited with

'Prakāśa' Hindi Commentary

By

Ācārya Rāmchandra Miśra
Prof. Govt. Sanskrit College, Patna.

THE
CHOWKHAMBA SANSKRIT SERIES OFFICE
VARANASI-1
1967

First Edition
1967
Price Rs. 4-50

प्राक्कथन

नाटक साहित्यकी प्राचीनता

भारतीय नाटक साहित्य विचारधारा तथा विकासक्रममें मूलतः स्वतन्त्र है इस बातको अब सभी आलोचक मानने लग गये हैं। वैदिक साहित्यकी समीक्षासे पता चलता है कि वैदिककालमें नाटकके सभी अङ्गों—संवाद, सङ्गीत, नृत्य, एवं अभिनयकलाका किसी न किसी रूपमें अस्तित्व था। ऋग्वेदमें यम-यमी, उर्वशी-पुरूरवा और सरमा-पणिके संवादात्मक सूक्तोंमें नाटकीय संवादका तत्त्व वर्त्तमान है। सामवेदकी संगीतप्रधानता अतिप्रसिद्ध है। आलोचकोंका अनुमान है कि ऐसे संवाद ही कालान्तरमें परिमार्जित होकर नाटकोंके रूपमें परिणत हुए। रामायण, महाभारतकालमें नाटकका स्पष्ट और स्पष्ट उल्लेख पाया जाता है। विराटपर्वमें रङ्गशालाका स्पष्ट उल्लेख हुआ है। नटशब्दका भी वहाँ प्रयोग किया गया है जिसका अर्थ श्रीधरस्वामीने 'नवरसाभिनयचतुर' किया है। हरिवंशमें रामायणकी कथापर आधारित एक नाटकके खेले जानेका वर्णन आया है। रामायणमें भी 'नट', 'नर्त्तक', 'नाटक', 'रङ्गमञ्च' आदिका वर्णन स्थान-स्थानपर मिलता है। रामायणमें अभिनेताके अर्थमें 'कुशीलव' शब्दका प्रयोग भी पाया जाता है। महावैयाकरण पाणिनिने 'पाराशर्यशिलालिभ्यां भिक्षुनटसूत्रयोः' इस सूत्रमें नट सूत्रशब्दसे नाट्य-शास्त्रका स्मरण किया है।

इन सारी बातोंपर ध्यान देनेसे स्पष्ट हो जाता है कि उनके पूर्व ही अनेक नाटक रचे जा चुके होंगे, जिन नाटकोंके बाद इन नटसूत्रोंकी रचना हुई होगी, जिन्हें पाणिनिने पूर्वनिर्दिष्ट सूत्रमें स्मरण किया है। लक्ष्य ग्रन्थोंको देखकर ही लक्षण ग्रन्थ बनते हैं अतः नटसूत्रोंसे पूर्वमें नाटकोंका अस्तित्व मानना होगा। इस तरह हम देखते हैं कि संस्कृत नाटक साहित्यकी परम्परा अतिप्राचीन है।

प्राचीन पद्धतिके अनुसार विचार करनेसे भी नाटक साहित्यकी प्राचीनता सिद्ध होती है। भरतने अपने नाट्यशास्त्रमें लिखा है:—

"महेन्द्रप्रमुखैर्देवैरुक्तः किल पितामहः।
क्रीडनीयकमिच्छामो दृश्यं श्रव्यं च यद् भवेत॥
न वेदव्यवहारोऽयं संश्राव्यः शूद्रजातिषु।
तस्मात्सृजापरं वेदं पञ्चमं सार्ववर्णिकम्॥

एवमस्त्विति तानुक्त्वा देवराजं विसृज्य च।
सस्मार चतुरो वेदान् योगमास्थाय तत्त्ववित्॥
धर्म्यमर्थ्यं यशस्यं च सोपदेशं ससंग्रहम्।
भविष्यतश्च लोकस्य सर्वकर्मानुदर्शकम्॥
सर्वशास्त्रार्थसम्पन्नं सर्वशिल्पप्रदर्शकम्।
नाट्यसंज्ञामिमं वेदं सेतिहासं करोम्यहम्॥
एवं सङ्कल्प्य भगवान् सर्ववेदाननुस्मरन्।
नाट्यवेदं ततश्चक्रे चतुर्वेदाङ्गसम्भवम्॥
जग्राह पाठ्यमृग्वेदात् सामभ्यो गीतमेव च।
यजुर्वेदादभिनयान् रसानाथर्वणादपि॥
वेदोपवेदैः सम्बद्धो नाट्यवेदो महात्मना।
एवं भगवता सृष्टो ब्रह्मणा लक्षितात्मकम्॥
आज्ञापितो विदित्वाहं नाट्यवेदं पितामहात्।
पुत्रानध्यापयं योग्यान् प्रयोगं चास्य तत्त्वतः॥
एवं प्रयोगे प्रारब्धे दैत्यदानवनाशने।
अभवन् क्षुभिताः सर्वे दैत्या ये तत्र सङ्गताः॥
देवतानामृषीणाञ्च राज्ञामथ कुटुम्बिनाम्।
कृतानुकरणं लोके नाट्यमित्यभिधीयते॥"

शारदातनयने भी अपने 'भावप्रकाशन' नामक प्रसिद्ध ग्रन्थमें लिखा है :—

"कल्पस्यान्ते कदाचित्तु दग्ध्वा लोकान्महेश्वरः।
स्वे महिम्नि स्थितः स्वैरं नृत्यन्नानन्दनिर्भरम्॥
मनसैवासृजद्विष्णुं ब्रह्माणं च महेश्वरः।
नियोगाद् देवदेवस्य ब्रह्मा लोकानथासृजत्॥
दृष्ट्वा च देवदेवस्य पुरावृत्तमथास्मरत्।
दिव्यं चारित्रमेशं मे कथमप्यत्र तामियात्॥
इति चिन्तापरे तस्मिन्नभ्यगान्नन्दिकेश्वरः।
स नाट्यवेदमध्याप्य सप्रयोगं चतुर्मुखम्॥
उवाच वाक्यं भगवान् नन्दी तच्चिन्तितार्थवित्।
नाट्यवेदोपदिष्टानि रूपकाणि च यानि तु॥
विधाय तेषामेकन्तु रूपकं लक्षणान्वितम्।
भरतेषु प्रयोज्यं तत्त्वया सम्यग् विजानता॥
तस्मिन् प्रयुक्ते भरतैर्भावाभिनयकोविदैः।

प्राक्तनानि च कर्माणि प्रत्यक्षाणि भवन्ति ते ॥
एवं ब्रुवन्तरधाच्छन्दी स भगवान् प्रभुः ।
श्रुत्वैतद्वचनं प्रीतो ब्रह्मा देवैः समन्वितः ॥
ततस्त्रिपुरदाहाख्ये कदाचिद् ब्रह्मसंसदि ।
प्रयुज्यमाने भरतैर्भावाभिनयकोविदैः ॥
तदेतत् प्रेक्षमाणस्य मुखेभ्यो ब्रह्मणः क्रमात् ।
वृत्तिभिः सह चत्वारः सङ्गाराद्या विनिर्गताः ॥"

उपर्युक्त समीक्षा तथा उद्धरणोंसे यह असन्दिग्ध रूपमें कहा जा सकता है कि संस्कृत नाटक साहित्यने अपने क्रमबद्ध विकासमें वैदिक वाङ्मय, इतिहास एवं पुराणोंसे सहायता एवं प्रेरणा पाई है। इसमें भी सन्देहका स्थान नहीं है कि संस्कृत नाटकोंके विकासमें पर्याप्त समय लगा होगा।

कुछ पाश्चात्य विद्वानोंका कहना है कि भारतीय नाटक साहित्य ग्रीक नाटकोंसे प्रभावित है, उनका तर्क है कि सिकन्दर बड़ा नाटकप्रिय राजा था, उसके मनोरञ्जनार्थ नाटकोंका प्रचुर अभिनय हुआ करता था। भारतमें आनेवाले अन्य ग्रीक राजाओंकी सभामें भी नाटकका काफी प्रचार था, इसका प्रभाव संस्कृत नाटक साहित्य पर पड़ा, किन्तु भारतीय प्रतिभाने ग्रीक नाटकोंके प्रभावको आत्मसात् कर लिया।

जहाँ तक विचार का संबन्ध है इस बातमें कुछ तथ्य नहीं मालूम पड़ता है। जैसा कि पहले कहा गया है, जब हम भारतीय नाटक साहित्यको वेदों पर आधारित मानते हैं तब उस पर ग्रीक नाटकोंके प्रभावकी कल्पना क्यों की जाय? यदि हम भारतीय नाटक साहित्यका विकास वेदमूलक मानते हैं तब तो वह स्वतन्त्र भी हो सकता है, उसपर ग्रीक-प्रभावकी कल्पना कैसे प्रमाणित हो सकेगी? ग्रीक नाटकोंके साथ भारतीय नाटकोंके तुलनात्मक अध्ययनसे भी इनका अवान्तर भेद ही सिद्ध होता है। कुछ लोगोंने भारतीय नाटकोंमें 'जवनिका' शब्दका प्रयोग देखा, उसका शुद्धीकरण करके 'यवनिका' रूप माना, और इसी 'यवनिका' शब्दके आधार पर कहना प्रारम्भ कर दिया कि भारतीय नाटक साहित्य पर यवनदेश यूनानका प्रभाव पड़ा है। यह कथन भी नितान्त भ्रमपूर्ण है, यवनिका नहीं, जवनिका शब्द ही शुद्ध रूप है, यह द्रुतगामी वस्त्रखण्डोंसे बनी होने के कारण 'जवनिका' कही जाती है। राजशेखरने जवनिका शब्दका प्रयोग किया है, उनके प्राकृत प्रयुक्त जवनिका शब्दका संस्कृत संस्करण 'यवनिका' बनाकर इन स्वयंभू संस्कृतज्ञोंने यूनानके संबन्धका आविष्कार कर डाला। वस्तुतः संस्कृत तथा प्राकृतमें भी 'जवनिका' शब्द ही है। इस तरहके अज्ञानमूलक

तर्ककी और क्या आलोचना की जाय। भारतीय रङ्गमञ्चकी व्यवस्था-पूर्णता भी यूनानी प्रभावकी चर्चाके विपरीत है। यूनानके नाटक जब खुले आकाशमें खेले जाते थे, तब भी भारतका रङ्गमञ्च व्यवस्थित था, जिसका प्रभाव जावा, सुमात्रा, प्रभृति देशोंके नाटक पर पड़ा।

संस्कृत नाटकका प्रारम्भ

संस्कृतमें नाटकोंकी संख्या बहुत अधिक नहीं है, परन्तु वह बहुत कम भी नहीं है। शताधिक नाटककार संस्कृतमें गिनाये जा सकते हैं। संस्कृत नाटककारोंमें सर्वप्रथम नाटककार कौन है इस प्रश्नका समाधान सरल नहीं है। इसका उत्तर यदि दिया जाय कि भास ही सर्वप्रथम संस्कृत नाटककार हुए तो प्रायः यह उत्तर अधिक लोगोंको ठीक मालूम पड़ेगा।

'ल्हडरसन' महोदयका कथन है कि सर्वप्रथम संस्कृत नाटककार 'अश्वघोष' हैं। 'ल्हडरसन'ने 'तुर्फान' नगरमें अश्वघोषके तीन नाटक प्राप्त किये थे, जिनमें एकका नाम 'शारिपुत्रप्रकरण' था। यह छः अङ्कोंका नाटक है, इसमें शारिपुत्र मौद्गल्यायनकी प्रव्रज्या का वृत्तान्त वर्णित है। दूसरा और तीसरा नाटक अधूरा है। इन नाटकोंकी भाषा संस्कृत है। कालिदासको ही सर्वप्रथम नाटककार माननेवाले लोगोंकी भी कमी नहीं है। यह भी हो सकता है कि कालिदाससे पहलेके बने नाटक इन दिनों अप्राप्य हो गये हों और अब कालिदासके नाटक ही आदिम नाटक कहे जानेके अधिकारी हो गये हों।

संस्कृतमें नाटक समृद्धि

संस्कृत भाषामें लिखे गये नाटकोंकी संख्या प्रचुर है यह बात कही जा चुकी है। केवल संख्याकी दृष्टिसे ही नहीं, नाटकमें अपेक्षित अन्यान्य गुणोंकी दृष्टिसे भी संस्कृत नाटक साहित्यको समृद्ध माना जाता है। जिस प्रकार हमारे भारतवर्षकी समृद्धताकी सूचना व्यास, वाल्मीकि, कालिदास, माघ आदिकी काव्यराशिसे प्राप्त होती है उसी तरह संस्कृतके नाटक शाकुन्तल, रत्नावली आदि भी नितान्त समृद्ध हैं। नाटकोंकी साजसज्जा, पात्रोंकी वेशभूषा, स्थानविशेषकी कल्पना, परिस्थिति-विशेषकी उपस्थापना आदि बातें ऐसी होती हैं जिनसे समृद्ध नाटक तात्कालिक समाजकी समृद्धिका अनुमान करानेमें सहायक होती हैं। इस दृष्टिसे संस्कृतके नाटक नितान्त समृद्ध कहे जा सकते हैं।

संस्कृत नाटकोंके प्रभेद

अभिनेय साहित्यका प्रधान अङ्ग नाटक ही हैं। यद्यपि शास्त्रानुसार उनका मुख्य नाम रूपक है—'रूपारोपात्तु रूपकम्' रूपक शब्द ही सभी अभिनेय

काव्योंका परिचायक है, परन्तु आपामर साधारणजन रूपकमात्रको नाटक कह लेते हैं। संस्कृतभाषा-निबद्ध अभिनेय साहित्य—

"नाटकमथप्रकरणं भाण-व्यायोग-समवकार-डिमाः।
ईहामृगाङ्कवीथ्यः प्रहसनमिति रूपकाणि दश॥"

इन दश विभागोंमें विभक्त है, परन्तु इनमें सर्वाधिक समृद्ध नाटक ही है। अन्यान्य अङ्गोंपर उतना साहित्य नहीं प्रस्तुत किया गया है जितना नाटक पर।

नाटकमें शृङ्गार तथा वीररसका प्राधान्य अपेक्षित है—'एक एव भवेदङ्गी शृङ्गारो वीर एव वा। अङ्गमन्ये रसाः सर्वे'। इनके भाव प्रधानतः दो दशाओंमें अधिक आस्वाद गोचर होते हैं—उत्कर्षता एवं माधुर्य। माधुर्यके आस्वादनार्थ किये गये प्रयास शृङ्गाररसप्रधान नाटकोंके रूपमें और उत्कर्षताके आस्वादनार्थ किये गये प्रयास वीररसप्रधान नाटकोंमें प्रथित होते हैं।

संस्कृतमें लिखे गये नाटकोंके प्राचीन प्रभेद दो ही थे, शृङ्गारप्रधान अथवा वीरप्रधान। बादमें चलकर संस्कृतके नाटक कुछ दूसरी दिशाकी ओर भी मुड़े। यद्यपि यह मुड़ना उनके ह्रासका परिचायक हुआ पर मुड़े वह अवश्य।

पण्डितोंने जब देखा कि वीर तथा शृङ्गार पर आधारित नाटकोंमें कुछ नई बात नहीं आ रही है, और इतने परिश्रमसे संपादित शास्त्रीय तत्त्व सरलताके साथ जनमनतक नाटकोंके द्वारा ही पहुँच सकते हैं, तब उन लोगोंने एक नये प्रकारके नाटकका निर्माण करना प्रारम्भ किया, जिसे शास्त्रीय नाटक कहा जा सकता है। इस तरहके शास्त्रीय नाटकके प्रणयनके प्रणयनकी दिशामें सबसे आगे आनेवाले हुए 'प्रबोधचन्द्रोदय' प्रणेता 'श्रीकृष्णमिश्र'।

प्रतीकात्मक नाटक

गम्भीर दार्शनिक विचारधाराको आधार बनाकर एक मनोरञ्जक नाटक प्रस्तुत करना कठिन है, किन्तु यह सत्य है कि इस तरहकी कठिनाईके रहते हुए भी श्रीकृष्णमिश्रकी रचना सफल हुई। श्रीकृष्णमिश्रने मानव आत्माके शाश्वत सङ्घर्षका जो नाटकीय चित्र उपस्थित किया वह वास्तवमें मनोहर हुआ। सैद्धान्तिक दृष्टिसे यह नाटक अद्वैत वेदान्त एवं विष्णुभक्तिका समन्वयात्मक रूप उपस्थित करता है किन्तु कहीं भी दार्शनिक विषयोंके कारण नीरसता नहीं आने पाई है। यद्यपि इस नाटकमें सूक्ष्मभावोंको स्पष्ट करनेके लिये उनका मानवीकरण किया गया है तथापि कथावस्तु सर्वत्र सरल एवं सरस है, बौद्धिक व्यायाम प्रचुर प्रकाशित नहीं है।

किसी भावविशेष या शास्त्रीयतत्त्वको गतिशील मनुष्यकी तरह चित्रित करनेके प्रयासमें सफलता प्राप्त करना कठिन कार्य है। परिपक्वशास्त्रीय ज्ञान और

प्रौढकविस्वशक्ति यदि वरदानके रूपमें प्राप्त हो, तभी इस दिशामें सफलता प्राप्त हो सकती है। यही कमी रह जाती है कि इस तरहके नाटकोंमें चित्रित पात्र केवल बुद्धिवेद्य होकर ही रहजाते हैं, उनकी काल्पनिक मानवता हमको सहानुभूति प्रकट करने के लिये बाधित नहीं कर पाती है।

इस तरहके काल्पनिक भावप्रधान या शास्त्रीयतत्त्व-प्रधान नाटक जो संस्कृतमें उपलब्ध होते हैं उनकी संख्या बहुत बड़ी नहीं है। छायानाटक, प्रतीकनाटक या भावनाटक जो कहें, कबसे प्रारम्भ हुई यह भी विचारणीय है। यद्यपि अश्वघोष द्वारा निर्मित कही जानेवाली अपूर्णरूपमें प्राप्त कृतियोंमें असूर्त्तभावों तथा गुणोंका मानवीकरण देखा जाता है परन्तु उन ग्रन्थोंकी इतनी कम मात्रा उपलब्ध हुई है कि उसके आधार पर कुछ कह सकना संभव नहीं है।

इसी दार्शनिक भावको नाटकीयरूप देना कठिन हो सकता है परन्तु श्रीमद्भागवत (स्कन्ध ४ अध्याय २५-२८) में पुरञ्जनकी दार्शनिक प्रतीक कथाओंने इस दिशामें संकेत किया हो ऐसी संभावनाकी जा सकती है। संस्कृतके विशाल साहित्य भण्डारमें इस पुरञ्जनवृत्तके समान अन्यान्य वृत्त भी हो सकते हैं। इस तरहकी दार्शनिक पृष्ठभूमिका अवलम्बन करके उगनेवाले नाटकोंमें सर्वप्रथम रूपमें उपलभ्यमान नाटक 'प्रबोधचन्द्रोदय' ही है। इसका रचनाकाल ११ शतक है। यहाँ दृढतापूर्वक यह नहीं कहा जा सकता है कि श्रीकृष्णमिश्र एक प्रचलित परम्पराको आगे बढ़ा रहे थे अथवा नई परम्पराको जन्म देरहे थे। प्रवाह विपरीत तथा कष्टसाध्य होनेके कारण इस तरहके नाटक अधिक संख्यामें नहीं बन सके। फिर भी इस दिशामें किये गये प्रयास केवल नवीनताके लिये ही नहीं, प्रतीकात्मकताके लिये भी प्रशंसनीय हैं। इस तरहके नाटकोंके निर्माणमें

---

१. श्रीमद्भागवत चतुर्थ स्कन्धमें २५ से २८ अध्याय तक पुरञ्जन और पुरञ्जनीका वृत्त वर्णित है, वह पुरञ्जन पुरुष तथा पुरञ्जनी बुद्धिवृत्ति ही है, देखिये :—

'इत्थं पुरञ्जनं सम्यग् वशमानीय विभ्रमैः। पुरञ्जनी महाराजं रेमे रमयती पतिम्॥'

२९ वें अध्यायमें इसका विवरण भी वहीं दे दिया गया है :—

'पुरुषं पुरञ्जनं विद्याद् व्यनक्त्यात्मनः पुरम्।
'बुद्धिं तु प्रमदां विद्यात्' 'सखाय इन्द्रियगणाः'
'सख्यस्तद्वृत्तयः'
'बुद्धेर्द्वारं मनोविद्याद्दुभयेन्द्रियनायकम्'
'पञ्चालाः पञ्चविषयाः'

इस प्रकार आप देखते हैं कि शास्त्रीयतत्त्वोंको पात्र बनाकर काव्यकी सृष्टि श्रीमद्भागवतमें की गई है।

केवल सहज कविरवसे काम नहीं चलता है, इसके लिये सतर्क बौद्धिक प्रवृत्ति अपेक्षित होती है, उसके बिना जीवनसे असंबद्ध भावोंका स्थानोचित मानवीकरण संभव नहीं होता है।

इस तरह की रचनाओंमें सबसे बड़ा दोष यह होता है कि वह अमूर्तभाव या शास्त्रीय पदार्थ जिनका मानवीकरण किया जाता है इतने स्फुटीभूत व्यक्ति बन जाते हैं कि उनका उद्देश्य ही समाप्त हो जाता है, या उनमें इतना कम व्यक्तित्व आ पाता है कि वह केवल जीवनहीन भावमात्र रह जाते हैं। बहुधा वह जीवित व्यक्तिसे अधिक सैद्धान्तिक सूत्र ही बने रह जाते हैं।

यह सत्य है कि नाट्यशास्त्रीय सिद्धान्तोंके अनुसार ही इनके आकार-प्रकार निर्धारित किये जाते हैं, एवं मान्य नियमोंके पालनका प्रयास भी प्राणपणसे किया जाता है, किन्तु फिर भी कुछ ऐसा लगता है कि सामान्य नाटकोंकी श्रेणीमें नाम लिखानेके लिये ही यह सब हो रहा है। अधिकतर ऐसे नाटक शास्त्रीय ग्रन्थ होकर ही रह जाते हैं।

प्रतीकात्मक नाटक परिमाण

जिन प्रतीकात्मक नाटकोंके सम्बन्धमें हम चर्चा कर रहे थे, उनकी संख्या संस्कृत साहित्यमें बहुत अधिक नहीं है, उनमें कुछ का नाम है—

१. प्रबोध-चन्द्रोदयः, २. संकल्प-सूर्योदयः, ३. भावना-पुरुषोत्तमः, ४. महा-मोहपराभवः, ५. अमृतोदयम्, ६. विद्यापरिणयनम्, ७. जीवानन्दम्, ८. भर्तृहरि-निर्वेदः आदि।

'विद्यापरिणयन' नाटक

'विद्यापरिणयन' एक प्रतीक नाटक है जिसमें आध्यात्मिक पदार्थ पात्र बनाये गये हैं। यह सात अङ्कोंका नाटक है, 'पञ्चादिका दशपरास्तत्राङ्काः' के अनुसार नाटक होनेके लिये पञ्चाधिक अङ्क अपेक्षित हैं।

"नाटकं ख्यातवृत्तं स्यात्पञ्चसन्धिसुसंयुतम्।
विलासर्घ्यादि-गुणवद्युक्तं नानाविभूतिभिः॥
सुखदुःखसमुद्भूति-नानारस-निरन्तरम्।
पञ्चादिका दशपरास्तत्राङ्काः परिकीर्त्तिताः॥
प्रख्यातवंशो राजर्षिर्धीरोदात्तः प्रतापवान्।
दिव्योऽथ दिव्यादिव्यो वा गुणवान्नायको मतः॥
एक एव भवेदङ्गी शृङ्गारो वीर एव वा।
अङ्गमन्ये रसाः सर्वे कार्यं निर्वहणेऽद्भुतम्॥"

नाटकका यह लक्षण 'विद्यापरिणयन' में अंशतः सङ्गत होता है। नायक दिव्य है या अदिव्य इत्यादि प्रश्न ही नहीं उठता है क्योंकि नायक तो इसमें जीवराज है आप उसे दिव्य कैसे प्रमाणित करेंगे।

'विद्यापरिणयन'की पृष्ठभूमि

'विद्यापरिणयन'के प्रणेता मूलतः शैवागमके माननेवाले अद्वैत वेदान्ती थे, उन्होंने इस ग्रन्थमें शैवागम-समर्थित मोक्षका स्वरूप तथा उसकी प्राप्तिका उपाय बताया है। 'शैवागम' द्वारा प्रतिपादित मोक्षोपाय शास्त्रीय पद्धतिसे प्रतिपादित होनेपर उतना हृदयङ्गम नहीं होता, अतः उन्होंने इस सरस पद्धतिका अवलम्बन किया। यद्यपि इसके लिये वह 'शैवागम मोक्षवाद' या इसी तरहके किसी और नामसे लिखित ग्रन्थद्वारा भी यह कार्यकर सकते थे, परन्तु उन्होंने सोचा होगा कि नाटकके रूपमें लिखा गया ग्रन्थ अधिक लोकग्राह्य होगा, साधारण संस्कृतज्ञ भी मनोरञ्जनके साथ-साथ शास्त्रीय तत्त्वोंका अवगम कर सकेंगे। नाटकमें आये हुए पदार्थ अधिक स्पष्टताके साथ दर्शकों तथा वाचकोंके हृदयमें उतर सकेंगे, इसी उद्देश्यसे उन्होंने इस 'विद्यापरिणयन' नामक नाटककी रचना की है।

'विद्यापरिणयन' की कथावस्तु

अविद्याके वशवर्ती जीवराजको संसार-बन्धनमें पड़ा देखकर शिवभक्तिको इच्छा होती है कि किसी तरह इसका कष्ट मिट जाता तो अच्छा होता। जीवराज अविद्याके प्रलोभनोंमें तथा अविद्याकी सहचरी प्रवृत्ति तथा विषयवासनाके छल-व्यापारोंमें इस प्रकारसे फँसा हुआ था कि उसे उससे छूटनेके लिये उपाय ही नहीं सूझते थे। जीवराजके मर्मसचिव चित्तशर्माने सोचा कि जब तक जीवराजकी अविद्यापर आसक्ति बनी रहेगी तब तक इसका उद्धार असम्भव है। वह आसक्ति तभी छूटेगी जब इसे दूसरी सुन्दरी विद्यासे प्रेम होगा। अतः यही उपाय किया जाय।

(प्रथम अङ्क)

अविद्याकी सहचरियों असूया, प्रवृत्ति आदिको कुछ सन्देह हो गया कि जीवराज किसी दूसरी सुन्दरी पर आसक्त होकर अविद्यासे विरक्त-सा होता जा रहा है। उन लोगोंने आपसमें मन्त्रणा करके तय किया कि किसी तरह जीवराजको विरक्त होनेसे रोका जाय। विषयवासना, प्रवृत्ति आदिने अविद्याके प्रभावकी स्तुतिकी। अविद्याने रहस्यका पता पानेके लिये प्रवृत्तिको भेजा। वह पता लगाकर आई और उसने अविद्याको समझाया कि कुछ गोलमाल है अवश्य, किन्तु तुम ऊपर-ऊपरसे अजान बनकर भरसक कोशिश करती रहो कि जीवराज दूसरी सुन्दरी विद्याकी तरफ झुकने न पावे।

(द्वितीय अङ्क)

इधर शिवभक्तिकी प्रेरणासे निवृत्तिने जीवराजको विद्याका चित्र दिखला दिया, जीवराज विद्याके वियोगमें बराबर खिन्न रहने लगा। एकान्तमें बैठकर जीवराज विद्याकी चिन्तामें कुछ कह रहा था जिसे अविद्याने सुन लिया, अविद्याने सारी बात अपनी सखियोंसे कही, उन लोगोंने कहा कि कोई डर नहीं, विषय-वासनाने यथाशक्ति राजाको समझाया भी, परन्तु चित्तशर्माने उसका प्रयास व्यर्थ कर दिया।

(तृतीय अङ्क)

चित्तशर्माने देखा कि अविद्याको बिना धोखा दिये हुए जीवराजको वेदारण्य तक ले जाना कठिन है, अतः उसने अविद्याको समझाया कि इन दिनों महाराज किसी अज्ञात कारणवश उदास रहा करते हैं, अतः आप उनके साथ वेदारण्य चलें, उनका मन बहल जायेगा, फिर आपके प्रति उनकी आस्था भी बढ़ जायगी। उधर विद्याको कह दिया गया था कि जीवराजसे वेदारण्यमें साक्षात्कार करे। तदनुसार अविद्या अपने अनुचर वर्गोंको साथ लेकर जीवराजके साथ वेदारण्यमें आ गई।

(चतुर्थ अङ्क)

वेदारण्यमें जाकर अविद्या किंकर्तव्य विमूढ़ हो गई। उसने अपने अनुचर काम-क्रोध आदिको स्मरण किया। उन लोगोंने राजाको अपने-अपने वशमें करनेकी चेष्टा की, परन्तु चित्तशर्माने उनके प्रयासको व्यर्थ बनाया। समय पर चित्तशर्माने राजाको विद्याके दर्शन भी करा दिये। यह खबर अविद्याको मिली तो उसका दिल दहल उठा। उसने बहुत क्षोभ व्यक्त किया।

(पञ्चम अङ्क)

विद्याको देखनेके बादसे राजा अधिक उदास रहने लगा। इधर अविद्याके मनकी भी दशा चिन्तामय रहने लगी। उसने जीवशर्माको अपने पक्षमें लाना चाहा। चित्तशर्माने चतुरतासे काम लिया। उसने अविद्याको समझा दिया कि आप कुछ दिनों तक सपरिवार कोपागारमें निवासकरें, राजा आपको मनाने जांय तब भी आप नहीं मानें, इसके बाद मैं सब ठीक कर लूँगा। राजा विद्याके संबन्धमें चिन्तित रहने लगा, शिवभक्तिको सारी बातें ज्ञात हुईं उसने तापसोंको भेजा, उन लोगोंने राजाको उपदेश दिया। तापसोंने राजासे कहा कि हमारा आश्रम यहाँसे पासमें ही है, आप वहाँ जाकर देखें। राजाने वहाँ जाकर योगके दर्शन किये। यह सब राजाका रहस्य जानकर अविद्या लौट गई।

(षष्ठ अङ्क)

विविदिषाकी कृपासे निवृत्ति आई, शिवभक्ति तथा विविदिषाकी कृपासे उपनिषद् देवीको निमन्त्रण देकर बुला लिया गया, इसी बीच राजाको स्वप्नमें शिवने महावाक्यका उपदेश भी दे दिया, सभी लोग कल्याणमण्डपमें गये, विद्याके साथ राजाका विवाह सम्पन्न हुआ।

(सप्तम अङ्क)

विद्यापरिणयनके प्रणेता

'विद्यापरिणयन' नामक इस नाटकके प्रणेताके रूपमें 'आनन्दराय मखी' प्रसिद्ध हैं। नाटककी प्रस्तावनामें सामान्यतः जैसे रचयिताका परिचय दिया जाता है उस रूपमें आनन्दरायका परिचय दिया गया है।

'आनन्दराय' नृसिंहाध्वरीके पुत्र तथा त्र्यम्बकदीक्षितके भ्रातृपुत्र थे, साथ ही वह तञ्जोर नगराधीश शरभापरनामक शाहिराजके मन्त्रिप्रवर भी थे। शरभ महापतिका राज्यकाल सतरहवीं शताब्दी (ईशवी) का पूर्वार्द्ध माना जाता है अतः आनन्दराय का समय भी वही माना जा सकता है।

यहाँ एक बात उल्लेखनीय है कि श्रीकृष्णमाचारीने अपने 'History of Classical Sanskrit Literature' नामक ग्रन्थमें लिखा है कि—

"The author of this play 'Vidyaparinayana' was 'Vedakavi' and by him it was attributed to his patron Ananda Roy Peshwa minister of Sarabhoji I and Tukkojee king of Tanjore in the 18th Century. Ananda Roy is referred to by Vancishwar in his Mahesasataka. Vedakavi also wrote 'Jivananda' a play of Similar import."

"अर्थात् 'विद्यापरिणयन' नामक नाटकके रचयिता 'वेदकवि' थे उन्होंने अपनी रचनाको अपने आश्रयदाता आनन्दरायके नामसे ख्यात किया। आनन्दराय तञ्जोर नगराधीश शरभ राजाके मन्त्री थे। उनका समय १८वीं शताब्दीका माना जाता है। वंशीश्वरने अपने महिषशतकमें आनन्दरायकी चर्चाकी है। वेदकविने जीवानन्द नामका एक और इसी तरहका नाटक लिखा था"।

इस लेखसे जो बात कही गई है उसकी पुष्टिमें कोई प्रमाण कृष्णमाचारीने

---

१. "तातो यस्य ..... ख्यातो नृसिंहाध्वरी" (विद्यापरिणयन १ अङ्क)
"यस्य तातानुजन्मापि त्र्यम्बकाभ्यस्तदीक्षितः" (वि० प० १ अङ्क)

नहीं उपस्थित किया है, कोई विरोधी प्रमाण उपस्थित करनेकी क्षमताशालीजन इसका विरोध भी यथेच्छ कर सकते हैं।

'विद्यापरिणयन'की दार्शनिकदृष्टि

'विद्यापरिणयन' एक शैवागम संम्मत मोक्षप्रतिपादक दार्शनिकग्रन्थ है। इस ग्रन्थमें यह बताया गया है जीव अविद्याके प्रभावमें पड़कर संसारमें भटकता रहता है और शिवभक्तिकी प्रेरणासे जब उसे विविदिषा उत्पन्न होती है तब साम्बशिव उसको महावाक्यका उपदेश देते हैं जिसके बाद उसे विद्याकी प्राप्ति द्वारा मोक्ष मिलता है। इस नाटकमें वर्णित मोक्षपद्धति वेदान्तियोंके द्वारा वर्णित मोक्षपद्धतिसे थोड़ी भिन्न है। वेदान्तवाले जहाँ विविदिषाको स्वयं ज्ञानका कारण मानते हैं वहाँ इसमें शिवभक्तिको उसकी प्रेरिका मान लिया गया है। शैवागम एक प्रकारका भक्तिप्रधान मार्ग है।

विद्यापरिणयनका साहित्यिक सौष्ठव

हम यह कह आये हैं कि अमृतोदय एक दार्शनिक नाटक है, दार्शनिक नाटक इसे इसलिये कहा जा रहा है कि इसमें स्वाभिमत दर्शनतत्त्वों को समझानेके साथ शास्त्रीयपदार्थोंका मानवीकरण करके सरसता तथा सरलताके साथ मानवीय भावोंकी अभिव्यक्ति हुई है। इसमें साहित्यिक सौष्ठव उत्पन्न करनेका भरपूर प्रयास किया गया है,—

"तापव्रस्त इवाधुना बहिरितो न स्पन्दते मारुतः
प्राणायामवशेन योगिन इव स्तब्धा इमे पादपाः॥"

ग्रीष्मके मध्याह्न-वर्णनमें लिखा गया यह श्लोकार्ध हेतूत्प्रेक्षाका उत्तम निदर्शन है।

तपोवनके वर्णनमें—

"गोवत्सान् पिबतो निजस्तनमियं व्यालेढि शार्दूलिका
बर्हीं बर्हसमीरणैः सुखयते वाताशिनः पोतकान्।
गृह्णन्तो जरदन्धतापसगणं पाणाविमे वानरा
स्तोयाधारगतागतेषु सुखयन्त्यव्याजमैत्रीकृतः"॥

इस श्लोकको पढ़ते-पढ़ते कादम्बरीका यह गद्यांश याद आ जाता है :—

"वानरकराकृष्टप्रवेश्यमाननिष्कास्यमानजरदन्धतापसगणम्।"

इसी प्रकार सर्वत्र साहित्यापेक्षितगुणके लिये कवि सतर्क हैं। अधिक जाननेकी इच्छा रखनेवाले मूलग्रन्थ पढ़कर आनन्द उठावें।

रामचन्द्र मिश्र

पुरुषपात्र

१ सूत्रधार
२ पारिपार्श्विक
३ जीवराज
४ चित्तशर्मा
५ सत्सङ्ग
६ लोकायतसिद्धान्त
७ वस्तुविचार
८ विवसन
९ बुद्ध
१० सोमसिद्धान्त
११ तान्त्रिक
१२ श्रीवैष्णव
१३ कलि
१४ माध्वसिद्धान्त
१५ पाखण्ड
१६ काम
१७ क्रोध
१८ लोभ
१९ हर्ष
२० मान
२१ दम्भ
२२ संकल्प
२३ तापस
२४ योग
२५ पुराण आदि
२६ साम्बशिव

स्त्रीपात्र

१ नटी
२ शिवभक्ति
३ निवृत्ति
४ अविद्या (देवी)
५ प्रवृत्ति
६ विषयवासना
७ असूया
८ विरक्ति
९ उपासना
१० भक्तियाँ
११ विविदिषा
१२ स्मृति
१३ उपनिषद्
१४ विद्या

विद्यापरिणयनम्

'प्रकाश' हिन्दीव्याख्योपेतम्

प्रथमोऽङ्कः

सत्यज्ञानसुखाद्वयोऽपि बहुधा रूपाणि बिभ्रच्चिरा-
दप्रज्ञेयविलासवैभवनिजाविद्याविधेयीकृतः ।
आनन्दान्विषयोदितानुभवन्भूयः स्वया विद्यया
श्लिष्टः परमार्थभोगमुदितः पायादुमायाः पतिः ॥ १ ॥

किं च—

क्रीडोद्याननिकुञ्जसीमनि सखीचातुर्यतो मिश्रयो-
रुत्कूलप्रणयोदिते सरभसाश्लेषे मिथः प्रस्तुते ।
संमोहस्तिमिता समग्रपुलका विस्रस्तवेद्यान्तरा
वृत्तिः सा शिवयोरपारपरमानन्दा शिवायास्तु वः ॥ २ ॥

सत्यज्ञान तथा सुखस्वरूप होकर भी अनन्त-विलासा अपनी अविद्याके वशमें होकर नाना रूप धारणकरनेवाला, विषयोदित आनन्दोंका अनुभव करते हुए अपनी विद्यासे मिलित होकर परमार्थभोगसे मुदित शिव आपकी रक्षा करें ॥ १ ॥

क्रीडाकाननवर्त्ती निकुञ्जकी सीमापर सखीजनकी चातुरीसे मिलित शिव-पार्वतीके सानुराग परस्पर आलिङ्गन प्रस्तुत होनेपर मोहसे स्तिमित, पूर्णभावसे रोमाञ्चित, वेद्यान्तर-स्पर्शशून्य आनन्दाकारा वृत्ति आपके कल्याणका कारण-होवे ॥ २ ॥

अपि च—

सज्जन्तो मृगतृष्णिकाजलनिधौ मुक्ताजिघृक्षारसाद्-
वन्ध्यापत्यकलादशुक्तिरजताकल्पेषु संकल्पिनः ।
व्यावल्गन्त्यविमर्शिनो यदवधि ज्योतिः परं ज्योतिषां
तत्सेतुर्जगतोऽखिलस्य तमसः पारं परं भातु वः ॥ ३ ॥

अपि च—

प्राग्जन्मीयतपःफलं तनुभृता प्राप्येत मानुष्यकं
तच्च प्राप्तवता किमन्यदुचितं प्राप्तुं त्रिवर्गं विना ।
तत्प्राप्तिश्च यया भवेत्फलवती विश्वोत्तरा शाश्वती
तामद्वैतकलां•कलानिधिकलामौलिर्विधत्तां शिवः ॥ ४ ॥

(नान्यन्ते)

सूत्रधारः—(नेपथ्याभिमुखमवलोक्य ।) मारिष, इतस्तावत् ।

(प्रविश्य ।)

पारिपार्श्विकः—भाव, एषोऽस्मि ।

मुक्ताको ग्रहण करनेकी इच्छासे मृगतृष्णामें आसक्त होनेवाले, वन्ध्यापुत्र स्वर्णकारके द्वारा निर्मित शुक्तिमय रजतके भूषणोंको पानेकी इच्छा रखनेवाले अविवेकी लोग जिस ज्योतिकी सीमातक नहीं पहुंचनेसे मिथ्या आडम्बर किया करते हैं, वह संसारसागरका सेतु ज्योतियोंका भी ज्योति परब्रह्म आपको अन्धकारका पार प्राप्त करावे ॥ ३ ॥

पूर्वजन्मकृत तपस्याके फलस्वरूप मनुष्यभाव प्राप्त होता है, मनुष्यभावके प्राप्त होनेपर त्रिवर्गको प्राप्त करनेके अतिरिक्त क्या उचित हो सकता है ? उस त्रिवर्गकी प्राप्ति जिसके द्वारा सफलताको प्राप्त करती है उस विश्वविलक्षण नित्य अद्वैत कलाको चन्द्रमौलि प्रदान करें ॥ ४ ॥

(नान्दीके अन्तमें)

सूत्रधार—(नेपथ्यकी ओर देखकर) मारिष, इधर आइये ।

(प्रवेश करके)

पारिपार्श्विक—भाव, यह मैं उपस्थित हूं ।

सूत्रधारः—अत्र तञ्जोरनगरे देशान्तरादागताः पौरजानपदा जना भगवत्यास्तावदानन्दवल्लीमन्वाया महोत्सवदिदृक्षया संभीभूताः

सरसकवितानाम्नो हेम्नः कषोपलतां गता
विहरणभुवः षड्दर्शन्या विवेकधनाकराः ।
विदधति तपोलभ्याः सभ्या इमे मम कौतुकं
तदिह हृदयं नाट्येनैतानुपासितुमीहते ॥ ५ ॥

पारिपार्श्विकः—कं पुनः प्रबन्धमवलम्ब्य ।

सूत्रधारः—नन्वस्ति मम वशे सकलशमधनजनहृदयानन्दसमुद्घाटकं विद्यापरिणयनं नाम नवीनं नाटकम् ।

पारिपार्श्विकः—कस्तस्य प्रबन्धस्य कविः ।

सूत्रधारः—विदुत्कविकल्पतरुरानन्दरायमखी । य एष—

गुरुदेवद्विजभक्तो नैमित्तिकनित्यकाम्यकर्मपरः ।
दीनजनाधीनदयो विहरति समरे च विक्रमार्क इव ॥ ६ ॥

सूत्रधार—तञ्जोर नगरमें देश-देशान्तरसे आये हुए लोग भगवती आनन्दवल्लीके महोत्सवको देखनेकी इच्छासे इकट्ठे हुए हैं, सरल कवितारूप सुवर्णकी कसौटीके समान, षड्दर्शनके विहारदेश, विवेकके पात्र, तथा तपस्याके द्वारा प्राप्त होनेवाले ये सभ्यजन मेरे हृदयमें कौतुक उत्पन्न करते हैं । अतः मेरा हृदय इन्हें नाटक दिखलाकर आराधित करना चाहता है ॥ ५ ॥

पारिपार्श्विक—किस नाटकका अवलम्बनकरके आप इनका आराधन करना चाहते हैं ?

सूत्रधार—मेरे हाथमें समस्त शान्तजनोंके हृदयोंको आनन्द प्रदान करनेवाला 'विद्यापरिणयन' नामका नया नाटक विद्यमान है ।

पारिपार्श्विक—उस नाटकका प्रणेता कौन कवि है ?

सूत्रधार—विद्वानों तथा कवियोंके लिये कल्पतरुस्वरूप आनन्दरायमखी, वह गुरुओं, देवों और द्विजोंके भक्त हैं, नित्य-नैमित्तिक तथा काम्यकर्ममें निपुण हैं, दीनजनपर दया करनेवाले तथा युद्धमें विक्रमादित्यके समान विचरण करनेवाले हैं ॥ ६ ॥

यस्य किल—

आनन्दरायमखिनो वाल्मीकेरिव योगिनः ।
इतरापेक्षणात्सारः स्वतः सारस्वतोदयः ॥ ७ ॥

अपि च—

नानापूर्वमहाक्रतुप्रणयनैरध्यात्मसंमर्शनैः
कर्मब्रह्मपथप्रचारसविता षड्दर्शनीवल्लभः ।
तातो यस्य किलैकराजवसुधाधौरंधरीगोष्पतिः
क्षोणीपालकिरीटलालितपदः ख्यातो नृसिंहाध्वरी ॥ ८ ॥

अपि च—

यस्य तातानुजन्मापि यशःपावितदिङ्मुखः ।
त्रिवर्गफलसंपन्नस्त्र्यम्बकामात्यदीक्षितः ॥ ९ ॥
यः स्नातोऽजनि दिव्यसिन्धुसलिले यः स्वात्मविद्याश्रतो
येनाकारि सहस्रदक्षिणमखो यः सद्भिराश्रीयते ।
सोऽयं त्र्यम्बकरायवाजपतिलको विद्वत्कवीनां प्रभो-
र्यत्तातस्य नृसिंहरायमखिनस्तुल्यप्रभावोऽनुजः ॥ १० ॥

इन आनन्दरायमखीकी कविता योगी वाल्मीकि कविकी कविताकी तरह अन्यान्य कवियों द्वारा अवलम्बित होनेसे सारपूर्ण है ॥ ७ ॥

नाना प्रकारके महाक्रतुओंको सम्पादित करने तथा अध्यात्मविषयक विचार करनेमें जिन्हें कर्ममार्ग तथा ज्ञानमार्गके प्रचारमें सूर्य माना जाता है, जो षड्दर्शनोंके प्रेमी हैं, जिनके पिता नृसिंहाध्वरी एकराज नामक राजाके राज्यके बृहस्पति माने जाते थे, और जिनके चरणोंमें इतर राजगण अपने मस्तक अवनत किया करते थे ॥ ८ ॥

जिस आनन्दरायमखीके पिताके छोटे भाई यशसे दिगन्तको पवित्र करनेवाले त्र्यम्बकदीक्षित धर्मार्थकाम सम्पन्न थे ॥ ९ ॥

जिन्होंने गङ्गास्नान किया था, जो अध्यात्मविद्यामें विख्यात थे, जिन्होंने सहस्र दक्षिण यज्ञ सम्पादित किया, जो विद्वानोंके आश्रय थे, यज्ञ करनेवालोंमें अग्रगण्य वह त्र्यम्बकरायमखी विद्वान् कवियोंमें प्रधान जिस आनन्दरायमखीके पिता नृसिंहरायमखीके योग्य अनुज थे ॥ १० ॥

स तावत् 'इदं नाटकमुचितेषु प्रयोक्तव्यम्' इति सबहुमानमस्मद्वशे समर्पितवान्। 'अनेन सुकरमभिरूपपरिषदनुरञ्जनम्' इति ममाध्यवसायः।

पारिपार्श्विकः—भाव,

अपूर्वमप्राकृतसंविधानमुद्घुष्यते नाटकमेतदत्र।
रसानुभूतेरविलम्बहेतोर्निरूप्यतां किंचिदिवेतिवृत्तम्॥ ११॥

सूत्रधारः—युक्तमभिहितम्, श्रूयतां तावत्।

यल्लाभतो वल्लभमस्ति नान्यदात्मा स शेषी सकलागमानाम्।
येनाधिगम्येत तदागमान्तं प्रमेयसर्वस्वमिहेतिवृत्तम्॥ १२॥

पारिपार्श्विकः—भाव, कृष्णमित्रप्रभृतिभिरत्र 'प्रबोधचन्द्रोदयः' इति' 'संकल्पसूर्योदयः' इति, 'भावनापुरुषोत्तमः' इति च न्यग्बन्धि नाम बहुधा प्राचीनैः। किमनेनाभिनवसंरम्भेण।

सूत्रधारः—

क्षुण्णा यद्यपि शास्त्रपद्धतिरसावन्यैः कवीन्द्रैरयं
त्वश्लीलं न तितिक्षते न सहते पात्रेषु चानौचितीम्।

उस आनन्दरायमखीने 'यह नाटक उपयुक्त सभ्योंको दिखलाना' इस अनुरोधके साथ यह नाटक मुझे सौंपा था। मेरा विश्वास है कि इन योग्य सभ्यजनोंका अनुरञ्जन इस नाटकसे साध्य है।

पारिपार्श्विक—मित्र, यह नाटक तो अपूर्व तथा प्राकृतविधानसे रहित है, अविलम्ब रसानुभूति हो सके इसके लिये कुछ इतिवृत्त भी इसमें होना चाहिये॥ ११॥

सूत्रधार—तुमने ठीक कहा है। सुनो—

जिसकी प्राप्तिसे बढ़कर प्रिय दूसरी कुछ वस्तु नहीं है, वह सकल वेदान्तका शेषी आत्मा जिनके द्वारा ज्ञात होता है वह प्रमेयसमुदाय इस नाटक का इतिवृत्त है॥ १२॥

पारिपार्श्विक—मित्र, कृष्णमित्रप्रभृति पण्डितोंने इस विषयमें 'संकल्प-सूर्योदय' 'प्रबोधचन्द्रोदय' 'भावनापुरुषोत्तम' आदि नाटक लिखे ही हैं, फिर इस नवीन प्रयासकी क्या आवश्यकता थी?

सूत्रधार—यद्यपि यह शास्त्रीयमार्ग अन्य कवियों द्वारा भी व्यवहृत हो

नेतुः शास्त्रमतां त्रिवर्गफलसंपत्तिं विमुच्यात्ययो-
पन्यासं च जुगुप्सते तदयमारम्भोऽस्य संरम्भतः ॥ १३ ॥

पारिपार्श्विकः—अद्वैतं वस्तु, शृङ्गारो रसः, अथ च निर्दोषता, इति सर्वमिदमत्यद्भुतं दृश्यते। अथवा विश्वातिशायिलौकिकवैदिकलक्ष्मीविलासव्यतिकरेण जगदाश्चर्यकुलपरम्परानामत एते। एतत्प्रणीतमभिनयमिदं नाटकमस्माभिरभिनीयत इति वाङ्मनसातिवर्ति ननु भाग्यमिदमस्माकम्। परं तु श्रुतिस्मृतीतिहासागमतन्त्रादिसिद्धनानाविधसाम्बशिवचरणपरिचरणतदनुसंधाननिरन्तरितनिखिलवासरस्य तदन्तरालपरिमितपरिशिष्टकतिपयमुहूर्तनिर्वर्तनीयचतुरुदधिपरिमुद्रितसकलराज्यतन्त्रस्य शरभमहाराजमन्त्रिशिखामणेरस्य जनकसनकसनन्दनप्रमुखाभिनन्दनतदीदृशमहाप्रबन्धनिबन्धनपटिमधौरंधरीयमिति मे महदाश्चर्यम्।

सूत्रधारः—किमुच्यते 'महदाश्चर्यम्' इति।

चुका है, परन्तु आनन्दरायमखी की यह विशेषता है कि यह अश्लीलता तथा पात्रों में अनौचित्यका सहन नहीं करते हैं, नाटकके नेताकी शास्त्रसम्मता फलसम्पत्तिको छोड़कर अन्य विपरीत फलके निबन्धनसे घबड़ाते हैं, इसीसे जोर देकर यह प्रयास किया जाता है ॥ १३ ॥

पारिपार्श्विक—अद्वैत वर्णनीय वस्तु हो, शृङ्गाररस हो, फिर भी सर्वथा निर्दोष हो, यह सारी बातें अद्भुत दीखती हैं। अथवा—विश्वविलक्षण लौकिकवैदिक समृद्धियोंके विलाससे संसारको यह आश्चर्यकी परम्परामें डालते हैं। हम इनके द्वारा निर्मित नाटकका अभिनय करने जा रहे हैं इससे हमारा सौभाग्य मन तथा वचनको पार कर रहा है। आश्चर्यका विषय है कि श्रुति स्मृति इतिहास आगम तथा तन्त्र आदि प्रतिपादित नाना प्रकारकी साम्बशिवकी परिचर्या से जिनका दिन बीतता रहता है, उन परिचर्याओंके बीच बीचमें जो कुछ समय पाकर सागरचतुष्टयसे घिरी हुई पूरी पृथ्वीके राज्यतन्त्रका सञ्चालन करते हैं, उन शरभमहाराजके मन्त्रिप्रवरकी जनक, सनक, सनन्दन प्रमुख ज्ञानिजनों से अभिनन्दित वैसी रचना-चतुरता कहाँसे हुई।

सूत्रधार—क्या कहते हो, आश्चर्य है ?

आबाल्यादपि पोषितोऽजनि मया प्रेम्णा तथा लालित-
स्तेनासौ सरसामुपैतु कवितामानन्दरायाध्वरी ।
इत्येकक्षितिपालवंशजलधेर्देव्या गिरां जातया
धीरश्रीशरभावनीन्द्रवपुषा नूनं प्रसादः कृतः ॥ १४ ॥

अतः किमसाध्यमेतस्य । तत्प्रणीतमिदं नाटकमिह प्रयुञ्जानस्तदनुगुण-सकलगुणरमणीयानत्रभवतः सामाजिकानुपतिष्ठे । (सामाजिकान्प्रति । किंचिदिव कर्णं दत्त्वा ।) किं ब्रूथ ।

अप्राकृतसभाह्लादा न प्राकृतगिरो मताः ।
अतः संस्कृतया वाचा सभालंक्रियतामिति ॥ १५ ॥

साधु । सम्यगभिहितम् । तथैव प्रतिपात्रमाहितो यत्नः । (नेपथ्याभिमुखमवलोक्य ।) आर्ये, इतस्तावत् ।

(प्रविश्य)

नटी—आर्य, इयमस्मि ।

जो बाल्यकालसे ही मेरे द्वारा प्रेमसे पालित हुआ, वह आनन्दरायमखी मेरे द्वारा सस्नेह लालितपालित होनेके ही कारण सरस कवित्व प्राप्त कर सका है, इस प्रकारकी कृपा एकक्षितिपालवंशरूप सागरसे निकली शरभराज-शरीर-धारिणी वाणीने अवश्यकी है ॥ १४ ॥

अतः इसके लिये असाध्य क्या है ? उस आनन्दराय द्वारा प्रणीत नाटकका अभिनय करके मैं सकलगुणगरिष्ठ सामाजिकोंका अनुरञ्जन करता हूं । (सामाजिकोंके प्रति—कानलगाकर—) क्या कहा ?

"अप्राकृतजनोंकी सभाको आनन्दित करनेमें प्राकृत भाषा क्षम नहीं होती है, अतः संस्कृत भाषा द्वारा ही सभाको भूषित करो" ॥ १५ ॥

ठीक ! ठीक कहा, मैंने सभी पात्रोंको वैसाही करनेको कहा है । (नेपथ्यकी ओर देखकर) आर्ये, तनिक इधर तो आना ।

(प्रवेशकरके)

नटी—आर्य, यही तो हूँ ।

सूत्रधारः—आर्ये, यावदस्मदीयवर्या वर्णिकापरिग्रहणाय संनह्यन्ति, तावदिमं पुष्पसमयमधिकृत्य गीयताम्। संप्रति हि

सोत्कम्पस्तबकस्तनं दरचलद्बालप्रवालाधरं
गायत्कोकिलपालितानघटनारज्यन्मिलिन्दव्रजम्।
मन्दं मन्दसमीरदेशिकसमादेशादितो मञ्जरी
वामाक्षित्वमिवाभिनन्द्यनटना पुष्णाति दृष्ट्योर्मुदम् ॥१६॥

नटी—तथा(इति गायति।)

मुदितालिगीतिशोभितमुग्धनवीनप्रसूनशोभनया।
मल्लिकया सहकारं घटयन्ति विलासिनो महोत्साहाः॥ १७॥

(नेपथ्ये।)

साधु भरतकुलाङ्गने, साधु। सम्यगभिहितं भवत्या। प्रस्तुतानुगुणवचनभङ्गीभिरभिनन्दनीयासि। सत्यम्। अहमिदानीं विद्यया सह परमेश्वरस्य प्रतिबिम्बभूतं जीवराजं संघटयितुमेव विरचितोत्साहा भवामि।

सूत्रधार—आर्ये, जब तक मेरे सहकर्मी वेषग्रहण करके तैयार हो रहे हैं तब तक तुम इस वसन्तसमयके संबन्धमें कुछ गाओ। इस समय यह मञ्जरी तुम्हारी ही तरह रमणीय नृत्य प्रस्तुत करके हमारी आँखोंको आनन्दित कर रही है, तुम्हारे स्तन काँपते हैं, इसका पुष्पस्तवक हिलता है, तुम्हारा अधर चलता है इसका बालपल्लव, कोयलोंके बलके प्रस्तुत गानसे भ्रमरगण रञ्जित हो रहे हैं, मन्दवायुकी प्रेरणासे मञ्जरी नाचती है मानो वही उसका उपदेशक हो॥ १६॥

नटी—बड़ी अच्छी बात है। (।कहकर गाती है)

प्रसक्त भ्रमरगणकी गीतसे शोभित नूतन पुष्पसे हृदय-मल्लिकाको इस वसन्तमें उत्साहसे विलासीजन सहकारसे योजित करते हैं॥ १७॥

(नेपथ्यमें)

वाह भरतकुलरमणी, वाह। तुमने ठीक कहा है। प्रकरणके उपयुक्त वचनके कारण तुम प्रशंसायोग्य हो। सत्य है कि मैं भी इस समय विद्याके साथ परमेश्वरके प्रतिबिम्बभूत इस जीवराजको मिलानेमें ही उत्साह करती हूँ।

सूत्रधारः—(श्रुत्वा, सहर्षम् ।) अये, मत्स्यालको रङ्गनाथनामा शिवभक्तेर्भूमिकामादायागत एव । यदधुना—

ऊर्णाचन्दनचुम्बिफालफलकस्पष्टत्रिपुण्ड्रोज्ज्वला
बिभ्राणा परिपाकपिङ्गकलमच्छायं जटामण्डलम् ।
कोटीराङ्गदहारकङ्कणपदे रुद्राक्षमालावती
भस्मोद्धूलनपाण्डरा भगवती भक्तिः पुरस्तादियम् ॥१८॥

तदावामप्यनन्तरकरणीयाय सज्जीभवावः ।

(इति निष्क्रान्तौ)

प्रस्तावना ।

(ततः प्रविशति शिवभक्तिः ।)

शिवभक्तिः—आदिष्टास्मि परमकारुणिक्या परमेश्वर्या । यथा—

'सुचिरमयमविद्यादुर्विलासेन्द्रजालैः
पशुरिव मृगतृष्णावारिपूरैर्विकृष्टः ।

सूत्रधार—(सुनकर, हर्षसे)

अरे, मेरा साला रङ्गनाथ शिवभक्तिका रूप धारण करके आही गया, जो इस समय—

ऊर्णा चन्दनसे शोभित ललाट पर त्रिपुण्डकी उज्ज्वल रेखा धारण करती हुई, पके हुए धानकी बालके वर्णकी जटायें धारण करके, मस्तक, बाहुमूल, कण्ठ, तथा कलेपर रुद्राक्षकी माला पहनकर भस्मलेपनसे धवलशरीरा यह शिवभक्ति सामने उपस्थित है ॥ १८ ॥

अतः हम दोनों आदमी भी अग्रिम कर्त्तव्य के लिये तत्पर हो जावें ।

(दोनोंका प्रस्थान)

प्रस्तावना समाप्त

(शिवभक्तिका प्रवेश)

शिवभक्ति—परमदयालु परमेश्वरीने मुझे आदेश दिया है—कि यह जीव चिरकालसे अविद्याकृत दुर्विलासरूप इन्द्रजालसे आकृष्ट होकर—मृगमरीचिका-

विलुठति खलु जीवो विस्मृतस्वीयभूमा
कथमसि शिवभक्ते वत्सला त्वं पराची ॥ १९ ॥

इति । तदनु—

'भूतं भावि भवद्विसृश्य सकलं जीवस्य दुःखं चिरा-
दस्योत्तारणकारिणः कति बतोपायास्त्वयोद्भाविताः ।
इष्टापूर्तपुरोगमाः सनिगमा मन्त्राः सतन्त्रा इमे
सन्त्येवं जगदम्ब मद्विरहितं हीयेत किं साधनम् ॥ २० ॥'

किंच—

'नामैव नालमिह किं युवयोर्जनस्य
संसारघोरविषसागरतारणाय ।
प्रायोभवन्ममतया कलितः स एष
लोकेषु मामपि पदार्थयितुं प्रयत्नः ॥ २१ ॥'

इति मया सविनयमभिहिते भगवतीसस्मितमवोचत—'वत्से, मैवं वादीः ।

जलसे आकृष्ट पशुकी तरह—लोट रहा है, उसने अपनी भूमरूपता भुलादी है, अरी शिवभक्ते, दयालु स्वभाव होकर भी तुम इस स्थितिमें भी पराङ्मुख होकर क्यों बैठी हुई है ? ॥ १९ ॥

उसके बाद—

जीवके होनेवाले, भूत, तथा वर्त्तमान दुःखोंका विचार करके उससे छुटकारा दिलानेवाले कितने यज्ञ, सेतु-तडागादि निर्माण और आगमोक्त मन्त्रादिरूप उपाय तो तुमने निकाल ही दिये हैं, ऐसी स्थितिमें मेरे नहीं रहनेपर भी कौनसा साधन बिगड़ सकता है ? ॥ २० ॥

और—

जीवके लिये संसाररूप विषसागरसे पारकरनेमें आप दोनोंके नाम ही पर्याप्त हैं, प्रायः आप ममतावश मुझ तुच्छजनको भी गौरवप्रदान करनेके लिये यह प्रयत्न करती हैं ॥ २१ ॥

नम्रतापूर्वक मैंने जब इस प्रकारसे कहा, तब देवीने मुस्कुराकर कहा कि वत्से, ऐसा मत कहो ।

कर्माणि सन्तु विविधानि करोतु तानि
क्लिष्टश्चिरेण तपसा नियमैश्च घोरैः ।
त्वत्संनिधानविरहे तु भवन्ति तानि
पाञ्चालिकाभिनयवत्फलवञ्चितानि ॥ २२ ॥

तदिदानीं—

जनिप्रभृतिपकणे शबरताविमूढो यथा
विनीय नृपनन्दनो नृपतिकन्यया योज्यते ।
तथैनमितरभ्रमाकुलमितो महादुर्ग्रहा-
द्विमोच्य निजविद्यया घटयितुं यतेथा' इति ॥ २३ ॥

(विचिन्त्य ।) ननु तदैव परमेश्वर्याभिहितम्—'अत्र तव सहकृत्वरी निवृत्तिरनुपदमेव मया प्रेष्यते' इति । तत्किमद्यापि निवृत्तिश्चिरयति । (पुरो विलोक्य । सपरितोषम् ।)

भस्मालेपनतः क्षरज्जलधरच्छायां तनुं बिभ्रती
पद्मभ्यामधरश्रिया च कथमप्युन्नेयवक्त्राम्बुजा ।

नाना प्रकारके क्रियाकलाप भले ही रहा करें, और जीव नाना कष्टोंको झेलकर उन्हें भले ही सम्पन्न किया करें, परन्तु तुम्हारे नहीं रहनेसे वे सारे क्रियाकलाप बेकार ही रहते हैं जैसे कठपुतलियों के नृत्य निष्फल होते हैं ॥ २२ ॥

अतः इस समय—

जैसे जन्मसे ही शबरपुरीमें वासकरनेवाले शबरभावमूढ राजकुमारको शिक्षित करके राजकन्यासे विवाहित किया जाता है, उसी तरह अन्यताश्रमसे ग्रस्त जीवको इस दुर्ग्रहसे मुक्तकराकर अपनी विद्याके साथ योजित करनेका प्रयास करो ॥ २३ ॥

(सोचकर) उसी समय देवीने कहा था कि इस कार्य में तुम्हारी सहायता करनेके लिये मैं शीघ्र ही निवृत्तिको भी भेज रही हूँ, फिर भी निवृत्ति विलम्ब क्यों कर रही है । (आगेकी ओर देखकर, सन्तोषके साथ)

यही तो निवृत्ति सामनेमें उपस्थित है जिसकी देह भस्मलेपनके कारण बरसते हुए मेघके सदृश प्रतीत हो रही है, चरणियों तथा अधरकी कान्तिसे ही

वैयाघ्रं परिधाय चर्म दधती संव्यानमैणीं त्वचं
विद्युत्पिङ्गजटाच्छटा विजयते सेयं निवृत्तिः पुरः ॥ २४ ॥

(ततः प्रविशति निवृत्तिः)

निवृत्तिः—अम्ब शिवभक्ते, प्रणमामि ।

शिवभक्तिः—वत्से, प्रकाशतां ते परं ज्योतिः ।

निवृत्तिः—भगवति, संदिष्टास्मि परमेश्वर्या—'वत्से, महति कार्यविशेषे मया नियुक्तायाः शिवभक्तेरभिहितकरणाय प्रत्यनन्तरीभव' इति । तदद्य को नियोगो भगवत्याः ।

शिवभक्तिः—वत्से निवृत्ते, कथंचिदस्य जीवराजस्य सुमहतः संकटाद्विमोचने विद्यासंयोजने च विधेयो यत्नः ।

निवृत्तिः—किमेतावदस्य समापतितम् ।

शिवभक्तिः—किमितोऽपि समापतितव्यं देवस्य । शृणु तावत्,

व्यामोहादसतीविलासजनितादासादितो लाघवं
निःशङ्कं परितो बलादविरतं कामादिभिः कर्षणात् ।

किसी प्रकार उसके मुखका पता चलता है, उसने व्याघ्रचर्म पहन रखा है और चादरके स्थानमें उसने मृगचर्म धारण किया है, उसकी जटा बिजलीकी तरह चमकती है ॥ २४ ॥

(शिवभक्तिका प्रवेश)

निवृत्ति—मातः शिवभक्ति, प्रणाम ।

शिवभक्ति—वत्से, तुम्हें परमज्योति प्रकाशित हो ।

निवृत्ति—भगवति, परमेश्वरीने सन्देश कहा है कि वत्से, बड़े भारी कार्यमें मेरे द्वारा नियुक्त शिवभक्तिका कहा हुआ करनेके लिये तुम तत्पर रहना । अतः आप बताइये कि अभी आपका क्या आदेश है ।

शिवभक्ति—वत्से निवृत्ति, किसी प्रकार इस जीवराजको महान् संकटसे छुड़ाने तथा विद्याके साथ योजित करनेका प्रयास करो ।

निवृत्ति—जीवराजको ऐसा क्या संकट आ पड़ा है ?

शिवभक्ति—इससे बढ़कर जीवराजको क्या होगा ? सुनो—अविद्याविलासवश उत्पन्न व्यामोहसे जीवराज लघुताको प्राप्त हुए हैं और कामादि

हृष्यञ्जातु रुदन्क्षणेन विहसन्भूयो विषीदन्मना-
गित्थं हन्त परः पुमान्स महतीं नीचां दशामश्नुते ॥ २५ ॥

निवृत्तिः—(सखेदम् ।) आश्चर्यमिदम् । अप्रधृष्यस्य महात्मनो देवस्य दुःसङ्गदोषेण कियती विपत्तिरुदपद्यत ।

शिवभक्तिः—किमेतावदेव । श्रूयतामग्रेऽपि ।

व्यामुग्धस्तरुगुल्मघासजननैः खेदान्कति प्रापितो
भूयः कीटपतङ्गपन्नगमृगीभावैः कियत्क्लेशितः ।
दिष्ट्या मानुषपौरुषादिविधया पारं स्पृशन्वर्तते
भूयो नीचपथे पतेद्यदि कथं देवी तितिक्षेत तत् ॥ २६ ॥

निवृत्तिः—भगवति, पारस्पर्शनमस्य किं नाम ।

शिवभक्तिः—शृणु तावत् ।

शश्वत्सिन्धुतरङ्गवद्बहुजनुःसंपन्नधर्मोच्चयै-
र्वर्णः स्वर्णवदस्य भाति बहुधा संस्कारसंयोगतः ।

द्वारा सदा कृष्ट होते रहनेसे कभी रोते कभी हंसते तथा कभी विषाद प्राप्त करते रहते हैं, इस प्रकार यह परमपुरुषस्वरूप जीवराज बड़ी दुर्गत स्थितिको पहुंच गये हैं ॥ २५ ॥

निवृत्ति—(खेदके साथ) यह बड़े आश्चर्यकी बात है, अजेय तथा महात्मा इस जीवराजको दुःसङ्गदोषसे कैसी विपत्ति आपड़ी है ।

शिवभक्ति—क्या इतनाही है, आगेभी सुनो—

ज्ञानरहित वृक्ष लतागुल्म तथा घासका जन्म पाकर उन्होंने कितना कष्ट पाया है, और कीटपतङ्गके रूपमें और मृगके रूपमें जन्मलेकर भी उन्हें कितना क्लेश भोगना पड़ा है । सौभाग्यवश वह इस समय मानुषरूप धारणकरके पारका स्पर्शसा कर रहे हैं । वह फिरसे नीचपथमें गिरें, इस बातको देवी कैसे सह सकती हैं ? ॥ २६ ॥

निवृत्ति—यह पारका स्पर्शकर रहे हैं इसका क्या अर्थ ?

शिवभक्ति—सुनो—

समुद्रमें उठनेवाले तरङ्गोंकी तरह अनेक जन्मपरम्परासे प्राप्त धर्मके कारण इसका वर्ण संस्कारयुक्त सुवर्णके समान चमक रहा है, आठ आत्मगुण तथा मैत्री

अष्टावात्मगुणाश्च संनिदधते मैत्र्यादिभिर्भूषिता
नेदिष्ठो नरसिंह एष महितः कैवल्यलक्ष्म्या न किम् ॥ २७ ॥

इदमेव तत्। अतोऽयमेवावसरः प्रयत्नस्य। परमेश्वर्यापि तदिदमभिसंधायैव संप्रति वयमत्र सत्वरं नियोजिताः।

निवृत्तिः—भगवति, जीवराजस्य तादृग्विद्याविघटनविद्यासंघटनविषये परमेश्वर्याः किंनिबन्धनोऽयमियानभिनिवेशः।

शिवभक्तिः—वत्से, जीवो नाम किमितरः परमेश्वराभ्याम्। शृणु तर्हि कथयामि ते भूतार्थम्।

सत्यज्ञानसुखस्वरूपमहितः सर्वान्तरात्मेति यो
विख्यातः पुरुषः स तावदसतीं पश्यन्नविद्यामिमाम्।
अस्या विभ्रममोहितः प्रमुषितस्वीयप्रभावप्रथां
जीवो जीव इति प्रपद्य सुचिरादुन्मत्तवद्भ्राम्यति ॥ २८ ॥

किं च—

विद्या नाम परा न सापि परमा चिच्छक्तिरेवात्मनः
सास्मिन्नीदृशि गर्हयैव विमुखी स्वेनात्मना वर्तते।

आदि वृत्तियाँ इसके पास हैं, वह नरसिंह क्या-क्या कैवल्यलक्ष्मीसे युक्त नहीं है ॥ २७ ॥

यही यह बात है। अतः प्रयत्नके योग्य अवसर यही है, परमेश्वरीने भी यही सोचकर शीघ्र हम लोगोंको इस कार्यमें नियुक्त किया है।

निवृत्ति—भगवति, जीवराजको अविद्यासे वियुक्त कराकर विद्यासे युक्त करानेमें परमेश्वरीका इस प्रकार आग्रह क्यों है?

शिवभक्ति—वत्से, जीव क्या परमेश्वर तथा परमेश्वरीसे भिन्न है? सुनो, मैं तुमको सच्ची बात कहती हूँ।

सत्य ज्ञान सुखस्वरूप (सच्चिदानन्दरूप) तथा सर्वान्तरात्माके रूपमें विख्यात यह पुरुष असती अविद्याको देखते हुए इसके विलासोंसे मुग्ध होकर अपने प्रभुत्वको भूल बैठा है और चिरकालसे जीव नामसे पुकारा जाकर पागलोंकी तरह भटक रहा है ॥ २८ ॥

विद्याभी कोई दूसरी नहीं है, वह भी आत्माकी चित्शक्ति ही है, वह

यौ मातापितरौ समस्तजगतामाद्यौ शिवौ तौ च तौ
रूपं नाम च भिद्यतेऽथ समयेष्वेते मिथो नेतरे ॥ २९ ॥

तथा च परमेश्वरी स्वजनकसंकटविषये कथमुदासीत ।

निवृत्तिः—उपपन्नमेवैतत् । तदेवं प्रकृतस्य कार्यस्य निर्वर्तने का पुनरितिकर्तव्यता । तदत्र निपुणतरमेकमुपायमवधारयतु भगवती ।

शिवभक्तिः—(आत्मगतम् ।) अतिचिरादविद्यासंसाररसैकलम्पटस्य जीवराजस्य विषयदोषोद्भावनादिभिरभिमुखीकरणमतिनिम्नगामिनो महतः प्रवाहस्य प्रतीपनमिव दुर्घटमेव । परंतु वासनागुणतया किंचिदपूर्वरमणीमणिपरिणयनप्रणाडिकयैव विद्यासंघटनमुपपादनीयम् । (प्रकाशम् ।) आः, चिन्तितो मया तदभिमुखीकरणोपायः ।

निवृत्तिः—कथमिव ।

शिवभक्तिः—(कर्णे ।) एवमिव ।

निवृत्तिः—साधु चिन्तितं भगवत्या ।

आत्मीय जीवके प्रति तिरस्कार भावनासे विमुख हो रही है, यही संसारके माता-पिता तथा आद्य शिव शिवा हैं, इनका नाम तथा रूप भले ही भिन्न हो, परन्तु समय पर यह एक ही हैं ॥ २९ ॥

फिर परमेश्वरी अपने जनक पर आपत्ति आने पर कैसे उदासीन बनी बैठी रह सकती है ? ॥

निवृत्ति—यह तो ठीक ही है । फिर इस प्रकान्तकार्यको सम्पन्न करनेका क्या तरीका होगा ? इस विषयमें आप अच्छी तरहसे विचार करलें ।

शिवभक्ति—(स्वगत) चिरकालसे अविद्याकृत संसाररसमें आसक्त जीवराज को विषयोंके दोष बताकर अभिमुख करना उतना ही कठिन है जितना निम्नगामी प्रवाहको ऊर्ध्वमुख करना कठिन है । हाँ, वासनागुण होनेसे किसी अपूर्व सुन्दरी रमणीमें आसक्त कराकर विद्यासे योजित करना होगा । (प्रकट) अहा, मैंने जीवराजको अभिमुख करनेका मार्ग निकाल लिया ।

निवृत्ति—कैसे ?

शिवभक्ति—(कानोंमें) ऐसे ।

निवृत्ति—आपने ठीक सोचा है ।

शिवभक्तिः—संप्रति हि जीवराजमविद्याविषयवासनाप्रवृत्तिभ्यां निरन्तरमुपरुध्य निःशङ्कमकुतोभयमखिलेषु विषयेषु विजृम्भते। तदविलम्बितमभिमतसिद्धये व्याप्रियस्व। मयापि तत्तदुपसर्गविघटनाय प्रकृतकार्यघटनाय च तत्र तत्र व्याप्रियते।

(इति निष्क्रान्ते)

विष्कम्भः।

(ततः प्रविशति चित्तशर्मणा नर्मसचिवेन सपरिवारया चाविद्यया जीवराजः।)

जीवराजः—(देवीं प्रति।) प्रिये, नवनवोल्लासरमणीयैर्भवदभिरतिचमत्कारैरति हि नाम प्रीणितो ममायमन्तरात्मा।

का पुण्णातु पुमांसमेवमपरा संजल्पलेशोद्भवं
नानाकारसमस्तभोग्यभरिता दैनंदिनैरुत्सवैः।
भूतं भावि च वा कुहापि किमिदं यद्धि त्वयोद्घाट्यते
नैषा दृष्टचरी न वा श्रुतचरी त्वद्वातुरीवैखरी॥ ३०॥

शिवभक्ति—इस समय अविद्या विषयवासना तथा प्रवृत्तिकी सहायतासे जीवराजको सांसारिक विषयोंमें आसक्त करके निःशङ्कभावसे अपना प्रभाव प्रकट कर रही है। अतः तुम शीघ्र अपने कार्यकी सिद्धिमें तत्पर हो जाओ। मैं भी विघ्नोंको दूर करने तथा कार्यकी सिद्धिमें लग जाती हूं।

(दोनोंका प्रस्थान)

(विष्कम्भ समाप्त)

(चित्तशर्मा नामक नर्मसचिव तथा सपरिवार अविद्याके साथ जीवराजका प्रवेश)

जीवराज—(देवीके प्रति) प्रिये, तुम्हारे इन नित्य नूतन उल्लासोंसे रमणीय अनुराग चमत्कारों से हमारी अन्तरात्मा अतितृप्त है।

संकल्पमात्रसे पैदा होनेवाले इस अकर्मण्य पुरुषको नानाविध भोगोंसे भरी कौन दूसरी स्त्री प्रतिदैनिक उत्सवोंसे पुष्ट करती रह सकती है, तुम जो पैदाकर देती हो क्या वह कहीं हुआ, हो रहा है या होगा? तुम्हारी जैसी चतुरता न देखी गई है और न सुनी ही गई है॥ ३०॥

देवी—(सप्रश्रयम् ।)

यत्किंचित्प्रभवाम्यहं कृतिषु तत्सर्वं भवद्वैभवं
कर्तुं भर्तुमथापहर्तुमपि वा काहं पराकी जडा ।
तत्सर्वं भवतो विभूतिकणिका यद्यन्मयोद्भाविता
मामेषोपगता किलेति ममतास्नेहादभिष्टौषि माम् ॥ ३१ ॥

प्रवृत्तिः—अये भट्टिनि, स्तुतिरिति किमसदर्थोपन्यासः क्रियते । नन्वयं भवत्या—

दत्त्वा कर्मपथे विचित्रविभवे बुद्धिं समृद्धयंसलं
वैरिञ्चं पदमेतदैन्द्रमिदमित्युच्चैः पदं स्थापितः ।
स्वर्वामाधरमाधुरीषु मुदितः प्रेङ्खन्मणीमेखला-
जालोत्तालझलंझलादिसुभगान्भोगान्कति प्रापितः ॥ ३२ ॥

देवी— सखि प्रवृत्ते, भवत्या मयि प्रणयविजृम्भितमेवैतत् । वस्तुतस्तु भवदायत्तमेवेदम् । तथाहि ।

क्रीडा काञ्चनशैलकूटघटितप्रत्युप्तनानामणि-
ज्योतिःकद्बुरसौधसीमसु कनत्कल्पद्रुपुष्पास्तरे ।

देवी—(नम्र भावसे) कर्त्तव्योंमें मैं जो कुछ समर्थ हो पाती हूँ वह आप ही का वैभव है, मैं गरीब तथा जड़ व्यक्ति करने, पालने या संहार करनेमें कहाँसे समर्थ हो सकती थी । मैं जो कुछ भी कर सकी हूँ वह आपकी ही विभूतिकी कणिका है, आप मेरी प्रशंसा केवल इसीलिये कर रहे हैं कि मैं आपके आश्रयमें रहकर आपकी ममताका पात्र बन गई हूँ ॥ ३१ ॥

प्रवृत्ति—अजी स्वामिनी, प्रशंसा करनेमें क्या असत्य वस्तु कही जाती है ? आपने इनको—

कर्ममार्गकी समृद्ध बुद्धि प्रदान करके इन्द्रका तथा ब्रह्माका उन्नत पद प्राप्त कराया, और देवललनाओंकी अधरमाधुरीसे आनन्दित कराकर उनकी मेखलामणियोंके समुदायके झणत्कारोंसे रमणीय नानाभोग प्राप्त कराये ॥३२॥

देवी— सखि प्रवृत्ते, आपके भी प्रणयका ही यह विलास है, वस्तुतः यह सारा कारनामा आपका ही है । क्योंकि—क्रीड़ापर्वतके शिखरपर खचित

उद्दामस्मरदर्पविभ्रमवती संभोगशृङ्गारिणो
यत्क्रीडन्ति विलासिनस्तदखिलं लीलायितं ते न किम् ॥ ३३ ॥

चित्तशर्मा—(स्वगतम् ।) हन्त । तदेवमासामन्योन्यप्रशंसाभिनन्दनाभिनिवेशेन तन्मय इव जायते वयस्यः । तदयमेवायसरो विवेकादीनभिप्रतिश्रुतार्थोपक्षेपस्य तदेवमभिधास्ये । (प्रकाशम् ।) अत्र तेन किमित्येव परिणतौ सर्वमिदं भवेत् ।

विषयवासना—(सामर्षम् ।) अये, निपुणः खलु भवानुचितोपचारैः स्वामिपादपरिचरणेषु । (देवीं प्रति ।) 'तेन किम्' इत्यस्मदुद्भावितेषु नीरसत्वमापादयता राजहितैषिणामुना महामन्त्रिणा चित्तशर्मणा पूर्वद्युरधिनिशीथिनि विनोदव्याजेन देवपादविषये कश्चिन्महानुपचारः कृतः 'स्वधर्मः किलायमस्य' इति, तद्देवेन तितिक्षितम् ।

देवी—तत्कथमिव ।

नाविध मणियोंकी ज्योतिसे चमकते प्रासादोंमें कल्पवृक्षपुष्पोंसे रचित शय्यापर उद्दाम कामवेगसे भरी ललनाओंके साथ विलासी जन जो क्रीड़ाएँ किया करते हैं क्या वह तुम्हारी लीला नहीं है ? ॥ ३३ ॥

चित्तशर्मा—(स्वगत) हन्त, इनकी परस्पर प्रशंसाके आग्रहसे हमारे वयस्य तन्मय-से हो रहे हैं । अतः यही अवसर है कि विवेकादिके साथ की गई प्रतिज्ञासे संबन्धित वस्तुका प्रसङ्ग छेड़ा जाय । (प्रकट) यहाँ उससे क्या ? अन्तमें इतना ही भर कह देनेसे सब ठीक हो जाता है ।

विषयवासना—(क्रोधपूर्वक) अजी, आप उचित उपचार द्वारा स्वामीकी सेवा करनेमें खूब दक्ष हैं ? (देवीके प्रति) उससे क्या ? ऐसा कहकर हम लोगों द्वारा उपस्थापित विषयकी नीरसता प्रतिपादित करनेवाले राजहितैषी महामन्त्री चित्तशर्माने कल आधीरातके समय महाराजके प्रति कुछ महान् उपकार किया था, महाराजने यह कहकर क्षमा कर दिया कि यह तो उसका स्वभाव ही है ।

देवी—सो क्या ?

विषयवासना—

शार्दूलश्वभृगालमर्कटमहारक्षस्तरक्ष्वात्मना
घोरोद्घोषणमन्धकारिणि वने खादन्निवाभ्यागतः।

देवी—स्वप्नस्य तदधीनतया तस्य सर्वोऽपि वेषः संगच्छत एव। ततस्ततः।

विषयवासना—

तद्दृष्ट्वा भयतो विसंस्थुलपदं धावन्द्रुमान्पर्वता-
नारोहन्निपतन्निवाकुलतरो दिष्ट्या प्रबुद्धो विभुः॥ ३४॥

जीवः—प्रिये, सत्यमेतत्। आकस्मिकतया बहुपर्याकुलोऽस्म्यनेन।

देवी—(सस्मितम्।) उचितमेव कृतम्। भवितव्यं खलु तदेकीभावस्य फलभोगेन।

चित्तशर्मा—(स्वगतम्।) यथाकथंचिदयमभिभावनीय इति धूर्ताया विषयवासनाया हृदयम्। (प्रकाशम्।) अयि कश्मले, यदसाधु तदेव मम

विषयवासना—बाघ, कुत्ता, गीदड़, बानर, राक्षस, आदि भयङ्कर जन्तुओं के रूपमें घोर शब्द करते हुए महातमसे व्याप्त वनमें खानेके लिये उद्यत-सा होकर उपस्थित हो गया।

देवी—स्वप्न उसके अधीन है, उसका जो भी रूप हो वह उसके अधिकार-की बात है। हाँ, इसके आगे क्या हुआ?

विषयवासना—यह देखकर भयसे कम्पमान चरणोंके सहारे दौड़ते हुए पेड़ों तथा पर्वतोंपर चढ़ते एवं गिरते हुए व्याकुल होकर जीवराज जग गये॥ ३४॥

जीव—प्रिये, यह सत्य है। एकाएक आ जानेके कारण इस घटनाने मुझे व्याकुल कर दिया है।

देवी—ठीक हुआ है। चित्तके साथ घुल-मिल जानेका फल तो भोगना ही है।

चित्तशर्मा—(स्वगत) किसी तरह यह धूर्ता विषयवासना चाहती है कि मुझे नीचा दिखाया जा सके। (प्रकट) अरी पापिन, जो बुरा है वही मेरा

चेष्टितमुद्भावयसि, यदभिनन्दनम् । इदं तु(न)प्रतिपादयसि । यत्किल,

त्वङ्गत्तुङ्गतुरङ्गकोटि विनटन्माद्यत्पदाति कण-
द्घण्टाजालझणंझणद्दृढतति क्षीवद्विपश्रेणि च ।
सृष्ट्वानेकपुरीः श्रिया सुरपुरीरेतास्वयं वैभवै-
रानीतो मणिमण्डपे ननु मया सिंहासनेऽध्यासितः ॥ ३५ ॥

जीवः—इदमप्यस्त्येव । तदेवमपूर्वार्थप्रपञ्चनविधावयमेव समर्थः ।

प्रवृत्तिः—आभासमात्रमिदमखिलमपि कस्मिन्कोणे वा भट्टिन्याः प्रभावमहिमातिशयस्य ।

उद्यानानि महावनानि गिरयः प्रासादसौधादयः
प्राकारस्तु सचक्रवालशिखरी खेयं तु सप्तार्णवी ।
आशास्तोरणगोपुराणि दश तास्तेजस्त्रयी दीपिका
यस्याः शिल्पमियं पुरी वसुमती सा केन वा वर्ण्यताम् ॥३६॥

विषयवासना—सखि प्रवृत्ते, किमल्पमेवोदाहृतम् । इत्थं कति

किया बता रही है, जो प्रशंसा है । यह तो तुम नहीं कह रही हो कि—

जहाँपर घोड़ोंकी राशि दौड़ रही है, पदाति सेना इधर-उधर चल-फिर रही है, नाना प्रकारके घण्टे शब्द कर रहे हैं, मदमत्त हाथी चिग्घाड़ रहे हैं, समृद्धिमें सुरपुरीसदृश ऐसी अनेक नगरियोंका निर्माण करके मैंने उनको मणिमण्डपमें ले जाकर सिंहासनपर आरूढ़ करा दिया ॥ ३५ ॥

जीव—यह भी बात ठीक ही है । इस प्रकारके अपूर्व अर्थोंके निर्माणमें भी यही समर्थ है ।

प्रवृत्ति—यह सब तो आभासमात्र है, स्वामिनीके प्रभावके किसी कोणमें यह सब आ जा सकता है ।

जिस अविद्याने महावनरूप उद्यान, पर्वतपरम्परारूप प्रासादमाला, दिगन्तव्यापी पर्वतसमुदायरूप प्राकार, सप्तसमुद्ररूप परिखा, निशारूप गोपुर तथा सूर्य-चन्द्र और वह्निरूप दीपकसे युक्त इस पृथ्वीका निर्माण किया है, उसका वर्णन किस प्रकारसे किया जाय ? ॥ ३६ ॥

विषयवासना—सखि प्रवृत्ति, थोड़ा ही क्यों कह रही हो ? इस तरह

जगन्ति जयन्ति, कति वारानमूनि गतानि, कति च वारानुत्पादितानि भट्टिन्या ।

चित्तशर्मा—(सोत्प्रासम् ।) अये, सत्यम् । आभासमात्राण्येव मदारब्धानि । यतः प्रातिभासिकानि । युष्मदुद्भावितानि तु पारमार्थिकानि स्थिराणि सुखानि देवस्य ।

अविद्या—(सखेदम् ।) हन्त ! प्रणयिनः समक्षमेव मर्मणि तोदः कृतो वैधेयेन ।

विषयवासना—अरे, तत्त्वं न जानासि ।

सुखमस्त्वसुखं वास्तु नैव साधु निरन्तरम् ।
यथा विरहिणी कान्ते रमते किं तथापरा ॥ ३७ ॥

देवी—अये, चपलस्वभावोऽयमस्थिरप्रणय इति । नन्ववगतमेतत् ।

चित्तशर्मा—(सोत्प्रासम् ।) देव, श्रूयताम् ।

के तो कितने संसार हैं, कितनी बार वे आये गये, कितनी बार हमारी स्वामिनीने उन्हें उत्पन्न किया ।

चित्तशर्मा—(उपहासके साथ) अजी, ठीक है, मैं जो कुछ करता हूँ वह तो आभासमात्र है, क्योंकि वह प्रातिभासिक है, तुम्हारे द्वारा उत्पादित सुख ही तो जीवराजके लिये वास्तविक रूपमें सत्य हैं ।

अविद्या—(खेदके साथ) हाय, इस मूर्खने प्रियतमके सामने ही मर्म पर प्रहार कर डाला ।

विषयवासना—अरे, तुमको वस्तुतत्त्वका ज्ञान नहीं है,

सुख हो अथवा दुःख हो, कोई भी वस्तु सदा सेवित होनेपर भली नहीं लगा करती है, जैसे विरहिणी स्त्री दीर्घकालोपरान्त होनेवाले प्रियसंयोगसे प्रसन्न होती है वैसे नित्य-संयोगिनी नहीं ॥ ३७ ॥

देवी—अरे, यह चपलस्वभाव तथा अस्थिरप्रणय है । यही समझमें आ रहा है ।

चित्तशर्मा—(उपहासके साथ) देव, सुनिये—

एतास्तावदहं प्रतार्य करणद्वाराणि बद्ध्वा दृढं
निर्व्यापारतया पुरीततटुदरे गूढं निलीय स्थितः ।
दुःखासंकलितं नयाम्यनुपदं नो चेद्भवन्तं सुखं
कृत्वा रोगसहस्रगुम्फनमिमाः किं वा विदध्युर्न ते ॥ ३८ ॥

अपि च । इयं किल कदाचिदाश्रितमुत्कर्षति, कदाचिदपकर्षति, कदाचिदभिनन्दयति । तत्तद्विलक्षणगुणभिन्नाः प्रकृतयस्तावदस्या दुर्वाराः ।

प्रवृत्तिः—धिङ्मूर्खं, कुलमहत्तरामपि भट्टिनीमभिभवञ्जाड्यमेव प्रकाशयसि

चित्तशर्मा—अये, जाड्यं चापलं मौर्ख्यमन्यद्वा यत्किंचिद्विवक्षितम्, तदखिलमपि युष्मदीयमेव । किं न प्रसरेयुः सवित्रीगुणास्तत्प्रसवेषु ।

अविद्या—(सखेदम् । आत्मगतम् ।) केन किमुपदिष्टं वा यथापुरमयमस्मासु न वर्तते ।

चित्तशर्मा—(स्मितं कृत्वा ।) राजा सर्वथायमेतत्कलहेन निर्विण्णो निवृत्त्युन्मुख इव दृश्यते ।

मैं इन्हें ठगकर, इन्द्रिय द्वारों को भली भाँति बन्द करके निर्व्यापार भावसे पुरीतती नाड़ीमें छिपकर बैठा हुआ यदि आपको दुःखसे असम्पृक्त सुख नहीं प्राप्त कराऊँ तो ये विषयवासनायें नाना प्रकारके दुःखों तथा रोगोंकी सृष्टि करके क्या कर सकती हैं ॥ ३८ ॥

और यह कभी आश्रित व्यक्तिको ऊपर तथा कभी नीचेकी ओर खींचती है, कभी खुश करती है । भिन्न-भिन्न प्रकारकी प्रवृत्तियोंसे इसके गुण भिन्न-भिन्न हैं ।

प्रवृत्ति—धिक्कार है तुझ मूर्खको, कुलश्रेष्ठा स्वामिनीका अनादर करके तू अपनी मूर्खता ही प्रकट करता है ।

चित्तशर्मा—अरी, जाड्य, चापल, मूर्खता, जो भी तुम कहना चाहती हो, सभी तुम्हारे ही गुण हैं, क्या जननीके गुण सन्तानमें नहीं आते हैं ?

अविद्या—(सखेद, स्वगत) न जाने, किसने क्या समझा दिया है ? यह पहले जैसा व्यवहार हम लोगोंके प्रति नहीं करता है ।

चित्तशर्मा—(मुस्कुराकर) इस कलहसे खिन्न राजा सर्वथा निवृत्तिकी ओर आकृष्ट-से दीख रहे हैं ।

(ततः प्रविशति संकल्पो दौवारिकः।)

दौवारिकः—देव, तापसी काचन सशिष्या प्रतिहारभुवमागता देवपादं दिदृक्षते।

राजा—सादरं प्रवश्यताम्।

(ततः प्रविशति तापसीवेषा सह शिष्यया निवृत्तिः।)

निवृत्तिः—अये शान्ते, तत्रभवत्या शिवभक्त्यायाहमेवं किलाभिहितास्मि—'वत्से निवृत्ते, मायागहनकर्मणश्चित्तशर्मणो भेदनेनैव जीवराजोऽभिमुखीकरणीयः' इति। हन्त। परमार्थाविसंवादी भवति महात्मनामध्यवसायः। तथाहि। प्रवृत्तिरिति विषयवासनेति च ये तावदिमे सांप्रतमविद्यासाम्राज्यसर्वस्वनिर्वाहिके प्रथिते, एतयोस्तावदन्धयोरिव चित्तशर्मावलम्बमन्तरेण कियानपि न प्रचारः। अस्मिंस्तु ततो भेदं गमिते तदन्धवायः सर्वोऽपि शिथिलितप्रायः, तदिदमभिसंधायैव तद्भेदनाय भगवत्या शिवभक्त्या प्रथमत एव विवेकादयः प्रहिताः। (पुरो विलोक्य।) स एष जीवस्तेन चित्तशर्मणा सह संलपन्नित आस्ते। यावदेनमुपसर्पामि। (उपसर्पति।)

(संकल्प नामक दौवारिकका प्रवेश)

दौवारिक—देव, शिष्याको साथ लिये कोई तापसी आपके दर्शनार्थ दरवाजेपर उपस्थित है।

राजा—सादर बुला लाओ।

(शिष्याके साथ तापसीवेषा निवृत्तिका प्रवेश)

निवृत्ति—अरी शान्ति, पूज्या शिवभक्तिने मुझसे कहा है कि वत्से निवृत्ति, 'मायाके कारण विचित्र कर्मशील चित्तशर्माको फोड़कर ही जीवराजको अभिमुख करना होगा'। हाय, बड़े आदमियोंकी चेष्टायें परमार्थसे मिलती-जुलती हुआ करती हैं। देखो, प्रवृत्ति और विषयवासना, ये दोनों जो इस समय अविद्याके साम्राज्यको चलानेवाली मानी जाती हैं, ये दोनों ही अन्धी हैं, चित्तशर्माके अवलम्बनको नहीं पाकर इनका थोड़ा भी संचार संभव नहीं है। चित्तशर्माके फूट जानेपर उसका सारा वंश ही शिथिल पड़ जाता है। यही सोचकर भगवती शिवभक्तिने चित्तशर्माको फोड़नेके लिये पहले ही विवेकादिको भेज दिया है। (आगे देखकर) वही जीवराज चित्तशर्माके साथ बातें

जीवः—(निर्वर्ण्य ।) इयं सा

गाढोन्नद्धजटाकलापकपिलश्रीपूतबालातपा
बिभ्राणा भसितानुलेपधवलच्छायां तनुं पावनीम् ।
भिक्षापात्रमयूरपिच्छचयभृत्पाणिद्वया मेऽधुना
कापायाम्बरधारिणी कलयति स्वान्ते धृतिं तापसी ॥ ३९ ॥

(उपसृत्य प्रणमति ।)

निवृत्तिः—सान्द्रानन्दघनो भूयाः ।

जीवः—भगवति, इत आस्यताम् । (इत्यासनं निर्दिशति ।)

(निवृत्तिरुपविशति ।)

राजा—कः प्रदेशोऽलंक्रियते तत्रभवत्या, कानि च भुवनपावनान्यभिधानाक्षराणि, किमुद्देश्यकश्चायमिहागमः, इति विविदिषामि ।

निवृत्तिः—वत्स, श्रूयताम् ।

दर्पणवदभिमुखानां दर्शयदात्मस्वरूपमखिलानाम् ।
विस्मयशेवधिरास्ते वेदारण्याभिधं शिवक्षेत्रम् ॥ ४० ॥

करता हुआ इधर आता है । मैं भी तब तक उसके पास जाती हूँ । (समीप जाती है) ।

जीव—(देखकर) कसकर बाँधी गई पीताभ जटासे बालातपकी कान्तिको पवित्र करनेवाली, भस्मलेपसे धवल पवित्रशरीरधारिणी, भिक्षापात्र तथा मयूरपिच्छको दोनों हाथोंमें रखती हुई एवं कापायवस्त्रधारिणी यह तापसी हृदयको शान्ति प्रदान कर रही है ॥ ३९ ॥

(समीप जाकर प्रणाम करता है)

निवृत्ति—आनन्दमय हों ।

जीव—भगवति, यहाँ बैठिये । (आसनकी ओर संकेत करता है)

(निवृत्ति बैठती है)

राजा—आप कहाँकी रहनेवाली हैं ? आपके शुभनामको कौन-कौन-से अक्षर पवित्र करते हैं ? किस उद्देश्यसे आप यहाँ आई हैं ? मैं यह सब जानना चाहता हूँ ।

निवृत्ति—वत्स, सुनो—दर्पणकी तरह सामने आनेवाले समस्त पदार्थों-

तस्मिन्निष्टफलद्रुमाः कति ततैः शाखाशतैरुच्छ्रिता
हृद्योपासनयल्लरीकवचितास्तत्र प्रदेशाः कति ।
तेषां मूलफलादिकानि कति वा तत्सर्वमास्तामहो
तत्रत्थामृतमाधुरी न परतः कुत्रापि सत्यं ब्रुवे ॥ ४१ ॥
तत्रास्ते शिवभक्तिरित्यनुपमा तत्त्वार्थसंदर्शने
तत्संदर्शितसंप्रदायसरणिस्तस्यास्तु शिष्यास्म्यहम् ।
विज्ञानप्रभवां निवृत्तिरिति मामाचक्षते योगिनी
धर्मिष्ठस्य दिदृक्षया तव मनागत्राहमभ्यागता ॥ ४२ ॥

राजा—परमनुगृहीतोऽस्मि निरुपाधिकेन वात्सल्येन । किमस्मादृशामपि तत्र प्रवेशः स्यात् ।

निवृत्तिः—परमकारुणिक्याः सकलपुरुषार्थप्रसविन्याः शिवभक्तेः प्रसादादेव सुकरस्तत्र प्रवेशः । तस्यां प्रसीदन्त्यामेव तत्रत्याः शमदमा-

---

का दर्शन करानेवाला वेदारण्य नामक एक शिवक्षेत्र है, जो आश्चर्यकी खान है ॥ ४० ॥

वहाँ फैली हुई सैकड़ों शाखाओंसे युक्त कुछ इष्टफलप्रद वृक्ष हैं जिनपर मनोरम उपासनारूप लतायें लिपटी हुई हैं, उन वृक्षोंसे युक्त कुछ रम्य प्रदेश हैं, उन वृक्षोंके मूलफल आदि बहुत हैं । जाने दीजिये उन बातोंको, परन्तु फिर भी इतना मैं सत्य कह रही हूँ कि वहाँके अमृतकी माधुरी अन्यत्र कहीं भी दुर्लभ है ॥ ४१ ॥

उसी वेदारण्यमें अनुपम शिवभक्ति रहा करती है, उसीने मुझे तत्त्वका मार्ग दिखलाया है तथा मैं उसीकी शिष्या हूँ । मैं विज्ञानकी पुत्री हूँ । लोग मुझे निवृत्ति नामसे पुकारा करते हैं । आप धर्मात्मा हैं इसीसे आपके दर्शनार्थ मैं यहाँ आई हूँ ॥ ४२ ॥

राजा—आपके इस निष्कपट प्रेमसे मैं परम अनुगृहीत हूँ । क्या हमारे सदृश जनोंका भी वहाँ प्रवेश संभव है ?

निवृत्ति—परमदयालु तथा सकलपुरुषार्थजननी शिवभक्तिके प्रसादसे ही वहाँ प्रवेश हो सकता है । शिवभक्तिके प्रसन्न होते ही वहाँके शम-दम

R. SK. S. LIBRARY
Acc. No. 1117

दयो विधेया भवन्ति। विधेयेषु च तेषूपनिषद्देव्याः परिचयेन महत्तरं श्रेयो भवेत्।

राजा—एतादृशी विष्णुभक्तिरिति हि तत्र तत्र श्रूयते। शिवभक्तिरिति किमुच्यते नामान्तरम्।

निवृत्तिः—अथ किम्। शृणु तावत्।

विष्णुर्न शिवादन्यः शिवशक्तेः स खलु पौरुषं रूपम्।
शक्तिश्च नातिरिक्ता शक्तिमतोऽतः शिवात्परं नान्यत्॥ ४३॥

राजा—(सोत्कण्ठम्।) भगवति, कीदृशं तन्महत्तरं श्रेयः।

निवृत्तिः—(कर्णे।) एवमिव।

राजा—(सहर्षोल्लासमपवार्य)। अपि नाम जातु ममैतदुपपद्येत।

चित्तशर्मा—वयस्य, महानुभावायास्तदस्या निवृत्तेरनुग्रहादेव तदिदं श्रेयो लभ्यते।

अविद्या—(साशङ्कम्।) नूनममीषामियच्चिरोपनतेन कुटिलेङ्गितेन

आदि वशवर्त्ती बन जाते हैं। उनके वशवर्ती होनेपर उपनिषद् देवीका परिचय होता है जिससे महान् कल्याण होता है।

राजा—ऐसी तो विष्णुभक्ति ही जहाँ-तहाँ सुनी जाती है, क्या शिवभक्ति यह उन्हींका नामान्तर है?

निवृत्ति—और क्या? सुनिये—

विष्णु शिवसे भिन्न नहीं हैं, वे तो शिवभक्तिके पौरुषरूप हैं, और शक्ति शक्तिमान्से भिन्न नहीं होती है, अतः शिवके अतिरिक्त कुछ नहीं है॥ ४३॥

राजा—(उत्कण्ठासे) भगवति, वह महान् कल्याण क्या वस्तु है?

निवृत्ति—(कानों में) इसी तरह।

राजा—(हर्षपूर्वक) क्या मुझे यह मिल सकता है?

चित्तशर्मा—मित्र, इस महाप्रभावा शिवभक्तिके अनुग्रहसे ही यह कल्याण प्राप्त होता है।

अविद्या—(आशङ्काके साथ) अवश्य इन लोगोंके इन कुटिल इशारोंसे

संलापेन मत्प्रतीपेन भवितव्यम्। भवतु। विमृश्य प्रतिविधास्यामि।

(नेपथ्ये वैतालिकौ।)

एकः—

रोमन्थालसलोचना वनमृगी निद्राति मूले तरो-
रम्भस्तप्तमपास्य मीननिवहः पङ्काविलं गाहते।
धावं धावमितस्ततो मरुजले तापाभिभूतः करी
सोत्कण्ठं कलहंसिकाकलरवैर्व्याघर्तते पद्मिनीम् ॥ ४४ ॥

अपरः—

तापत्रस्त इवाधुना बहिरितो न स्पन्दते मारुतः
प्राणायामवशेनायोगिन इव स्तब्धा इमे पादपाः।
छाया पश्चिमदिक्प्रवृत्तिविततां प्रक्षीयमाणा शनै-
रेषा ह्यभ्युदयाचलश्रियमितो जाता निवृत्त्युन्मुखी ॥ ४५ ॥

चित्तशर्मा—(सहर्षम्। जनान्तिकम्।) वयस्य, तदिदं वैतालिकवचन-मेव निदर्शनं मदभिहितार्थे।

पूर्ण वार्त्तालापमें मेरे विरुद्ध कुछ सोचा जाता होगा। अस्तु, विचारकर जवाब दिया जायगा।

(नेपथ्यमें दो वैतालिक)

एक—पगुरानेके समय अलसाई हुई आँखोंवाली यह वनमृगी वृक्षके नीचे ऊँघ रही है, गरम जलसे भागकर मछलियाँ पङ्किल जलमें घुस रही हैं, मरुजलमें इधर-उधर दौड़ते रहनेसे सन्तप्त यह वनगज कलहंसियोंका कलरव सुनकर पद्मिनीपूर्ण जलाशयमें लौट रहा है ॥ ४४ ॥

दूसरा—यहाँ हवा बाहर नहीं निकल रही है, मानो वह भी ग्रीष्मके तापसे डरा हुआ हो, पेड़ उसी तरह निश्चल हो रहे हैं जैसे प्राणायामनिरत योगी। पश्चिमकी ओर फैली हुई छाया क्रमशः क्षीण होते-होते उदयाचलकी ओर निवृत्युन्मुख हो रही है ॥ ४५ ॥

चित्तशर्मा—(सहर्ष, छिपाकर) यह वैतालिक-वचन ही हमारे कहे गये अर्थमें दृष्टान्त है।

(राजा सानन्दमभ्युपगच्छति ।)

अविद्या—देव, मध्याह्नसमयोऽतिवर्तते । तन्माध्यंदिननियमनिर्वर्तनाय विसृज्यतां तापसी । देवेनापि माध्यंदिननियमो निर्वर्त्यन्ताम् । अहमपि तदुपकरणानि संनिधापयामि ।

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे ।)

प्रथमोऽङ्कः समाप्तः ।

(राजा सानन्द स्वीकार करता है)

अविद्या—देव, मध्याह्न समय बीता जा रहा है, अतः मध्याह्नकृत्य करनेके लिये तापसीको छुट्टी दें, आप भी मध्याह्नकृत्य सम्पन्न करें, मैं मध्याह्नकृत्यके लिये अपेक्षित सामग्री उपस्थित करती हूँ ।

(सभीका प्रस्थान)

प्रथम अङ्क समाप्त ।

द्वितीयोऽङ्कः

(ततः प्रविशति प्रवृत्तिरसूया च ।)

असूया—ततस्ततः ।

प्रवृत्तिः—प्रागेव 'चित्तशर्मणा सह रहसि कतिपये तापसाः संलपितवन्तः' इति चेटीमुखादवकर्ण्य संदेहतरलिता तदनु समक्षमेव कर्णे किमपि रहस्यमभिधाय राजानमतिपर्युत्सुकितवत्या कयाचन च तापस्या नितान्तसंक्षोभितहृदया प्रियसखी भट्टिनी मामवोचत्—

वेदारण्यनिकेतनाः शमदमप्रष्ठा महायोगिनः
श्रूयन्ते कतिचिन्निवृत्तिरिति च ख्याता तथा तापसी ।
ते सर्वे शिवभक्तिमार्गनिरता ये तावदत्रागता-
स्तन्नामान इमे परे किमथवा साक्षात्त इत्यासृशोः ॥ १ ॥
यदि खलु तदितर एते यत्किंचिदिदं ततो न भेतव्यम् ।
अथ यदि त एव चेत्स्युर्यत्नो भूयानिह प्रतीकारे ॥ २ ॥

(प्रवृत्ति तथा असूयाका प्रवेश)

असूया—तब क्या हुआ ?

प्रवृत्ति—पहले ही—'चित्तशर्माके साथ कुछ तापसोंने गुप्तवार्ता की है' चेटीके मुखसे यह खबर पाकर स्वामिनीको संदेह हुआ था, उसके बाद अपने सामने ही जब किसी उत्सुक तापसीने राजाके कानमें कुछ रहस्य कहा तब तो स्वामिनीका हृदय नितान्त क्षुब्ध हो उठा, उसी समय स्वामिनीने मुझसे कहा—

"सुना जाता है कि कुछ शम-दम वगैरह महायोगी तथा निवृत्ति नामकी तापसी वेदारण्यमें निवास करते हैं, वे सभी शिवभक्तिके अनुयायी हैं, अभी-अभी जो लोग यहाँ आये थे वे क्या वही हैं अथवा दूसरे, तुम स्वयम् इसका पता लगाओ ॥ १ ॥

यदि वे लोग दूसरे हैं तब कोई बात नहीं है, तब इनसे डरनेकी आवश्य-

अतस्तदिदमयिचिकित्समासृश्य समागच्छ इति, तदनु 'कथंचिद्वेदारण्यमधिगम्य केन कुत्र निषद्यते, कः किमाचरति, कथ मिदमवगच्छेयम्' इति चिन्तातरलितायां मयि यदृच्छया तत्र कामना संप्राप्ता। तदनु तया विविच्य सकलमभिहितम्—

'अस्मत्कामपुरोगमैः सममितः काम्यक्रियोपासनाः
शुद्धास्ते परतः शमप्रभृतयस्ते मन्यते सांप्रतम्।
राजा शुद्धतरः किलैष तदिमं व्याकृष्य दुःसङ्गतो
नीचादस्य महात्मनः सुसदृशीं दद्यामविद्यामिति ॥ ३ ॥

तदेवमविद्याकुलविघटनाय विरक्तिनिवृत्तिभ्यां सह विवेकशमदमादिबहुलपरिवारा शिवभक्तिरियमत्र प्रभवति' इति। त्वं पुनः क प्रस्थितासि।

असूया—भट्टिन्याहमेवं संदिष्टास्मि—'असूये, काम्यक्रियोपासनाः समेत्य ब्रूहि—कदाचिदयं तत्र राजा यदि समागच्छेत्तदा स यथा भक्तिविरक्तिनिवृत्तिप्रभृतिभिर्नाक्रम्येत, तथा युष्मदोषविलासचातुर्यरामणीयकै-

---

कता नहीं है, हाँ यदि ये लोग वे ही हैं तब तो इनके प्रतीकारमें बहुत बड़ा यत्न करना होगा ॥ २ ॥

अतः तुम स्वयम् इन बातोंका ठीकसे पता लगाकर आओ"।

इसके बाद मैं चिन्ता कर ही रही थी कि किसी प्रकार वेदारण्यमें जाकर कौन कहाँ रहता है ? क्या करता है ? इसका पता लगाऊँ, तब तक स्वयम् कामना वहाँ पहुँच गई। उसने विचारकर सारी बातें कहीं।

"हमारे कामके साथ हैं शुद्ध काम्य क्रियायें तथा उपासनायें, ऐसा शम प्रभृति समझते हैं। राजा शुद्धतर है, उसको नीच दुःसङ्गसे हटाकर उस महात्माके लायक अविद्यासे उसे युक्त कर दिया जाय ॥ ३ ॥

इस प्रकार अविद्याकुलको विघटित करनेके लिये विरक्ति निवृत्तिके साथ शम-दम आदिसे युक्त शिवभक्ति ही समर्थ है"। तुम कहाँ चली हो ?।

असूया—स्वामिनीने मुझसे कहा है कि—"असूये, तुम काम्य क्रिया तथा उपासनाओंसे जाकर कहो कि—'यदि कदाचित् राजा वहाँ जायँ तो उनपर भक्ति, विरक्ति, निवृत्ति प्रभृति अपना प्रभाव नहीं डाल सकें, उस तरहका प्रबन्ध करके तुम उन्हें अपने विलास-चातुर्य तथा रमणीयताके द्वारा अपने वशमें

रेव वशीकरणीयः' इति। तत् 'इह को मार्गः, किं मुखम्' इति बुभुत्सातरलिता दैवादत्रभवत्योपगता विदितकरणीयास्मि। तत्साधयामि।

प्रवृत्तिः—इदमपि स्थान एव संविधानम्, अवश्यकरणीयं च। भूयानतीतः कालः। इयता हि कालेन चित्रशालाभ्यन्तरे विषयवासनया सह भट्टिनी चिरेण मम मार्गं प्रतीक्ष्य निर्विद्येत। तदहमविलम्बितमेव तत्सकाशं गच्छामि। त्वयापि यथानियोगमाचर्यताम्।

(इति परिक्रम्य निष्क्रान्ते।)

प्रवेशकः।

(ततः प्रविशति विषयवासनया साकमविद्या।)

अविद्या—सखि विषयवासने, भवत्सहायापि नन्वहमीदृशीं दशामुपागतास्मि।

विषयवासना—किमेतावती मयि भट्टिन्याः प्रतिपत्तिः।

अविद्या—किमल्पप्रभावा भवती। तथा हि।

कर लेना"। अतः वह कार्य कैसे प्रारम्भ किया जाय? उसका क्या मार्ग होगा! यही जाननेकी इच्छासे मैं चञ्चल हो रही हूँ, भाग्यवश आप मिल गईं और मुझे सारे उपाय ज्ञात हो गये। अच्छा, तो अब मैं चलती हूँ।

प्रवृत्ति—यह भी ठीक ही है, अवश्य कर्त्तव्य है यह। बहुत समय बीत गया है, इतने समयमें विषयवासनाके साथ चित्रशालामें बैठी स्वामिनी मेरे लिये प्रतीक्षा करती हुई खिन्न हो उठी होंगी। मैं शीघ्र उनके पास जाती हूँ। तुम भी अपना कार्य आदेशानुसार सम्पादित करो।

(दोनों जाती हैं)

प्रवेशक समाप्त।

(विषयवासनाके साथ अविद्याका प्रवेश)

अविद्या—सखि विषयवासने, तुम्हारी सहायता प्राप्त करके भी मैं क्यों ऐसी दशा भोग रही हूँ?

विषयवासना—स्वामिनी मुझपर इतना भरोसा क्यों करती हैं?

अविद्या—क्या तुम्हारा प्रभाव कम है? क्योंकि—

शास्त्राणि सन्तु सुबहूनि पठन्तु तानि
सर्वं त्वमन्यथयसे निजवैभवेन ।
कृष्टस्त्वया विवलते विषयेषु नाम
बद्धो बलीमुख इवाशरणो बुधोऽपि ॥ ४ ॥

विषयवासना—सखि, किं तावदद्य ते संप्राप्तम् ।

अविद्या—शृणु तावत् ।

अग्रेऽभूदयमेक एव न परः कश्चिद्द्वितीयोऽभव-
त्तादृक्षस्य मयैव सित्रतनयाः संबन्धिनो बान्धवाः ।
किं भूयः कथनेन भोगविषया लोका इमे लम्भिताः
सोऽयं मय्यधुना विभाति विमुखः केनेति न ज्ञायते ॥ ५ ॥

किं च ।

किं दैवं परिपन्थि वा मम कया किं बोधितं वा मृषा
तादृक्प्रेमतरङ्गितोऽतिसरसः स्वामी स जीवोऽधुना ।
मामालोकयते जनानिव जनः शुष्कप्रवृत्त्या दृशा
किंरूपेण मनोहरेण बहुना भोग्येन भाग्येन वा ॥ ६ ॥

बहुत सारे शास्त्र हुआ करें, लोग उन्हें पढ़ा करें, परन्तु तुम अपने पराक्रम-से उन्हें अन्यथा सिद्ध कर देती हो । तुम्हारे द्वारा विषयोंमें आकृष्ट होकर विद्वान् जन भी बँधे हुए बन्दरकी तरह इधर-उधर डोला करते हैं ॥ ४ ॥

विषयवासना—सखि, आज तुमको क्या हो गया है ?

अविद्या—सुनो—

पहले यह जीवराज अकेला था, इसका कोई दूसरा नहीं रहा, उस स्थितिमें मैंने ही इसके मित्र, पुत्र, सम्बन्धी तथा बान्धव जुटाये । और क्या कहूँ, यह भोगविषयक लोक प्राप्त कराया, वही जीवराज इन दिनों मुझसे विमुख हो गया है, ऐसा क्यों हुआ, यह बात समझमें नहीं आ रही है ॥ ५ ॥

क्या मेरा भाग्य विपरीत हो गया है, या किसीने कुछ झूठ-सच समझा दिया है, जिससे प्रेमपरायण मेरे स्वामी जीवराज इस समय मुझे उस तरह देखने लगे हैं जैसे एक अजान आदमी दूसरेको देखता है । इस स्थितिमें मेरे इस मनोरम रूप तथा इस भूरिभाग्यका क्या फल होगा ? ॥ ६ ॥

न केवलमस्य विमुखतैव मां व्यथयति। अपि तु तदनुमीयमाना विमतनायिकासक्तिसंभावनापि।

विषयवासना—(सोल्लासम्।)

ननु ते विदिता सकलैरघटितघटनापटीयसी शक्तिः।
अहमपि ते सध्रीची कथमस्थाने विशङ्कते भवती ॥ ७ ॥

सम्यक्प्रवृत्तिरुपलभ्यताम्।

अविद्या—(स्मृतिमभिनीय।) प्रागेव शङ्कितविषयोदन्तविमर्शनाय प्रहिता प्रवृत्तिः किमद्यापि नागता।

(ततः प्रविशति प्रवृत्तिः)

प्रवृत्तिः—कथमत्रैव विषयवासनया सह भद्रपीठमध्यास्ते देवी। यैषा

पश्यन्त्येव न पश्यति प्रणयिनी वस्तून्यहो चक्षुषा
शृण्वत्येव शृणोति न प्रियसखी नर्मानुलापानपि।

केवल जीवराजकी विमुखता ही मुझे नहीं सता रही है; उनकी विमुखता से अनुमित होने वाली नायिकान्तरमें उनकी आसक्तिकी संभावना भी मुझे सतानी है।

विषयवासना—(विनोदके स्वरमें) तुम्हारी अघटितघटनापटीयसी शक्तिसे सभी परिचित हैं, मैं भी तुम्हारे साथ ही हूँ, फिर तुम व्यर्थ की शङ्का क्यों करती हो? ॥ ७ ॥

पक्की खबर पानेका प्रबन्ध करो।

अविद्या—(स्मरणका अभिनय करके) इस शङ्कित विषयका पता लगाने के लिये मैंने पहले ही प्रवृत्तिको भेजा था, वह अबतक क्यों नहीं आई?

(प्रवृत्तिका प्रवेश)

प्रवृत्ति—क्यों, विषयवासनाके साथ स्वामिनी यहीं सिंहासनपर विराज रही हैं?

यह—

स्नेहभरी दृष्टियोंसे वस्तुओंको देखती हुई भी नहीं देखती हैं, और प्रिय-सखियोंके स्नेह-वार्त्तालापको सुनती हुई भी नहीं सुनती हैं, इनका चित्त कहीं

चेतः क्वापि वचः क्वतोऽपि तदहं मन्येऽधुना चिन्तया
पत्युर्विप्रियजन्मना चिरमसावाकृष्यते केवलम् ॥ ८ ॥

अत एव किल—

प्रातश्चन्द्रकलेव पुष्यति दृशोर्नानन्दमस्यास्तनु-
र्निश्वासोष्मविघट्टनेन गलितो बिम्बाधरे शोणिमा ।
वीटी चित्रगतेव तिष्ठति चिरं चिन्मुद्रया मुद्रिता
संत्रस्तो विफलोद्यमः परिजनः पर्यन्तमासेवते ॥ ९ ॥

तदुपसर्पाम्येनाम् । (उपसर्पति ।)

देवी—(पुरोऽवलोक्य ।) अयि प्रवृत्ते, ननु स्मृतमात्रा एव संनिहितासि मया तत्रैव पुनरपि किंचित्कार्यविशेषाय प्रहिता किमसूया त्वया दृष्टा ।

प्रवृत्तिः—अथ किम् । अभिनन्दितश्च भवदादेशः ।

अविद्या—अनेन वाक्येन त एव शमदमादयः, सैव च निवृत्तिरपि, कार्यं च तदेव, यन्मया शङ्कितमिति ज्ञायते ।

है, और वचन कहीं हैं ? मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि यह प्रियतमके रूक्ष व्यवहारसे उत्पन्न चिन्ताके वश हो रही हैं ॥ ८ ॥

इसीलिये यह—

प्रातःकालिक चन्द्रकलाकी तरह दीखनेवाली इनकी देह आँखोंको आनन्दित नहीं करती है, गरम निश्वासके सम्पर्कसे अधरबिम्बकी लाली जाती रही है, इसके मुँहमें पानका बीड़ा चित्रलिखित के समान पड़ा रहता है, यह स्वयं ज्ञानमुद्रामें लीन रहती हैं, और इनके परिजन डरके मारे इन्हें प्रसन्न करनेके प्रयासमें विफल हुआ करते हैं ॥ ९ ॥

तबतक इनके पास चला जाय । (समीप जाता है)

देवी—(आगेकी ओर देखकर) अरी प्रवृत्ति, याद करते ही तुम आ गई । मैंने कुछ कार्यवश असूयाको भी वहीं भेजा था, क्या तुमने उसे देखा ?

प्रवृत्ति—और क्या ? मैंने आपके आदेशका अभिनन्दन भी किया ।

अविद्या—इसके इस वाक्यसे मालूम पड़ता है कि वे ही शम-दम आदि थे तथा वही निवृत्ति थी, उनका कार्य भी वही था जैसा मुझे संदेह हुआ था ।

प्रवृत्तिः—अथ किम् । (इति कामनाकथितमखिलं कथयति ।)

अविद्या—अयि विषयवासने, स्थान एव खलु मे तर्कः । तत्किमत्र मन्यसे ।

विषयवासना—सखि, न भेतव्यम् । यत्किंचिदेतत् ।

स्वाध्यायाध्ययनावबोधविहितानुष्ठाननिष्ठाक्रमैः
कान्तारे गिरिकंदरे तृणपयोवृत्त्या च शुद्धान्तरः ।
आरुह्य श्रवणादितुङ्गपदमध्यास्तां निदिध्यासनात्
कं नस्योतमिवापकृष्य विषये बध्नामि कामादिभिः ॥ १० ॥

(विमृश्य ।) हन्त, शमदमादिसंबन्धेन महोपनिषदुपदेशेन च कश्चिदविद्यामपहाय विद्यामधिगमिष्यति । तदहं क्व गमिष्यामि ।

प्रत्यक्षसिद्धमपलप्य गिरामभूमि-
मन्यत्सुखं किमिति हा रसिका गृणन्ति ।

अथवा—

श्रोता जनो यदि मिलेदतिमन्दबुद्धिः
किं किं न बोधयति वञ्चनकेलिलोलः ॥ ११ ॥

प्रवृत्ति—और क्या ? (कामनाद्वारा कहा गया समस्त वृत्तान्त कहती है)

अविद्या—अरी विषयवासना, मेरा सोचना ठीक ही है, तुम क्या समझती हो ?

विषयवासना—सखि, भय मत करो, यह बहुत साधारण बात है ।

स्वाध्याय, बोध, तदनुकूल आचरण, निष्ठा क्रमसे वनमें, पर्वतगुफामें, तृण तथा पानीपर जीवन बितानेसे शुद्धान्तर जन भले ही श्रवणादिके तुङ्ग शिखर पर चढ़ जाये, निदिध्यासन किया करे, मैं उसको नाकमें नाथ पहनाकर कामादि की सहायतासे विषयरूप खूँटेमें बाँधती हूँ ॥ १० ॥

(विचारकर) अहा, शम-दम आदिके संबन्ध तथा महोपनिषद्के उपदेशसे यदि कोई अविद्याको छोड़कर विद्याको अपनायेगा तो मैं कहाँ जाऊँगी ?।

प्रत्यक्ष सिद्ध वस्तुका अपलाप करके वाणीसे परे किसी सुखका वर्णन रसिकजन क्यों करते हैं ? (अथवा) अगर सुननेवाला कोई महामूर्ख मिल जाये तो ठग लोग क्या-क्या नहीं समझा दें ? ॥ ११ ॥

मत्प्रसूतयोरसंभावनाविपरीतभावनयोः प्रभावं न कोऽपि विजानाति। किं बहुना—

वेदारण्यमुपैतु तत्र वियदालम्बा मृषावादिनो
ये तेषां च वचः शृणोतु मनुतां तथ्यं तदेव स्वयम्।
मत्पृष्टं प्रतिवक्तु किंचन तनौ कीटादितोदे मना-
गुत्प्लुत्यैष कुतोऽनुधावति मृषाभूतं किलास्याखिलम् ॥ १२ ॥

स एष विपरीतभावनाप्रभावः केन वा जय्यः। किं च मयि प्रभवन्त्यामिह कस्यचिद्ब्रह्मनिष्ठा का नाम—

भस्मावगुण्ठननिमीलनमोहनीया
येयं चकास्ति कुहचित्परमात्मनिष्ठा।
एषा शिवोऽहमिति किंचन शब्दमात्र-
मन्तर्न किंचिदपि न भ्रमितव्यमत्र ॥ १३ ॥

अयि भट्टिनि, प्रवृत्तिर्नाम किमियं साधारणीति मन्यसे। निवृत्त्या वशीकृतमपि बलादियमपकर्षत्येव। पश्य तावत्—

मेरी पुत्री असंभावना तथा विपरीत भावनाके प्रभावको कोई नहीं जानता।

अधिक क्या कहा जाय?

वेदारण्यमें जावे, वहाँपर आसमानमें लटकनेवाले जो कुछ झूठे हैं उनकी बातें सुने, स्वयं उसको तथ्य भी मान ले, परन्तु मैं पूछती हूँ उसका उत्तर दे कि उस स्थितिमें भी कीड़े शरीरमें काटते हैं तो झटसे भाग क्यों खड़ा होता है, इससे सिद्ध है कि उसका सारा आडम्बर व्यर्थ है ॥ १२ ॥

विपरीत भावनाके इस प्रभावको कौन जीतेगा? और मेरी प्रभुताके आगे किसीकी ब्रह्मनिष्ठा क्या?

भस्मी रमाना, आँखें मूँदकर बैठना, इन आचारोंसे सुन्दर दीखनेवाली 'शिवोऽहम्' परमात्मनिष्ठा भले ही कहीं हो परन्तु वह शब्दमात्र है, उसके भीतर कुछ सार नहीं है, उसमें भ्रम नहीं करना चाहिये ॥ १३ ॥

स्वामिनि, प्रवृत्तिको क्या आप साधारण समझती हैं, निवृत्तिके द्वारा वशीकृत जनको भी यह बलात् अपनी ओर आकृष्ट कर लेती है, देखिये—

आयुर्भूरि गतं पतन्ति सुदृशस्तुच्छैरतं व्यापृतै-
र्भूतं भावि यथा तथास्त्विति भृशं शंभोः सपर्याविधौ ।
संनद्धोऽपि समाधिनिष्ठहृदयोऽप्युत्सृज्य सर्वं निज-
व्यापारे समयातिपत्तिचकितः कृष्टोऽनया धावति ॥ १४ ॥

तदेवमपरिमेयप्रभावयोरावयोरनवरतमपि भवदभ्युदयैकतानभावयोः सत्योः किं नाम भवदभिमतमापद्येत । अपि च कुटिलकरालकर्मग्रहनैर-तदुर्वारैर्मोहादिभिरस्मदीयपरिवारैरनवरुद्धतया परिमितोऽपि न खलु कश्चिद्देशः कालो वा । अतस्तानतीत्य वेदारण्यप्रवेशोऽतिदुर्घट एव । प्रविष्टोऽपि काम्याभिः क्रियाभिरुपासनाभिश्च बलादाकृष्यत एव ।

प्रवृत्तिः—अयि भट्टिनि, किंचिदहं विज्ञापयामि ।

विलासिनीनां पुरुषप्रतीपतारसानुविद्धा यदि शोभते परम् ।
यदि स्म सा भग्नरसा कृतव्यथा तदेव तासां गरिमव्यपोहनम् ॥१५॥

लम्बी आयु निकल गई, स्त्रियाँ अलग हो गईं, इन व्यापारोंमें क्या धरा है ? भूत भावी जो हो सो हो, इस प्रकार शिवाराधनामें तत्पर समाधिमग्न जन भी सारे जप ध्यानको छोड़कर समयातिपातके भयसे भाग खड़ा होता है, यह तो प्रवृत्तिका ही आकर्षण है ॥ १४ ॥

इस प्रकारसे अनन्तप्रभावशालिनी हम तथा प्रवृत्ति जब आपके अभ्युदयके लिये सन्नद्ध हैं तब आपके किस अभिमतपर आँच आ सकती है । और—कुटिल तथा भयङ्कर कर्मसे भीषण अतिदुर्वार हमारे मोहादि परिवार सर्वत्र व्याप्त हैं, कोई भी ऐसा स्थान तथा काल नहीं है जहाँ वे नहीं हों, ऐसी स्थितिमें वेदारण्यप्रवेश दुष्कर है । किसी तरह प्रवेश हो भी जाय तो काम्य क्रिया तथा उपासनायें बलपूर्वक अपनी ओर आकृष्ट कर लेंगी ।

प्रवृत्ति—स्वामिनि, मुझे कुछ कहना है ।

विलासिनियोंके लिये पुरुषके साथ झगड़ना रसयुक्त हो तभी अच्छा लगता है, यदि उसका रस नष्ट हो गया हो, व्यथा भर गई हो, तो समझिये कि विलासिनियोंका गौरव समाप्त है ॥ १५ ॥

अतो विमुखोऽपि विप्रियकार्यपि मन्युवेगमन्तरेव निगृह्य विनयेन चातुर्येण च राजायमनुरञ्जनीयः। अपि च य एष चित्तशर्मा राजनर्मसचिवः, सर्वमेतस्मिन्प्रतिष्ठितम्। अतोऽयमुपचारैरनुपदमपि विधेयीकरणीयः। आवामपि समुचितेषु केषुचिदर्थेषु व्याप्रियावहे।

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे।)

द्वितीयोऽङ्कः समाप्तः।

अतः विमुख, अप्रियकारी होनेपर भी आप अपने क्रोधवेगको रोककर विनय तथा चातुर्यसे राजाका अनुरञ्जन करती रहें। और—यह जो चित्तशर्मा नामका राजाका नर्मसचिव है, सब कुछ उसीपर निर्भर है। अतः—उपचार द्वारा उसे शीघ्र वशमें किया जाय। हम दोनों भी वयोचित कार्योंमें संलग्न होती हैं।

(सभीका प्रस्थान)

द्वितीय अङ्क समाप्त।

तृतीयोऽङ्कः

(ततः प्रविशति निवृत्तिः ।)

निवृत्तिः—'अत्रभवत्याः शिवभक्तेर्वचसि विस्रम्भेण जीवराजस्य विद्या-प्रतिकृतिं दर्शयिष्यामि' इति कथितवत्यस्मि । तत्किमद्यापि सा न प्रेषिता ।

(ततः प्रविशति चित्रपटहस्ता विरक्तिः ।)

विरक्तिः—आज्ञप्तास्मि शिवभक्त्या—'चित्रपटोऽयं निवृत्तिहस्ते दातव्यः' इति । तत्क्व सा निवृत्तिर्भवेत् । (अग्रतोऽवलोक्य ।) कथमियं निवृत्तिः । यैषा

समीरणे वाति तृणेऽपि वा चलत्यवेक्षमाणा परितो दिगन्तरम् ।
जनस्य कस्यापि चिरप्रतीक्षया मनोऽतिरूक्षं दधती समीक्षते ॥ १ ॥

यावदस्या हस्तं चित्रपटं प्रापयामि । (इति परिक्रामति ।)

निवृत्तिः—(विरक्तिमवलोक्य ।) सखि, क्व प्रस्थितासि ।

(निवृत्तिका प्रवेश)

निवृत्ति—पूज्या शिवभक्तिकी बातपर आस्था करके मैंने कह दिया था कि मैं जीवराजको विद्याका चित्र दिखला दूँगी, फिर आज तक वह चित्र उन्होंने मेरे पास क्यों नहीं भेजा ?

(चित्र हाथमें लिये हुए विरक्तिका प्रवेश)

विरक्ति—शिवभक्तिने कहा है कि यह चित्रपट निवृत्तिके हाथमें दे आओ । वह निवृत्ति कहाँ होगी ? (आगेकी ओर देखकर) क्यों, यही तो निवृत्ति है । जो यह—

समीरके सञ्चारसे तृणके भी चञ्चल हो उठनेपर दिशावकाशमें देखने लगती है, किसी व्यक्तिकी चिरकालतक प्रतीक्षा करते रहनेके कारण इसका मन रूक्ष हो उठा है ॥ १ ॥

जब तक यह चित्र इसके हाथमें पहुँचा दूँ । (आगे बढ़ती है)

निवृत्ति—(विरक्तिको देखकर) सखि, किधर चली हो ?

विरक्तिः—सखि, भगवत्या भवदन्तिकमनुप्रेषितास्मि।

(इति चित्रपटमर्पयति।)

निवृत्तिः—(चित्रपटं निर्वर्ण्य।) अहो प्रतिकृतेरभिरूपता।

एतद्वाङ्मनसातिवर्ति महितं रूपं बतेयत्तया
चित्तेनोल्लिखितं कथं विलिखितं हस्तेन वा तत्कथम्।
अथवा न चित्रकारनैपुणमेतत्।
अप्रज्ञेयमहाप्रभावमहसो भक्तेरियं प्रायशो
भक्तत्राणगरीयसी विरचना नूनं भवेन्मानसी॥ २॥

सखि विरक्ते, संप्रति किमाचारो जीवराज इति किमवगम्यते।

विरक्तिः—चित्तशर्मणा वयस्येन शृङ्गारवने माधवीमण्डपमधिवसति महाराज इति श्रुतम्।

निवृत्तिः—तर्ह्ययमेवावसरस्तदुपसरणाय। (इति निष्क्रान्ते।)

प्रवेशकः।

विरक्ति—सखि, भगवती शिवभक्तिने मुझे तुम्हारे ही पास भेजा है।

(चित्रपट अर्पित करती है)

निवृत्ति—(चित्रपटको देखकर) अहा, चित्र कितना भला बन सका है? वचन तथा मनसे परे वर्त्तमान यह रूप चित्तने इयत्ता स्थिर करनेके लिये बनाया है, हाथसे यह चित्र कैसे लिखा जा सकता है?

अथवा—यह चित्रकारकी चतुरता है,

प्रायः अनन्त माहात्म्य तथा तेजसे भरी शिवभक्तिकी ही यह भक्तत्राणमें गौरवशालिनी कोई मानसी रचना है॥ २॥

सखि विरक्ते, इन दिनों जीवराजका क्या समाचार है? क्या तुम कुछ जानती हो?

विरक्ति—अपने प्रियमित्र चित्तशर्माके साथ जीवराज शृङ्गारवनस्थित माधवीलतामण्डपमें हैं, ऐसा सुननेमें आया है।

निवृत्ति—अच्छा, तो यही अवसर है उनके पास जानेका। (दोनोंका प्रस्थान)

प्रवेशक समाप्त।

(ततः प्रविशति यथानिर्दिष्टः सचिन्तो राजा।)

राजा—सखे चित्तशर्मन्, अत्रभवत्या निवृत्त्या रहस्याबेदनात्प्रति-निकाममस्वस्थहृदयो भवामि।

तथाहि—

हृद्यं वस्तु न रोचते हृदयजस्तापो न विश्राम्यति
श्वासः प्लोषयतेऽधरं शिथिलयत्यङ्गानि चिन्ता मम।
मोहे मज्जति चेतनापि निमिषः कल्पादनल्पायते
कस्मै किं कथयेय हन्त तमिमं कालं क्षिपेयं कथम्॥ ३॥

चित्तशर्मा—वयस्य, किं केवलेन विषादेन। विधीयतां तदुचितो यत्नः।

राजा—तमेव खलु न प्रतिपद्ये।

चित्तशर्मा—वयस्य, सोऽपि हृदयंगम एवोपनमितो दैवेन।

राजा—कथय कथय।

(पूर्वनिर्दिष्ट रूपमें सचिन्त राजाका प्रवेश)

राजा—सखे चित्तशर्मा, आदरणीया निवृत्तिने जबसे रहस्य बताया है तबसे अत्यन्त अस्वस्थ-हृदय होता जा रहा हूँ।

जैसे कि—

भली वस्तु अच्छी नहीं लगती है, मानसिक सन्ताप नहीं मिटता है, गरम साँस अधरको शुष्क बनाती है और चिन्ताके कारण अङ्ग शिथिल हुए जाते हैं। बुद्धि अज्ञानमें डूबती चली जा रही है, एक क्षण कल्पके बराबर बीतता है, किससे क्या कहूँ, तथा यह दुःसमय कैसे बिताऊँ? ॥ ३॥

चित्तशर्मा—केवल विषाद व्यक्त करनेसे क्या हो सकता है? उसके लिये कुछ प्रयास कीजिये।

राजा—वही तो कुछ समझमें नहीं आ रहा है।

चित्तशर्मा—वयस्य, भाग्यने वह उपाय भी बड़ा ही सुन्दर उपस्थित किया है।

राजा—बताओ, बताओ।

चित्तशर्मा—

'वेदारण्यनिवासिनः कतिपये दृष्टा मया तापसाः
प्रागेकत्र शमादयः समुदितास्ते मामवोचन्निदम् ।
जीवस्यास्य विभोश्चिरादिह सुखे दुःखेऽनु भोक्ता भवा-
न्यस्य श्रेयसि कोऽपि कश्चिदिव किं ताटस्थ्यमालम्बते ॥ ४ ॥'

इति । तदनु भो महाभागाः, सांप्रतमस्माकमिह किं नाम सुखं हीयते ।

जीवः सुखात्मा विभुरेष राजा प्रधानभूतोऽहमसुष्य विष्वक् ।
भोगाः समग्रा विषयेषु मत्तस्तटस्थता का मम तत्सुखेषु ॥ ५ ॥

तथा हि ।

उद्यानोदरपद्मिनीपरिसरे पर्यन्तयन्त्रोच्चल-
च्चन्द्रोशीरसुगन्धिशीकरभरस्फायत्समीराङ्कुरे ।
पीतस्वादुरसायनादिसुहितैरस्माभिरस्तव्यथै-
र्नीयन्ते हि सुखकतानविसरा वासन्तिका वासराः ॥ ६ ॥

चित्तशर्मा—कुछ दिन पहले मैं एक जगह जुटे हुए वेदारण्यनिवासी शम-दम आदि तापसोंसे मिला था, उन लोगोंने मुझसे कहा था कि इस जीवराजके सुख तथा दुःखमें तुम सदा भोक्ता रहते आये हो, फिर क्या उसके कल्याणमें तटस्थ बन जाना तुम्हारे लिये ठीक है ॥ ४ ॥

इसपर मैंने निवेदन किया कि, "महानुभाव, इस समय हम लोगोंको कौन सा सुख नहीं है ?"

यह जीव सुखस्वरूप है, राजा है, मैं उसका प्रधान मन्त्री तथा सर्वगामी हूँ, विषयोंके सारे भोग मेरे माध्यमसे होते हैं, मैंने उस जीवराजके किस सुखमें तटस्थता दिखलाई है ? ॥ ५ ॥

उद्यानके मध्यभागमें पद्मिनीसे परिपूर्ण सरोवरके तटपर समीपमें स्थापित जलयन्त्रद्वारा प्रेरित तथा कर्पूर तथा खसकी सुगन्धसे भरी जलकी बूँदोंसे शीतल वायुके बीच हम लोग स्वादिष्ट रसायनोंके सेवनसे तृप्त होकर, समस्त क्लेशको भूलकर, सुखैकतानावस्थामें वसन्तके दिवस व्यतीत करते हैं ॥ ६ ॥

इत्थं कदा कुत्र किं नाम सुखं नानुभूयत इति मयाभिहिते, हन्त कारणस्वभावकृत एष ते ऽयामोहः। यदेवं ब्रवीषि। शृणु तावत्।

देहो भूतसमष्टिरत्र तपनाधिक्ये जलं क्षीयते
तर्षो नाम स एव तस्य समता तृप्तिः पुनर्वारिणा।
एकस्योपचये भवत्यपचयोऽन्यस्य स्वभावस्त्वयं
भूतानां समता पुनश्च किमिह प्रत्येषि तत्त्वं सुखम्॥ ७॥

अद्वैतं यदनादिमध्यनिधनं सत्यैकरूपं सुखं
तत्र त्वामुषितं मृषायितमिवाविद्याविलासैर्निजैः।
विश्वं दर्शयते यथार्थवदिदं स्वप्नेन्द्रजालोपमं
धीरः कः पुनरादियेत तदिहासत्ये प्रपञ्चे सुखम्॥ ८॥

किं च।

रूपं नाम विशिष्टवस्त्विति पृथग्यत्तत्समालक्ष्यते
सर्वं चास्थिरमव्यवस्थितमनिर्वाच्यं च संमर्शने।

इस प्रकार कब कौनसा सुख हमलोगोंको नहीं मिलता है?" इसपर उन लोगोंने कहा कि तुम्हारा यह कारण स्वभावकृत मोह है कि तुम ऐसा कह रहे हो। सुनो—

यह देह भूतोंका—पृथिव्यादि पञ्चतत्त्वोंका—समुदायस्वरूप है, इसमें तेजकी अधिकता होते ही जलका ह्रास हो जाता है, यही प्यास है, फिर पानी पी लेनेसे उसमें समता आ जाती है, एक तत्त्वकी अधिकता होनेपर दूसरे तत्त्वकी न्यूनता हो जाती है, स्वाभाविकता यही है कि सभी भूतोंमें समता रहे, तुम किस तत्त्वको सुख मानते हो?॥ ७॥

अनादि अमध्य तथा अविनाशी सदा सत्य एक रूपसे रहनेवाला अद्वैत ही सुख है, तुम वहीं रहते हो, परन्तु तुम्हारी अविद्याके विलासोंने उस सुखको मिथ्या-सा प्रतीत करा दिया है। वह अविद्या इस ऐन्द्रजालिक जगत्को ही यथार्थकी तरह दिखलाती है, फिर कौन धीर जन इस असत्य प्रपञ्चमें किसी सुखका सद्भाव स्वीकार करे॥ ८॥

नाम तथा रूपमें व्याकृत अलग-अलग जितनी सारी वस्तुएँ देखनेको मिलती हैं, विचार करनेपर वे सभी अनित्य तथा अनिर्वचनीय हैं। तुम कितने

मन्त्री त्वं कियतश्चिरस्य वपुषि व्यस्ते तदास्ते क्व ते
शत्रुं कश्चिदवैति मित्रमपरः पुत्रं कुतस्त्वां परः ॥ ९ ॥
तदेवमसारभूते जगति सारभूतं सुखं किं नाम ।
पिष्टरसामृतसदृशं वैषयिकं तत्सुखं सुखं नैव ।
आधिव्याधिजराभिर्दुर्लभमेतच्च काकमांसमिव ॥ १० ॥
अतः 'सुखमस्माभिरनुभूयते' इति तव भ्रम एव । भूयोऽपि निदर्शयामः केषु भावेषु कथा वृत्त्या किं नाम भवता सुखमन्वभूयत ।
याच्ञादैन्यकदर्थिता द्विजनुषां शोच्यैव वृत्तिस्त्वसा-
वस्वायत्तविधेयगौरवसुखा सेवा हि दुर्जीविका ।
शैलारण्यसमुद्रयानवहनक्लेशादि वा वर्ततां
क्षुद्रं यल्लुरजीवनं शिव शिव स्मर्येत तत्किं जनैः ॥ ११ ॥
तदेवमतिजुगुप्सितोऽयमविद्याविलासः । श्रूयतामस्य जगतस्तत्त्वम् ।

समयके लिये मन्त्री हो ? शरीरके बिखर जानेपर तुम्हारा मन्त्रित्व कहाँ चला जायगा ? (इसी अस्थिर अवस्थामें) कोई किसीको शत्रु मानता है, किसीको मित्र मानता है, कोई पुत्र मानता है, कोई और कुछ ॥ ९ ॥

इस प्रकारसे इस असार संसारमें सारभूत सुख क्या है ?

आटेको पानीमें घोलकर बनाये गये अमृतके सदृश दीखनेवाला यह वैषयिक सुख तो सुख नहीं ही है, यह सुख भी काकमांसकी तरह आधि-व्याधि तथा जराके कारण दुर्लभ ही है ॥ १० ॥

अतः 'हम सुख भोगते हैं' ऐसा समझना तुम्हारा भ्रम है । मैं फिर दृष्टान्त देकर बताता हूँ—किस भावमें किस वृत्तिसे कौन-सा सुख तुमने अनुभव किया है ?

ब्राह्मणोंकी जीविका याचना दैन्यसे दूषित होनेके कारण शोचनीय है, पराधीन सुखवाली सेवा तो निन्दित जीविका ही है, पर्वतों-जङ्गलों या समुद्रमें जानेका क्लेश तो छुरधाराजीवन ही है, क्या मनुष्य उसे याद भी करनेका साहस कर सकता है ? ॥ ११ ॥

इस प्रकार यह अविद्याका विलास अति निन्दनीय है । इस जगत्का तत्त्व सुना लो—

ब्राह्मं तत्पदमर्चिरादिभिरितो धन्यस्तु नावर्तते
यो धूमादिपथं स्वरेति सकृद्यथायातं परावर्तते ।
आवृत्तः स तु लिङ्गदेहघटितो बोधादिशून्यश्चिरं
तिष्ठेद्व्रीहियवास्तिलाइति जनिप्रारम्भकाभावतः ॥ १२ ॥

तदनु

काले कापि कुहापि कोऽपि यदि तानश्नाति तद्रेतसा
ब्रह्मक्षत्त्रपुरोगमेषु भजते पुण्यानुरूपं जनुः ।
व्यावृत्ताः पितृलोकतोऽनधिगतस्वर्गास्तु ये पापिनः
श्वानः सूकरपुल्कसा इति जनुः कालेन गच्छन्ति ते ॥ १३ ॥

पुण्यप्रभावादूर्ध्वलोकगामिनां जीवानामियं स्थितिः ।

ये देवयानपितृयानपथानभिज्ञा
जीयास्तु ते जनिमृतीः क्रिमिकीटरूपाः ।
व्यावर्तयन्ति सुचिरादिह कल्पकोटी-
र्नोर्ध्वं व्रजन्ति गहनैवमसाविद्या ॥ १४ ॥

अतो जीवराजस्य तदेतन्महासंकटविमोचनाय भवतैव प्रयतितव्यम् ,

अर्चिः आदि मार्गसे जो ब्रह्मपदको प्राप्त होता है वह धन्य है, उसे नहीं लौटना पड़ता है । जो धूमादि मार्गसे स्वर्ग जाते हैं वह उसी मार्गसे लौटते हैं, उन्हें लौटनेपर लिङ्गशरीर प्राप्त होता है जो ज्ञानशून्य होता है, उन्हें चिरकाल व्रीहि, यव या तिलके रूपमें रहना पड़ता है क्योंकि जन्म देनेवाले अदृष्टका अभाव रहता है ॥ १२ ॥

कभी कोई कहीं यदि उन व्रीहि यव या तिलमेंसे किसीको खाता है तब उसके वीर्यसे अपने पुण्यके अनुरूप ब्राह्मण-क्षत्रिय आदि योनिमें जन्मग्रहण करते हैं, और जो स्वर्ग नहीं प्राप्त करके पितृलोकसे लौटते हैं वे पापी कुत्ते, सूअर, आदि योनियोंमें जन्म लेते हैं ॥ १३ ॥

जो देवयान तथा पितृयाण मार्गसे अपरिचित जीव हैं वे कृमि-कीटके रूपमें जन्म-मृत्यु ग्रहण करते तथा चिरकालतक करोड़ों जन्मकी आवृत्तियाँ किया करते हैं, कभी ऊपर नहीं उठ पाते हैं, ऐसी कठिन है यह अविद्या ॥ १४ ॥

अतः जीवराजको इस महासंकटसे बचानेका उपाय तुमको ही करना

चिरादभेदेनोपलाल्यमानादमात्याद्ऋते किमायत्तानि राजसौभाग्यानि । तदिह कुतो विचक्षणोऽपि भवानात्मनोऽधिकारं न प्रतिपद्यते । अपि च प्रयत्न एव तत्प्रतीपबलवत्तरवरवर्णिनीपरिणयनरूपतया तव सुकर एव । कथमिदमनावेद्यैव राज्ञे करणीयमिति न शङ्कनीयम् ।

विस्रम्भप्रणयोचिताः सुचरिता धर्मार्थविज्ञानिनो
ये तावत्किल मन्त्रिणः क्षितिभुजामेते किमर्थान्तरम् ।
अन्यद्धर्मचरं शरीरमपरं सालोचनं लोचनं
राज्ञः किं बहुनाभितो विजयिनः प्राणा भवन्त्यान्तराः ॥ १५ ॥

न तावदमात्यमात्रं भवान् । अपि तु नर्मसचिवश्च । तदपूर्वरमणीसंघटनमिदमवश्यकरणीयमनुरूपं चेति । तदनु तानहमप्राक्षम्—

'क त्या किंप्रभवा किमाकृतिगुणा किंनामधेया च सा
श्रेयस्तद्घटने किमस्त्यघटने किं नाम तद्धीयते ।

चाहिये, क्योंकि चिरकालतक अभेदभावसे लालित अमात्यके सिवा कौन दूसरा राजाके सुखका उपाय कर सकता है । आप विद्वान् हैं, आप अपने अधिकारका ख्याल क्यों नहीं करते हैं ? और अविद्याविरोधिनी विद्या नामकी रमणीके साथ परिणयरूप यह प्रयत्न अत्यन्त सुकर भी है । राजाको विना सूचित किये हुए यह कार्य कैसे करूँ ? यह शङ्का मत कीजिये ।

विस्रब्ध प्रणय करनेके अभ्यासी, सच्चरित, धर्म-अर्थके ज्ञाता मन्त्री क्या राजाके लिये उनसे भिन्न हुआ करते हैं ? ये मन्त्री तो राजाके धर्मपरायण दूसरा शरीर तथा सर्वदर्शी नयन हुआ करते हैं, और क्या, विजयी राजाके लिये तो ये मन्त्री अन्तःप्राण होते हैं ॥ १५ ॥

आप केवल मन्त्री ही नहीं, आप तो नर्मसचिव भी हैं । अतः अपूर्व सुन्दरी स्त्रीसे युक्त करना आपका अवश्यकर्त्तव्य ही नहीं, अनुरूप कार्य भी है" ।

इसके बाद मैंने उन लोगोंसे पूछा—"यह सुन्दरी कहाँकी है, किसकी कन्या है ? उसकी आकृति कैसी है ? उसमें क्या गुण हैं ? उसका नाम क्या है ? जीवराजको उससे मिलानेमें क्या लाभ तथा नहीं मिलानेमें क्या हानि है ?

तत्प्राप्तौ परिपन्थिनः क इह नस्तैरन्तरायाः कथं
तेषामप्यपनोदनेऽथ घटने कश्चाभ्युपायो भवेत् ॥ १६ ॥'

इति । तदनु ते मामवोचन्—

'वेदारण्यावसथसुहिता स्वामिनी मादृशाना-
माविर्भूता मननजनिदिध्यासनात्पुण्यभूम्ना ।
विद्युल्लेखाचिरतरसमुद्द्योतिनीवाद्भुतश्री-
रेषा योषामणिरुपनिषद्वंशभूषा विभाति ॥ १७ ॥
विद्याख्या हृदयंगमाकृतिरसावस्याः समासादने
न व्याधिर्न जरा न मृत्युरशनाया सा पिपासापि न ।
न क्लेशो न भयं च किं तु परमानन्दातिसान्द्रीकृता
दुःखासंकलिता च काचन दशा सत्या समुन्मीलति ॥ १८ ॥
सत्यानन्दमपारमक्षयमिदं विद्याधनं पङ्कृतः
कृत्वा गाढनिगूहितं व्यथयते लोकानविद्या चिरम् ।
तिष्ठन्नेव निधौ यथानिधिमविज्ञायैव कार्पण्यतो
विध्वग्धावति तद्वदेतदविदद्जीवः परं खिद्यते ॥ १९ ॥

उसके मिलनमें बाधक कौनसे हैं ? उनके द्वारा कौन-कौनसे विघ्न संभव हैं ? उन विघ्नोंको दूर करके उससे मिलन करानेके क्या उपाय हैं' ? ॥ १६ ॥

इस पर उन लोगोंने मुझसे कहा—

वेदारण्य नामक गाँवकी रहनेवाली, हमारे ऐसे जनोंकी स्वामिनी, पुण्य के प्रकर्षवश मननज, निदिध्यासनसे उत्पन्न, चिरस्थायिनी विद्युल्लेखाकी तरह अधिक द्युतिशालिनी, यह रमणी उपनिषद्वंशकी अलङ्कार है ॥ १७ ॥

इसका नाम विद्या है, यह बड़ी सुन्दरी है, इसके मिल जानेपर व्याधि, जरा, मृत्यु, भूख और प्याससे छुटकारा मिल जाता है; क्लेश, भय, कुछ नहीं रह जाता, परमानन्द सान्द्र दुःखासंपृक्त एकमात्र सुखमात्रकी सदा स्थायिनी दशा रह जाती है ॥ १८ ॥

सत्य, आनन्द, अपार और अविनाशी इस विद्याधनको पङ्कमें गाड़कर अविद्या लोगोंको व्यथित किया करती है, निधिपर बैठा हुआ व्यक्ति भी जैसे

यस्यां मुह्यति निद्रया निशि जगत्स्वप्नेन्द्रजालाकुलं
तस्यां जाग्रति योगिनस्तदनया सत्यार्थसंदर्शिनः।
दिव्या दृष्टिरियं निमेषरहिता हन्तानया पश्यतां
छिद्यन्तेऽखिलसंशयभ्रमविपर्यासाश्च कर्माणि च ॥ २० ॥
अस्या वैभवतोऽपि नक्तमहरेवास्याभिनिष्पद्यते
तच्चाहर्न कदापि याति सकृदेवास्य प्रभातोदयः।
आत्मानन्दसुधासमुद्रलहरी सा चेदनासादिता
मध्याह्नोऽपि निरन्तरेण तमसा घोरो निशीथो भवेत् ॥ २१ ॥'

इति। तदेवंविधदिव्यमङ्गलगुणग्रामा विद्येयम्।

राजा—(सपरितोषम्।) ततस्ततः।

चित्तशर्मा—

कामक्रोधमुखाः प्रतीतविभवा जीवस्य षड्वैरिण-
स्ते ह्यस्माकमसंनिधौ विदधते निःशङ्कमोजायितुम्।

निधिको नहीं जानकर दरिद्रभावसे इधर-उधर दौड़ता फिरता है उसी तरह इस बातको नहीं जानकर जीव खिन्न होता रहता है ॥ १९ ॥

जब आविद्यक इन्द्रजालमें पड़ा यह जगत् स्वप्नमें मोहित रहता है उस समय भी योगी जागते रहते हैं, वह इसी विद्याके द्वारा सत्य अर्थका दर्शन करते रहते हैं। यह विद्या दिव्यदृष्टि होती है, इस दृष्टिमें कभी निमेषपात नहीं होता है, इस दृष्टिसे समस्त वस्तुको देखनेवालोंके लिये सभी प्रकारके संशय, भ्रम, विपरीतज्ञान तथा कर्मका उच्छेद हो जाता है ॥ २० ॥

इस विद्याके प्रतापसे रात भी दिन बन जाता है और वह दिन एक ही बार आता है, इसमें पुनः पुनः प्रभात नहीं होता है। यदि आनन्दसुधा-समुद्र-लहरीके सदृश इस विद्याकी प्राप्ति नहीं हुई तो मध्याह्न भी भयङ्कर अन्धकारसे घिरा निशीथ ही बना रहता है ॥ २१ ॥

इस तरहके कल्याणमय गुणग्रामसे युक्त है यह विद्या"।

राजा—(सन्तोषके साथ) तब क्या हुआ?

चित्तशर्मा—"काम-क्रोध आदि प्रसिद्ध पराक्रमशाली छः जीवके शत्रु हैं, वे हम लोगों (शम-दम आदि) की अनुपस्थितिमें निर्भय भावसे अपना

यत्रामी वयमास्महे समुदिताः साकं विवेकादिभि-
स्तत्रैते न समुन्मिषन्ति पुरतो भानोरिवान्धं तमः ॥ २२ ॥
जीवस्याप्यभितोऽपघातिन इमे विघ्नास्तु तत्संभवाः
कर्षन्तो विषयेषु तं विघटयन्त्यस्मासु यत्संगतम् ।
एतेषामपनोदनेऽभिलषिते चार्थेऽभ्युपायस्त्वयं
गूढं गाढनिरूढमत्रभवतः सौहार्दमस्मासु यत् ॥ २३ ॥

त्वयि तु विधेये संपन्नकल्पो वेदारण्यप्रवेशः स एव परमोपाय इति । तदनु 'किमेतादृशि मत्स्वामिनः श्रेयसि मत्सकाशादनन्तरं पतिष्यति । सर्वथाहमत्र विषये युष्मदायत्तः' इति सशपथमभिहितवानस्मि ।

राजा—वयस्य, प्रणयविस्रम्भौ नाम तदुभावेव यदेवमसंनिधानेऽपि मदनवगतमेव मदीयश्रेयसि बहुधा व्यापृतमिति । (परितोषमभिनीय ।) सखे चित्तशर्मन्,

एते मच्छ्रवसी तदद्भुतगुणस्तोमामृतासङ्गना-
दत्यन्तं सुहिते तदत्र विषये बद्धाभ्यसूये इव ।

पराक्रम दिखलाने लगते हैं, और जहाँ विवेकादिके साथ हम लोग मिलित रूपमें इकट्ठे रहते हैं वहां वे उसी तरह नहीं प्रकट होते हैं जैसे सूर्यके सामने अन्धकार ॥ २२ ॥

अपकारी यह काम-क्रोध आदि विघ्न बनकर जीवको भी विषयमें आकृष्ट करते तथा हमारे साथ होनेवाली सङ्गतिको विघटित किया करते हैं। इनको दूर करनेमें—यही एकमात्र उपाय है कि तुम्हारा हम लोगोंके प्रति गाढ सौहार्द हो ॥ २३ ॥

तुम अगर वशमें रहो तो वेदारण्यमें प्रवेश सम्पन्नतुल्य है। वही परम उपाय है।" इस पर हमने शपथपूर्वक उनसे कहा कि "मेरे स्वामीके कल्याण साधनमें मुझसे क्यों बाधा पड़ेगी ? हम सब तरहसे आपके अधीन हैं" ॥

राजा—वयस्य, तुममें स्नेह तथा विश्वास दोनों हैं, जिससे तुमने मेरी अनुपस्थितिमें ही बिना मेरी जानकारीके मेरी भलाईके लिये इतना बड़ा परिश्रम किया है। (सन्तोष व्यक्त करके) सखे चित्तशर्मन्,।

मेरे ये कान उसके गुण रूप अमृतका सम्पर्क प्राप्त कर इतने प्रमुदित हो

एते तन्मुखचन्द्रमःस्मितसुधातर्षाकुले ताम्यतो
मद्दृष्टी तदिमे कया नु विधया संप्रीणयिष्याम्यहम् ॥ २४ ॥
तामालिख्य विनोदयेय नयने दृष्ट्वा यदि स्यान्मनाक्-
स्वप्ने तामवलोकयेयमिति चेत्स्वापो दुरापो मम।
अध्यक्षीकरणप्रसक्तिरपि मे तस्यास्तु दूरे गिरा-
मायासोत्तरमाः कथं नु विषयैरात्मानमाश्वासये ॥ २५ ॥

(स्मरणमभिनीय।) तत्रभवत्या प्रतिश्रुतं प्रतिकृतिदर्शनं तु संभाव्येतापि।

(ततः प्रविशति विरक्त्या सह निवृत्तिः।)

निवृत्तिः—(पुरतो विलोक्य।) अयमितश्चित्तशर्मणा नर्मसचिवेन सह विविक्तमध्यास्ते देवः। तदेनमुपसर्पामि। (उपसृत्य।) विजयतां देवः। (इति राज्ञो हस्ते चित्रपटमर्पयति।)

राजा—चित्रपटं निर्वर्ण्य। साश्चर्यम्।) अहो प्रतिकृतेरभिरूपता।

उठे हैं कि उन्हें इन वैषयिक सुखोंमें असूया ही होने लगी है। मेरी यह आँखें उसके चन्द्रमारूप मुखकी स्मितरूप सुधाकी प्यासी हो रही हैं, मैं इन्हें किस प्रकार तृप्त करूँगा? ॥ २४ ॥

यदि मैं उसे कभी पहले देख सका होता तो उसका चित्र बनाकर अपने नयनोंको विनोदित करता। स्वप्नमें उसे देख सकूंगा यह भी संभव नहीं है, क्योंकि मुझे नींद आती ही नहीं है। प्रयाससे मैं उसे प्रत्यक्ष देख लूंगा यह तो मेरे लिये वचनसे भी परे की बात है, हाय, मैं इस विषयजालसे अपनेको कैसे आश्वासित करूँ? ॥ २५ ॥

(स्मरण का अभिनय करके) पूज्य शिवभक्ति द्वारा प्रतिज्ञात चित्रदर्शन की तो संभावना है।

(विरक्तिके साथ निवृत्तिका प्रवेश)

निवृत्ति—(आगेकी ओर देखकर) यहीं राजा चित्तशर्मा नामक अपने नर्मसचिवके साथ एकान्त-सेवन कर रहे हैं। तब तक इनके पास चलूं। (समीप जाकर) जय हो महाराजकी। (राजाके हाथमें चित्रपट देती है)

राजा—(चित्रपट देखकर) अहा, कितना सुन्दर चित्र है?

शुद्धामृतधाममुखी श्रुत्यन्तविसारिदृष्टितोल्लसिता।
विश्वातिशायिवृत्तिर्विषयेषु कुहापि नेदृशी दृष्टा ॥ २६ ॥
पद्मोल्लासतरङ्गितं पदयुगं जङ्घे सुवृत्तोज्ज्वले
रम्भाडिम्भविडम्बिनौ च तदिमावूरू मनोहारिणौ।
मध्यं व्योमसखं मुखं विधुरखण्डाकारवृत्त्युज्ज्वलः
कल्याणी बत सेयमद्भुतगुणा कल्याणकान्ताकृतिः ॥ २७ ॥
(साशङ्कं पार्श्वतो विलोक्य।) दिष्ट्यात्र न संनिहिता देवी।

(ततः प्रविशति विषयवासनया प्रवृत्त्या च सहाविद्या।)

अविद्या—सखि विषयवासने, कृतघ्नोऽपि देवस्त्वद्वचनगौरवेण ममानुसरणीयः संवृत्तः।

विषयवासना—प्रियसखि, कीदृशमपि दयितमनुसरणेन हृदयरक्षनेन च विधेयीकुर्वन्ति खलु युवतयः।

अविद्या—सखि प्रवृत्ते, देवः कतमं देशमधिवसतीति जानीहि।

निष्कलङ्क चन्द्रमाके सदृश मुखवाली, कानों तक फैले हुए नयनोंसे शोभिता, विधाधिकसुन्दरी इस सुन्दरीकी तरह रमणी संसारमें तो नहीं देखी गई है ॥ २६ ॥

कमलके सौन्दर्यसे युक्त चरणयुगल, गोल चमकदार कदलीस्तम्भके समान रम्य दोनों जांघें, नितान्त कृश होनेके कारण शून्यसम कमर, और अखण्ड चन्द्रतुल्य मुख, इन सारे सुन्दर अवयवोंके कारण अद्भुतगुणा यह रमणी वास्तवमें कल्याणी है ॥ २७ ॥

(सभय, पार्श्वकी ओर देखकर) भाग्यवश यहाँ देवी नहीं हैं।

(विषयवासना तथा प्रवृत्तिके साथ देवीका प्रवेश)

अविद्या—सखि विषयवासने, यद्यपि हमारे राजा बड़े कृतघ्न हैं फिर भी तुम्हारी बात रखनेके लिये मैं उनका अनुसरण करती हूँ।

विषयवासना—प्रियसखि, स्वामी चाहे जैसा भी हो, युवतियाँ अनुसरण तथा हृदयानुरञ्जनसे उसे वशमें कर लेती हैं।

अविद्या—सखि प्रवृत्ते, महाराज कहाँ हैं? इसकी जानकारी प्राप्त करो।

प्रवृत्तिः—(पुरतो विलोक्य ।) नन्वयमित एव चित्तशर्मणा तापसीभ्यां सह शृङ्गारवने मालतीमण्डपमध्यास्ते देवः ।

अविद्या—तर्हि विटपान्तरिता एव शृणुमस्तावदेतेषामन्योन्यविस्रम्भजल्पितानि ।

(इति सर्वास्तथा कुर्वन्ति ।)

चित्तशर्मा—अपि नाम सुखायते दृशोरियं चित्रगता प्रियतमा ।

राजा—किमुच्यते सुखायत इति ।

आप्लाव्य ज्वलदङ्गमङ्गमभितः संसृप्य नाडीष्वपि
प्लोषावेगकदर्थितासुकरणान्युज्जीवयन्ती पुनः ।
अस्या निस्तुलतत्तदङ्गसुषमाकल्लोलिता काप्यसा-
वानन्दामृतदिव्यसिन्धुलहरी विश्वं किलापप्लुते ॥ २८ ॥

संप्रति हि

आलिप्ये नु तुषारलोलनललत्कर्पूरगन्धद्रवै-
रासिच्ये नु घनीकृतैरुत सुधाधाम्नो मयूखोत्करैः ।

प्रवृत्ति—(आगेकी ओर देखकर) यही तो यह चित्तशर्मा तथा दो तापसियोंके साथ शृङ्गारवनमें लतामण्डपमें विद्यमान हैं ।

अविद्या—तो तब तक हम लोग वृक्षकी ओटमें छिपकर इनका विस्रम्भ कथोपकथन सुने ।

(सभी वैसा ही करती हैं)

चित्तशर्मा—क्या यह चित्रलिखित सुन्दरी आंखोंको सुख देती है ?

राजा—सुख देती है इसमें क्या पूछना है ?

जलते हुए अङ्ग-प्रत्यङ्गको शीतलता प्रदान कर, नाडियोंमें पैठकर, सन्ताप-कदर्थित प्राणों तथा इन्द्रियोंको प्रत्युज्जीवित सा करती हुई इस सुन्दरीकी अद्वितीय सुन्दरताशाली अङ्गोंकी यह परमशोभास्वरूप आनन्दामृतलहरी संसारको भुलाये दे रही है ॥ २८ ॥

ऐसा लग रहा है जैसे मैं पालेमें घुमाये गये कर्पूरसुगन्धितचन्दनरससे तर किया जा रहा हूँ अथवा घनरूपमें परिणमित चन्द्रमाकी किरणोंसे लिप्त

एतद्दर्शनसंभूतेन परमानन्देन दावानल-
प्लुष्टो भूमिधरः सुधारसक्षरेणेवाङ्गमाप्यायते ॥ २९ ॥

निवृत्तिः—(अपवार्य।) सखि विरक्ते, दिष्ट्या फलितमिव नः प्रयत्नेन।

विरक्तिः—कथं न फलिष्यति भगवत्या नीतिवैदग्धी।

राजा—(चिरं निर्वर्ण्य सोन्मादं चित्रं प्रति।)

मृद्नामि किं नु मृदुलं पदपल्लवं ते
किं ते लिखामि कुचयोरुत पत्रवल्लीम्।
एह्येहि मे विदधती सकृदङ्कपाली-
मन्तर्गतं निरवशेषय तापमेनम् ॥ ३० ॥

चित्तशर्मा—(सोपहासम्।) वयस्य, प्रतिकृतिरियं खलु तस्याः।

अविद्या—सखि, श्रुतं ननु श्रोतव्यम्। तदेवमेतैरितरनायिकासंघटनकुहनाभिरति संधीयामहे।

विषयवासना—सखि, भूयोऽपि शृणुमस्तावत्।

हो रहा हूँ। इसके दर्शनसे उत्पन्न आनन्दसे मैं उसी तरह आप्यायित हो रहा हूँ जैसे दावानलसे झुलसा हुआ पर्वत सुधारससे आप्यायित हो रहा हो ॥२९॥

निवृत्ति—(छिपाकर) सखि विरक्ते, मालूम पड़ता है—हमारे प्रयत्न सफल हुए।

विरक्ति—आपकी नीतिनिपुणता कैसे नहीं सफल होगी?

राजा—(चिरकाल तक देखकर, उन्मादके साथ, चित्रसे—)

क्या तुम्हारे कोमल चरणोंको दबा दूँ? या तुम्हारे स्तनों पर पत्रवल्ली लिखूँ। आओ, एक बार मुझसे लिपटती हुई चली आओ और मेरे अन्तर्गत तापको समाप्त करो ॥ ३० ॥

चित्तशर्मा—(हँसता हुआ) वयस्य, यह तो उसका चित्र है।

अविद्या—सखि, सुननेकी बात सुन ली न? इसी तरह हमको—इनको दूसरी नायिकासे संघटन कराकर—धोखा दिया जाता है।

विषयवासना—सखि, थोड़ा और तो सुनें।

निवृत्तिः—देव, सत्वरमनया सुदृशा सह भवन्तं योजयिष्यामि। न पुनरिह विषये भवता विषादो विधेयः।

राजा—परमकारुणिकीभ्यामप्रमेयमहिमातिशयाभ्यां भवतीभ्यामनुगृहीतस्य मम को नाम विषादः।

अविद्या—सखि, श्रुतानि खलु भूयः श्रवणामृतानि।

विषयवासना—प्रियसखि, भवत्संनिधाने सर्वमिदं विघटितमेव भवेत्। (इत्युद्गतमुपसर्पति।)

राजा—(दृष्ट्वा। सभयम्।) वयस्य, का प्रतिपत्तिः।

चित्तशर्मा—वयस्य, भवता कथमपि समाधीयते सा। मम तु का गतिः। (विचिन्त्य।) भवतु। तामेवानुसरेयम्। इमे च तपस्विन्यौ तिरस्करिणीविद्यया चित्रफलकेन सह तिरोहिते भविष्यतः।

राजा—तथा। (इति धैर्यमवलम्ब्य तिष्ठति।)

चित्तशर्मा—(उपसृत्य।) स्वस्ति भवत्यै।

निवृत्ति—देव, शीघ्र ही आपको इस सुन्दरीसे मिलन करा देंगे, आप इस विषयमें विषाद न करें।

राजा—आप दोनों ही बड़ी दयालु एवं अपरिमित माहात्म्यवाली हैं, जब आप मुझपर अनुग्रह रखती हैं तब मुझे विषाद कैसा?

अविद्या—सखि, और श्रवणामृत वचन सुनलिये तुमने।

विषयवासना—प्रियसखि, तुम्हारे सामने यह सारी योजना विघटित हो जायेगी। (वेगसे समीप जाती है.)

राजा—(देखकर, सभय) वयस्य, क्या उपाय होगा?

चित्तशर्मा—वयस्य, आपतो किसी तरह उन्हें मना लेंगे, मेरी क्या दशा होगी? (सोचकर) अस्तु, उसीका अनुसरण करूँ। यह दोनों तपस्विनियाँ तो तिरस्करिणी विद्याके बलपर चित्रपटके साथ अन्तर्हित हो जायेंगी।

राजा—वैसा ही हो। (धैर्य धारण करके बैठा रहता है)

चित्तशर्मा—(समीप जाकर) आप दोनोंका मङ्गल हो।

अविद्या—(चित्तशर्माणं निर्भर्त्स्य राजानमुपसृत्य ।) अपि सुखायते चित्रगता प्रियतमा । अपि संघटयिष्यतस्तापस्यौ ।

राजा—(सभयगद्गदम् ।) देवि, तवासांनिध्याच्चित्तशर्मणा कालविनोदनाय विरचितमिन्द्रजालम् । इदं परमार्थतया न गृह्णातु भवती ।

अविद्या—हन्त प्रत्यक्षसिद्धापलपनसाहसमेतस्य ।

राजा—अतथाभूतमपि वस्तु तथाभूतमिव प्रत्यक्षमुपदर्शयेयुर्न किमैन्द्रजालिकाः । तदपि यदि सत्यमेवावगच्छसि । तत्र कः परिहारः ।

अविद्या—न तावदिदमिन्द्रजालं चित्तशर्मणः । अपि तु तवैव साहसमेतत् । क्व ते तापस्यौ । क्व च सा प्रतिकृतिः ।

राजा—ननु कथितमेव सकलमिन्द्रजालमिति । त्वं तु परमार्थतयैव प्रतिपद्यसे ।

अविद्या—कृतं कृतमकृतज्ञेनानेन शठेन ।

(इति साटोपं परावर्तते ।)

अविद्या—(चित्तशर्माको डांटकर, राजाके पास जाकर) चित्रगता सुन्दरी सुख देती है न ? तपस्विनियाँ उस सुन्दरीसे मिलन करा देंगी न ?

राजा—(भयगद्गद होकर) तुम्हारी अनुपस्थितिमें चित्तशर्माने हमारे मनोविनोदनार्थ इन्द्रजाल रचा था, तुम इसको वास्तविक मत मानो ।

अविद्या—हाय, प्रत्यक्षसिद्ध वस्तुका अपलाप करनेके लिये इसका साहस तो देखो ।

राजा—क्या ऐन्द्रजालिक लोग असत्यवस्तुको भी सत्यकी तरह नहीं दिखलाते हैं, तुम यदि उसको भी सत्य ही मान लो तो क्या उपाय है ?

अविद्या—यह चित्तशर्माका इन्द्रजाल नहीं है, यह सब आपका साहस है । कहाँ गईं वे तपस्विनियाँ ? कहाँ है वह चित्रपट ?

राजा—कह तो दिया कि सब इन्द्रजाल है, तुम तो सत्य ही मान बैठती हो ।

अविद्या—यह शठ बड़ा अकृतज्ञ है, इससे क्या मतलब ?

(वेगसे लौटती है)

चित्तशर्मा—वयस्य, पादप्रणामादिभिरुपचारैर्यथोचितं प्रसाद्यतां कुपिता देवी।

राजा—(कतिचित्पदानि गत्वा प्रणम्य।)प्रसीद प्रसीद।

(अविद्या साटोपमवधूय गच्छति।)

राजा—

न ब्रूषे न विलोकसे न च वचस्तथ्यं शृणोषि प्रिये
किं न्वेतन्मयि तादृशं तव मनः कस्मादभूदीदृशम्।
दम्पत्योस्तु न जायते किममतं जातं किं मृष्यते
किं वा जातमिहाधुना विधिरहो तिक्तां विधत्ते सुधाम्॥ ३१॥

प्रवृत्तिः—(अपवार्य।)भवत्वयं यादृशस्तादृशो वा। त्वया पुनरपाङ्क्त्यमेवावलम्ब्यताम्।

विषयवासना—युक्तमाह प्रवृत्तिः।

अविद्या—हन्त, भवतीभ्यामपीदं रोचते। का गतिः। (इति तिष्ठति।)

चित्तशर्मा—वयस्य, आप पादपतनप्रभृति उपायोंसे कुपिता देवीको अनुनीत कीजिये।

राजा—(थोड़ा चलकर, चरणों में गिरकर) प्रसन्न हों, प्रसन्न हों।

(अविद्या वेगसे तिरस्कृत कर जाती है)

राजा—न बोलती हो, न देखती हो, न सच बात सुनती हो, हे प्रिये, तुम्हारा मन मेरे विषयमें ऐसा क्यों हो रहा है? क्या स्त्री-पुरुषमें मतभेद नहीं होता है? मतभेद होनेपर क्या उसे क्षमा नहीं किया जाता है? इसमें हुआ क्या है? हाय, भाग्य अमृतको तिक्त बनाये दे रहा है॥ ३१॥

प्रवृत्ति—(छिपाकर) यह चाहे जैसा हो, तुमको तो कोमलभाव ही धारण करना चाहिये।

विषयवासना—प्रवृत्ति ठीक कह रही है।

अविद्या—हाय, तुम दोनोंको भी यही ठीक लगता है? फिर क्या उपाय है?

(रुक जाती है)

राजा—

मां कल्याणि पुरा तवोपयमनाद्ये केऽपि किं जानते
त्वामासाद्य मया प्रिये नवनवं किं नानुभूतं सुखम् ।
तत्तादृङ्महनीयवैभववती सौभाग्यसीमायिता
मां मत्वा कृतविप्रियं बत कथं व्याधुन्वती धावसि ॥ ३२ ॥
त्वं वित्तादपि गात्रतोऽपि करणग्रामादपि प्रेयसः
प्राणाद्प्यधिकेति सुन्दरि भवत्प्रीत्येकबद्धादरः ।
वर्तेऽहं वितथव्यलीकपरुषा नैर्घृण्यमालम्बसे
यद्येवं मयि सर्वथैव परितः किं वा करिष्याम्यहम् ॥ ३३ ॥

अविद्या—(सोत्प्रासम् ।) सख्यौ, श्रुतं खलु ।

देवस्यास्य किलाहमद्य दयितात्प्राणादपि प्रेयसी

(राजानं प्रति)

दूने चक्षुषि तोदनैरलमहो वाक्यैरमीभिस्तव ।
यद्वा वल्लभवस्तुसङ्गिनि मनस्यात्मन्यनायत्तता
तद्दोषादयथोचितं व्यवहरस्वेवं न दोषस्त्वयि ॥ ३४ ॥

राजा—हे कल्याणि, विवाहसे पहले मुझे जो कोई जैसा-तैसा जानते हों, परन्तु तुमको पाकर मैंने कौनसा नव-नव सुख नहीं प्राप्त किया है ? तुम इतनी प्रशंसनीय वैभवसे युक्त तथा सौभाग्यशालिनी होकर भी मुझे अपकारकारी समझकर कैसे भागी जा रही हो ? ॥ ३२ ॥

तुम मेरे लिये धन, शरीर तथा प्रिय प्राणोंसे भी बढ़कर हो, हे सुन्दरि, मैं एकमात्र तुम्हारी प्रीतिपर अवलम्बित रहता हूँ, फिर भी तुम मिथ्या अपकार-मानकर कठोर हो गई हो और सर्वथा निर्दयताका अवलम्बन करने जा रही हो, तो भला मैं क्या करूँगा ॥ ३३ ॥

अविद्या—(उपहासके साथ) सखियो, तुमने सुना ?

आज मैं महाराजकी प्रिय प्राणोंसे भी अधिक प्यारी हूँ ।

(राजाके प्रति) उपहत नेत्रोंको व्यथा पहुँचानेवाले तुम्हारे ये वचन व्यर्थ हैं । अथवा प्रियवस्तुमें आसक्त मनपर अपना अधिकार नहीं रह जाता है, उसीके चलते तुम अनुचित बोलते हो इसमें तुम्हारा दोष नहीं है ॥ ३४ ॥

विषयवासना—देव, सर्वतोमुखविचित्रपरमानन्दविधायिनीं देवीमपहाय वाङ्मनसातिवर्तिनि कुहापि विषये कुतो भवानासज्जति।

चित्तशर्मा—वयस्य, तथ्यमाह विषयवासना।

प्रवृत्तिः—आर्य चित्तशर्मन्, प्रगल्भोऽसि समयोचितमभिधातुम्। तथ्यमेवाह विषयवासना। त्वयि तु न व्यवस्था।

चित्तशर्मा—स एष मम सहजो धर्मः।

अविद्या—अलमलमतिप्रसङ्गेन।

(नेपथ्ये वैतालिकौ।)

एकः—

मोक्तुं तापमिव प्रतीचि जलधौ मज्जत्ययं भानुमान्
रागः कोऽपि विजृम्भते घनपथे चित्ते बधूनामपि।
आर्द्रागाः कुपितामुपासिसिषते कान्तां विलासी जनो
भक्त्या कर्मठभूमिदेवपरिषत्संध्यां च सायंतनीम्॥ ३५॥

विषयवासना—महाराज, सर्व प्रकारसे विचित्र परम आनन्द देनेवाली देवीको छोड़कर मन तथा वचनसे परे वर्त्तमान किसी अज्ञातवस्तुपर आप क्यों आसक्त होते हैं?

चित्तशर्मा—वयस्य, विषयवासना ठीक कह रही है।

प्रवृत्ति—आर्य चित्तशर्मा, समयानुकूल बात करनेमें तुम बड़े चतुर हो, विषयवासना अवश्य ठीक कह रही है, परन्तु तुम्हारा कुछ ठीक नहीं है।

चित्तशर्मा—यह तो हमारा स्वाभाविक धर्म है।

अविद्या—अधिक बातें करना व्यर्थ है।

(दो वैतालिकोंका प्रवेश)

एक—अपने तापका परित्याग करनेकी इच्छासे सूर्य पश्चिम सागरमें डूब रहा है, आकाशमें एक प्रकारकी लालिमा फैलती जा रही है और ललनाओंके मनमें भी अनुराग प्रभाव जमाता जा रहा है। सद्यः कृतापराध विलासीजन कुपित प्रियतमाकी तथा कर्मठ ब्राह्मणसमुदाय सन्ध्याकी उपासना करने जा रहा है॥ ३५॥

द्वितीयः—

गन्धेन स्फुटकैरवाकरभुवा विष्वग्विकर्षन्नलीन्
स्वच्छन्दं दिवसावसानपिशुनो मन्दानिलः स्पन्दते ।
भावी नौ विरहाधिरित्यविदितेऽप्यन्तःशुचा स्थीयते
कोकेन प्रियया सहैकनलिनीनालाधिरूढेन च ॥ ३६ ॥

(सर्वे आकर्णयन्ति ।)

चित्तशर्मा—देव, अतिवर्तते संध्यासमयः ।

राजा—तथा ।

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे ।)

तृतीयोऽङ्कः ।

द्वितीय—विकसित होते हुए कैरववनकी सुगन्धसे अलियोंको आकृष्ट करनेवाला यह दिनान्तसूचक मन्दानिल स्वच्छन्द चल रहा है । हमलोगोंका विरहकष्ट होगा इस बातको नहीं जानकर भी नलिनीके एक नालपर प्रियतमाके साथ बैठे हुए कोक कुछ मानस शोकका अनुभव करते हैं ॥ ३६ ॥

(सभी सुनते हैं)

चित्तशर्मा—देव, सन्ध्याका समय बीता जा रहा है ।

राजा—हाँ ।

(सभीका प्रस्थान)

तृतीय अङ्क समाप्त

चतुर्थोऽङ्कः

(ततः प्रविशति चित्तशर्मा ।)

चित्तशर्मा—

तेजोवैभवकौशलोपकरणान्यद्धा मुधासिद्धिषु
व्यक्तं राघवपाण्डवादिषु रणे मुह्यत्सु दृष्टं हितम् ।
तन्मन्ये पुरुषस्य काङ्क्षितहितावाप्तिस्तु दैवेच्छया
स्वेनेदं कृतमेतदाप्तमिति ये नन्दन्ति मूढा हि ते ॥ १ ॥

अद्य खलु

विस्रम्भप्रणयास्पदस्य सुहृदो निर्व्यूढमिष्टादिकं
देव्याः प्रार्थितकार्यसाधनकृता प्रीतिः समग्रोदया ।
तत्रापि स्वसमीहितार्थफलसंपत्तिर्विरोधं विना
दैवेनोपनतं कियत्कियदहो वाञ्छानुरूपं हितम् ॥ २ ॥

तदिदमद्भुतसंविधानमत्रभवत्याः शिवभक्तेः कस्य मुखेन कर्णपथ-

(चित्तशर्माका प्रवेश)

चित्तशर्मा—तेज, वैभव, कुशलता तथा अन्यान्य साधन राम-युधिष्ठिर आदि नृपगणके लिये व्यर्थ होते देखे गये हैं, वे युद्धमें किङ्कर्त्तव्यविमूढ होते देखे गये हैं, अतः यह सिद्ध है कि पुरुषकी अभिलषित हितवस्तुकी प्राप्ति भाग्य पर ही निर्भर करती है; इस स्थितिमें जो लोग यह समझते हैं कि यह कार्य मैंने स्वयं किया है यह उनका अज्ञान है ॥ १ ॥

आज—

मैंने विश्वास तथा प्रीति पर आश्वस्त मित्रका अभिलषित सिद्ध कर दिया है, प्रार्थित कार्यकी सिद्धिद्वारा रानीका सम्पूर्ण स्नेह पा लिया है, उसमें भी विना किसी विरोधके अपने सभी हित अर्थकी सिद्धि हुई है, यह समस्त इच्छानुरूप फल भाग्यवश ही सिद्ध हो सका है ॥ २ ॥

यह अद्भुत घटना किसके मुखसे पूज्या शिवभक्तिके कानों तक पहुँचाऊँ ?

भवतारयेयम्। सा तावदितः प्रतिनिवृत्तयोर्विरक्तिनिवृत्त्योः सकाशादत्र चित्रपटदर्शनवृत्तान्तमवकर्ण्य त्रुटितमिह कार्यमिति बहुधा निर्विद्येत। अतः सत्वरमेतदर्थप्रापणे कः समर्थो भवेत्। (पुरो विलोक्य।) दिष्ट्या सत्सङ्गोऽयमित आगच्छति। य एषः

धुनीते संतापं दुरितशतचिन्तासमुदितं
तमःस्तोमक्लेशं तरणिरिव सद्यः समुदयन्(?)।
निरुन्द्धे दुर्वृत्तं निखिलमपि पर्यन्तविरसं
पथः पुण्यानेव प्रथयति परिक्लेशविधुरान्॥ ३॥

(ततः प्रविशति सत्सङ्गः।)

सत्सङ्गः—आदिष्टोऽस्मि तत्रभवत्या शिवभक्त्या—'चित्तशर्ममुखेन जीवराजवृत्तान्तमवगम्य सपदि परावर्तस्व' इति। (पुरो विलोकयन्।) अयमसौ चित्तशर्मा। यावदेनमुपसर्पामि। (उपसृत्य।) अपि कुशलं वयस्याय।

चित्तशर्मा—विशेषतश्च भवत्समागमेन। (सपरितोषम्।) सखे सत्सङ्ग,

वह यहाँसे लौटकर गई हुई विरक्ति तथा निवृत्तिके द्वारा चित्रपटदर्शनवृत्तान्त सुनकर समझती होगी कि यहाँका काम बिगड़ गया और इस प्रसङ्गमें वह खिन्न भी होगी। अतः शीघ्र इस घटनाको वहाँ तक पहुँचानेमें कौन समर्थ होगा? (आगेकी ओर देखकर) भाग्यवश सत्सङ्ग इधर ही आ रहा है। यह—

यह सत्सङ्ग नानाविध पापोंकी चिन्तासे उत्पन्न सन्तापको दूर करता है जैसे सद्यः उदित सूर्य अन्धकार-राशिकृत क्लेशको दूर करता है। परिणाम-विरस समस्त दुर्वृत्तको भी यह दूर भगाता तथा क्लेशरहित पुण्यमार्गको प्रशस्त किया करता है॥ ३॥

(सत्सङ्गका प्रवेश)

सत्सङ्ग—पूज्या शिवभक्तिने आदेश दिया है:—'चित्तशर्मासे जीवराजका सारा वृत्तान्त पता लगाकर अभी लौटो'। (आगे देखकर) यही है चित्तशर्मा, जब तक इनके पास चलूं। (समीप जाकर) मित्र, कुशल तो है?

चित्तशर्मा—खासकर तुमसे मिलनेसे सब कुशल है। (प्रसन्न होकर)

समये समुपगतोऽसि। शृणु तावत्। अहं किल वयस्येन जीवराजेन संदिष्टोऽस्मि।

सतसङ्गः—कथमिव।

चित्तशर्मा—'वयस्य, चित्रदर्शनात्प्रभृति नितान्तदुर्मनायमाना देवी। तत्तदुचितचमत्कारिचतुरतरोपायैरुपसृत्य भवता तथा विधेया, यथा सा स्वयमेव मामुपगम्य वेदारण्यगमनमभ्यर्थयेत' इति। तदनु कथमेतदुपपद्यताम्।

आर्द्रागसा कथमियं हि मयाभ्युपेया
तादृक्करालहृदयाथ कथं प्रसाद्या।
भूयः प्रतीपयुवतिस्मृतिकारिणीषु
वेदाटवीषु गमनस्य कथा कथं स्यात्॥ ४॥

इत्येवमतिमात्रचिन्तातरलिते मयि तत्क्षणमेव सत्वरोपगतया देव्याः सहचारिण्या कुहनयाभिहितम्—'आर्य, भवदाकारणाय भट्टिन्या प्रेषिताहम्' इति। तदवकर्ण्य 'किमेतदापतितम्' इति मयि किमपि किमप्यन्त-

---

सखे सत्सङ्ग, बड़े अच्छे मौकेपर मिले हो, तब तक सुनो—मुझे मेरे मित्रवर जीवराजने सन्देश कहा है—

सत्सङ्ग—क्या कहा है?

चित्तशर्मा—वयस्य, चित्रदर्शनके समयसे लेकर देवी नितान्त दुःखी रहा करती हैं। अतः आप उसके पास जाकर उचित तथा चमत्कारपूर्ण उपायोंसे ऐसा करें कि वह स्वयं मेरे पास आकर वेदारण्य जानेकी प्रार्थना करे। लेकिन यह हो कैसे?

अभी-अभी मैंने अपराध किया है मैं तत्काल उसके पास कैसे जाऊं? उस तरह की कठोरहृदयाको मैं किस प्रकार प्रसन्न कर सकूंगा? फिर विरोधी युवतिकी याद दिलानेवाली वेदारण्यगमनवार्त्ताका प्रसङ्ग कैसे लाया जाय? ॥४॥

मैं इस प्रकारकी चिन्ताओंसे चञ्चल-चित्त हो ही रहा था कि तत्काल देवीकी सहचरी कुहनाने तेजीसे आकर मुझसे कहा—आर्य, मुझे देवीने आपको बुला लानेको भेजा है। इस बातको सुनकर मैं भीतर ही भीतर कुछ इस प्रकार सोच रहा था कि यह क्या हो गया? इस पर उसने कहा कि इसमें

राशङ्कमाने 'न किंचिदत्र विचारस्थानमार्यं भवन्तं संमानयितुमत्रभवती समाह्वयति' इति सा कथितवती।

सत्सङ्गः—ततस्ततः।

चित्तशर्मा—तदनु 'किमयमसंभावितोपन्यासस्त्वया क्रियते। तदधुना सप्रकारमखिलमावेदय' इत्यनुयुक्ता कुहना यथावृत्तमभिहितवती।

सत्सङ्गः—इदं श्रोतव्यम्।

चित्तशर्मा—नितान्तदुर्मनायमानां देवीं प्रियसखी विषयवासना रहसीत्थं बोधितवती। यथा—'प्रियसखि, त्यज्यतामिदमाकस्मिकं वैक्लव्यम्। शृणु तावत्। चित्तशर्मा नामायं जीवस्य नितान्तमन्तरङ्गः। तदस्मिन्नखिलराजकार्यधुरंधरे विरोधो न फलति। अतस्तमिममनुरुध्यैव राजा विधेयीकर्तव्यः' इति।

सत्सङ्गः—सुष्ठु कथितं विषयवासनया।

चित्तशर्मा—तदनु देवीसमक्षमुपगम्य निःशङ्कमहमब्रुवम्।

सत्सङ्गः—कथमिव।

कुछ सोचनेकी बात नहीं है, देवीने आपको संमानित करनेके लिये ही आपको बुलाया है।

सत्सङ्ग—तब ?

चित्तशर्मा—इसके बाद मैंने उससे कहा कि यह तुम क्या असंभावित बातकी चर्चा करती हो ? इस पर कुहनाने सारी घटना सुना दी।

सत्सङ्ग—यह तो सुनने लायक है।

चित्तशर्मा—नितान्त उदास भावसे भरी देवीको उनकी प्रियसखी विषयवासनाने एकान्तमें इस प्रकारसे समझाया—प्रियसखि, इस आकस्मिक विषादको छोड़ो, मेरी बात सुनो, यह चित्तशर्मा जीवराजका नितान्त अन्तरङ्ग मित्र है, वह सकलकार्यधुरन्धर भी है उसके साथ विरोध करना फलप्रद नहीं होगा। अतः चित्तशर्मा को मिलाकरके ही राजाको वशमें करना चाहिये।

सत्सङ्ग—विषयवासनाने ठीक कहा।

चित्तशर्मा—इसके बाद मैंने देवीके पास जाकर निर्भयभावसे कहा—

सत्सङ्ग—क्या कहा ?

चित्तशर्मा—

'कुतोऽपि हेतोरतिदुर्मनायते चिरेण राजा चतुरा भवत्यपि।
मनो निरुध्यैव तदीयमात्मनो मनोरथः संप्रति किं न पूर्यते ॥ ५ ॥

तस्य हि चिरादभिलषितो वेदारण्यप्रवेशः। तत्र नित्यसंनिहित-शमदमादिविघटनाय प्रागेव संनिधापनीया महामोहादयो महामात्राः। तदनु तत्र भवत्या सह प्रविष्टे राजनि काम्यादिभिः क्रियाभिरुपासनाभिश्च तरलीकृते सेत्स्यति समग्रस्ते मनोरथः' इति।

सत्सङ्गः—सखे, सत्वरमेव निर्वर्तनीयोऽयमर्थः।

चित्तशर्मा—कुतः।

सत्सङ्गः—निवृत्तिमुखाज्जीवराजगुणानवकर्ण्य बलवदुत्कण्ठिता विद्या। तथाहि।

आदर्शभित्ति भजते न विहारगेह-
मासन्नचन्द्रभ्रमितः स्वमुखाम्बुजेन।

चित्तशर्मा—बहुत दिनोंसे राजा किसी कारणवश अत्युदासीन रहा करते हैं, आप भी चतुरा हैं, अतः आप उनके मनको अपने वशमें करके ही अपना मनोरथ क्यों नहीं पूर्ण करती हैं ॥ ५ ॥

वह बहुत दिनोंसे वेदारण्यमें प्रवेशकी इच्छा पाले हुए हैं। आप अपने महामोह आदिको वहाँ पहले ही नियुक्त कर दें कि वह सदा वहाँ रहनेवाले शम-दम आदिको विघटित कर दे।

इसके बाद जब राजा आपके साथ वहाँ प्रवेश करेंगे तब काम्य-क्रियायें तथा उपासनायें उनको चञ्चल कर देंगी, फिर आपका सारा मनोरथ सिद्ध होगा।

सत्सङ्ग—सखे, यह कार्य शीघ्र करना है।

चित्तशर्मा—क्यों?

सत्सङ्ग—निवृत्तिके मुखसे जीवराजके गुणोंको सुनकर विद्या बहुत अधिक उत्कण्ठित हो रही है।

वह शीशेसे निर्मित दीवारवाले अपने विहार-गृहमें नहीं जाती है, क्योंकि उसे वहाँ पर दीवारोंमें प्रतिबिम्बित अपने मुखमें चन्द्रमाके भ्रमसे भय होता

आलीरभि प्रतिवचो गृणती गवाक्ष-
मारामकोकिलभयेन मुहुः पिधत्ते ॥ ६ ॥

तदेवमतिमात्रविरहसंतापजनितोन्मादतरलिता सा ।

चित्तशर्मा—(सहर्षम् ।) एवमन्योन्यानुरागे सति सुकरमेव कार्यशेषं तर्कयामि ।

सत्सङ्गः—सखे, भवन्तमधिकृत्य किंचिदिव संदिहानेन मया कदाचिदत्रभवती शिवभक्तिरभिहिता—'सांप्रतमस्माकमतिविधेयोऽपि चित्तशर्मा चिरतरमविद्यानुबन्धी कथमस्मदभिमतकार्यानुकूलो भवेत्' इति । तदनु निजहृदयनिर्विशेषमेव त्वामिह मन्यमाना भगवती कथितवती—'स एव कार्यमिदं प्रस्तुतमभिनिर्वर्तयिष्यति' इति ।

चित्तशर्मा—परेङ्गितपरिज्ञानप्रवणहृदया हि महानुभावा भक्तिः । (सस्मितम् ।) अये सत्सङ्ग, सत्यमहमेवंशङ्कनीयो भवेयम्, अत्रभवती यदि न मामनुगृह्णीयात् । संप्रति तु मदध्यवसायः श्रूयताम्—

है और जब वह सखियोंसे कुछ कहती है तो ऐसा लगता है कि कोयल बोल उठी, बस झटसे वह उद्यानगत कोकिलके भयसे खिड़कियाँ बन्द कर लेती है ॥ ६ ॥

इस प्रकार वह विरहोन्मादसे नितान्त विह्वल हो रही है ।

चित्तशर्मा—(सहर्ष) जब इस प्रकार अन्योन्य प्रेम है तो मैं आगेका कार्य अतिसरल समझता हूँ ।

सत्सङ्ग—सखे, तुम्हारे विषयमें कुछ सन्देह होनेसे मैंने कभी शिवभक्तिसे कहा था—कि अब हमारे अत्यन्त विश्वास-पात्र चित्तशर्मा भी चिरकाल तक अविद्याके संपर्कमें रहनेके कारण किस प्रकार हमारे कामके लायक हो सकते हैं ? इस पर शिवभक्तिने तुमको अपने हृदयसे अभिन्न सा मानकर कहा था कि वही इस प्रस्तुत-कार्यको सम्पन्न कर सकेगा ।

चित्तशर्मा—महानुभावा शिवभक्तिका हृदय दूसरोंके मनोभावको जाननेमें क्षम है । (मुस्कुराकर) अजी सत्सङ्ग, ठीक ही मैं इस तरहके सन्देहका पात्र हो जाता यदि भगवती शिवभक्ति मुझपर कृपा नहीं करतीं । अब मेरा विचार सुन लो—

भुञ्जानः सुचिरादभेदविधया भोगानहं स्वामिनो
जीवस्याभ्युदयाय बर्ष्म च तृणप्रायं त्यजाम्यत्र तु ।
सङ्ग्रामे समुपागते निजभुजव्याधूतखड्गाहति-
च्छिन्नस्वीयसनाभिबर्मविपिनः कर्णः प्रमाणं मम ॥ ७ ॥

किं च ।

गोत्रानुबन्धममतादिषु निर्विशेष-
स्तत्तादृशः कुलमहत्तर एव भीष्मः ।
स्वामी सुयोधन इति द्रुतमाजिभूमौ
शस्त्रास्त्रवर्षपरुषोऽजनि पाण्डवेषु ॥ ८ ॥

अतस्तदनुग्रहभाजनमहमन्यथा न राङ्कनीयः । सोऽहमचिरेण राजानमविद्यया सह वेदारण्यं प्रवेशयामि । तदनु तत्र कामनानुविद्धतत्तदुपासनाभिरविद्यापि राजानं प्रलोभयते । तदनन्तरकरणीये भगवती प्रमाणम् ।

सत्सङ्गः—अत्रभवती शिवभक्तिस्ताभिरेवोपासनाभिः साकमनतिभि-

मैंने चिरकाल तक स्वामीके साथ अभिन्न-भावसे नाना प्रकारके भोगोंका उपभोग किया है, अब मैं चाहता हूँ कि अपने स्वामी जीवराजके अभ्युदयके निमित्त मैं अपना शरीर तृणकी तरह त्याग दूँ । इस विषयमें सङ्ग्राम उपस्थित होने पर अपने हाथसे सञ्चालित खड्ग द्वारा अपने सगोत्रोंके कवचोंको छिन्न भिन्न करनेवाला कर्ण मेरा आदर्श है ॥ ७ ॥

भीष्म पितामह गोत्र संबन्ध तथा ममता आदि में पाण्डवों एवं कौरवोंके लिये समान थे, वह उनके कुलश्रेष्ठभी थे, लेकिन वह केवल इसीलिये युद्धक्षेत्रमें पाण्डवों पर निर्मम भावसे अस्त्रवर्षा करते रहे कि वह दुर्योधन उनके लिये पौत्र नहीं स्वामी था ॥ ८ ॥

अतः—मैं राजाका कृपा पात्र हूं इसलिये मुझपर अन्य प्रकारकी शङ्का नहीं करनी चाहिये । अब मैं शीघ्र ही राजाके साथ अविद्याको वेदारण्यमें प्रवेश कराऊँगा । इसके बाद कामनायुक्त उपासनाओंके द्वारा अविद्याभी राजाको प्रलोभित कर सकेगी । आगेका कार्यक्रम शिवभक्तिके अधीन है ।

सत्सङ्गः—शिवभक्ति चाहती है कि उन्हीं उपासनाओंसे मिलती जुलती

ज्ञाया दहरविद्यायाः पदान्तर एव विद्यामपि राजमात्रदृश्यतयानुप्रवेशयितुमध्यवस्यति ।

चित्तशर्मा—अतः सत्वरमिममुदन्तमावेदयितुमत्रभवतो शिवभक्तिरुपगन्यताम् । अहमपि भद्रशालाभ्यन्तरे मामेषं सुचिरं प्रतीक्षमाणस्य वयस्यस्य सकाशं गच्छामि ।

(इति निष्क्रान्तौ ।)

विष्कम्भः ।

(ततः प्रविशति यथानिर्दिष्टो राजा ।)

राजा—(स्मरणमभिनीय ।) इन्त, मया निज कार्यनिर्वर्तनैकचेतसा महदनुचितं कृतम् । यदेष वयस्यो बुभुक्षितव्याघ्रोपरिसरमभिवर्तितो हरिणशाव इव नितान्तपरिकुपितायां देव्यां सविधमार्द्रापराधो गमितः । तत्र कति कति परिभवाननुभूय कथमिव परिक्षिप्यते वा न जानामि ।

(ततः प्रविशति चित्तशर्मा ।)

दहरविद्याके बगलमें विद्याकाभी प्रवेश हो किन्तु वह राजमात्रदृश्या रहे, किसी दूसरेकी नजर उसपर नहीं पड़े ।

चित्तशर्मा—अतः शीघ्रतासे इस वृत्तान्तकी सूचना शिवभक्तिके पास जाकर दो । मैं भी भद्रशालामें चिरकालसे मेरी प्रतीक्षामें बैठे हुए प्रिय वयस्य जीवराजके समीप जाता हूँ ।

(दोनोंका प्रस्थान)

(विष्कम्भ समाप्त)

(यथानिर्दिष्ट रूपमें राजाका प्रवेश)

राजा—(स्मरणका अभिनय करके) हाय, मैंने अपने कार्यमात्रकी चिन्ता करके बड़ा बुरा किया कि अपने प्रियमित्रको नितान्त कुपित देवीके समीप सद्यः कृतापराधावस्थामें भेज दिया, यह मेरा कार्य उसी तरह हुआ जैसे कोई अपने पालित हरिण शिशुको रुष्ट व्याघ्रीके निकट भेज दे । मैं नहीं जानता कि वह वहाँ किन पराभवोंको पाकर किस रूपमें दुःखी हो रहा है ।

(चित्तशर्माका प्रवेश)

चित्तशर्मा—हन्त, वयस्योऽयमतिमात्रविद्याविरहतापेन परिभूयते। तथाहि।

वीक्षानिर्विषया निकाममलसप्रान्ते च कान्ते दृशौ
शश्वत्किंच मितैर्वृतः परिजनैरेकान्तमासेवते।
नास्था वस्तुषु वल्लभेषु मनसो निष्ठा न कुत्रापि वा
तेजोमात्रससारमूर्तिरधुना जागर्ति जीवो विभुः॥ ६॥

यावदेनमुपसर्पामि। (उपसृत्य।) विजयतां देवः।

राजा—(दृष्ट्वा सपरितोषम्।) वयस्य, प्रसन्न इव लक्ष्यसे। किमस्ति कश्चिद्विशेषः।

चित्तशर्मा—अथ किम्।

राजा—कथमिव।

(चित्तशर्मा किंचिदिवोपसर्पन्निदमित्थमितिवृत्तमखिलमर्थमानुपूर्व्या कथयति।)

राजा—वयस्य, किमत्र देवी संनिदधीत।

चित्तशर्मा—हाय, यह मेरे मित्र विद्याके विरहमें अतिसन्तप्त हो रहे हैं। क्योंकि—इनका देखना निरुद्देश्य है, इनकी सुन्दर आँखोंके प्रान्त अत्यन्त अलसाये लगते हैं, परिमित परिजनोंके साथ सदा एकान्तसेवन किया करते हैं, प्रियवस्तुओंमें अनुराग नहीं रह गया है, किसी कामें मन नहीं लग रहा है, उनके शरीरमें केवल तेजभर शेष रह गया है, इसी रूपमें जीवराज वर्त्तमान हैं॥ ९॥

तब तक इनके पास चलूं। (समीप जाकर) जय हो महाराजकी।

राजा—(देखकर—प्रसन्नतासे) मित्र, प्रसन्न दीख रहे हो, क्या है कुछ नई बात?

चित्तशर्मा—और क्या?

राजा—सो क्या?

(चित्तशर्मा थोड़ा और समीप जाकर—'इस प्रकार' कानमें सारी घटना सुनाता है)

राजा—मित्र, क्या देवी यहाँ आयेंगी।

चित्तशर्मा—सह परिवारैरुपगतैव।

(ततः प्रविशति विषयवासनया प्रवृत्त्या च सहाविद्या।)

अविद्या—(सनिर्वेदम्।) सखि विषयवासने, बहुप्रकारमनुसृतोऽपि देवः सर्वथा न यथापुरमस्मासु प्रसीदति। कर्तव्यस्तु समुदाचारः। (इति कतिचित्पदानि गत्वा पुरोऽवलोक्य।) कथमत्रैव चित्तशर्मणा विविक्तमध्यास्ते देवः। यावदेनमुपसर्पामि। (उपसृत्य।) विजयतां देवः।

राजा—इत आस्यताम्। (इत्यासनं निर्दिशति।)

चित्तशर्मा—देवी, दिष्ट्या वर्धसे।

विषयवासना—वर्धतां महाराजः।

(राजा चित्तशर्माणं संज्ञापयति।)

चित्तशर्मा—देव, भवता सह वेदारण्यविहाराय बलवदुत्कण्ठिता देवी। तत्कुतो विलम्बसे।

राजा—यदभिलषितं देव्यै।

चित्तशर्मा—सपरिवार आ ही गई, समझिये।

(विषयवासना और प्रवृत्तिके साथ अविद्याका प्रवेश)

अविद्या—(खिन्न भावसे) सखि विषयवासने, नाना प्रकारसे अनुगमन करने पर भी महाराज पहलेकी तरह पूर्ण रूपसे हम लोगों पर खुश नहीं होते हैं, फिर भी हमें शिष्टाचार करना ही है। (कुछ पग आगे चलकर—आगे देखकर) क्यों, वहीं पर चित्तशर्माके साथ महाराज एकान्तसेवन कर रहे हैं? तब तक इनके पास चलती हूं। (समीप जाकर) महाराजकी जय हो।

राजा—इधर बैठिये (आसनकी ओर इशारा करते हैं)

चित्तशर्मा—देवि, आपके बड़े भाग्य हैं।

विषयवासना—महाराजका अभ्युदय हो।

(राजा चित्तशर्माको इशारा करते हैं)

चित्तशर्मा—आपके साथ वेदारण्यमें विहार करनेके लिये देवी परम उत्सुक हैं। आप अब क्यों विलम्ब कर रहे हैं।

राजा—देवीकी जैसी इच्छा।

(इति सर्वे उत्तिष्ठन्ति ।)

देवी—(स्वगतम् ।) का गतिः ।

राजा—कः कोऽत्र भोः ।

(प्रविश्य ।)

दौवारिकः—अहमस्मि ।

राजा—संकल्प, वेदारण्यमार्गमादेशय ।

संकल्पः—इत इतो देवः ।

(सर्वे वेदारण्यगमनं नाटयन्ति ।)

राजा—(वामपार्श्वतः कर्णं दत्त्वा ।) अये चित्तशर्मन्, अत्र केषामपि परस्परालाप इव श्रूयते ।

चित्तशर्मा—(स्मरणमभिनीय । किंचिदिवोपसृत्य । जनान्तिकम् ।) वयस्य, 'देव्या हितान्वेषिभिर्मोहादिभिरधर्ममार्गे भवत्प्रलोभनाय लोकायतिकादिपाषण्डसिद्धान्ताः संनिवेशिताः' इति वस्तुविचारेण संप्रत्येव मे कथितम् । प्रायस्त एते भवेयुः (पुरो विलोक्य ।) स एषः

(सभी उठ खड़े होते हैं)

देवी—(स्वगत) न जाने, क्या होता है ।

राजा—कोई है यहाँ ?

(प्रवेश करके)

दौवारिक—हुजूर, मैं हूँ ?

राजा—सङ्कल्प, वेदारण्यका मार्ग दिखलाओ ।

संकल्प—महाराज, इधर चलिये ।

(सभी वेदारण्य गमनका अभिनय करते हैं)

राजा—(बाईं ओर कान लगाकर) अजी चित्तशर्मा, यहाँ कुछ लोगोंका वार्त्तालाप सा सुननेमें आ रहा है ।

चित्तशर्मा—(याद करनेका अभिनय करके) (थोड़ा समीप जाकर) (छिपाकर) 'देवीके हितैषी मोह आदिने आपे मार्गमें ही आपको प्रलोभन देने के लिये लोकायतिक आदि पाखण्ड सिद्धान्तोंको नियुक्त कर रखा है', यह बात वस्तुविचारने हमें अभी बताई है । हो सकता है वे ही हों । (आगेकी ओर देखकर) यह है वस्तुविचार—

असारमेतज्जगदित्यवेत्य तृणादिवत्पश्यति दृश्यजालम् ।
अन्तश्चिरानन्दरसानुभूतिमङ्गैः समुद्यत्पुलकैर्व्यनक्ति ॥ १० ॥

(ततः प्रविशति वस्तुविचारः ।)

वस्तुविचारः—आदिष्टोऽस्मि तत्रभवत्या शिवभक्त्या—'वत्स वस्तुविचार, संप्रति जीवराजो वेदारण्यं प्रविविक्षुरिति श्रूयते । तदेनमपथान्निवर्त्य सतैव पथा समानेतुमस्य परिसरोऽधिगन्तव्यः' इति । (पुरो विलोक्य ।) स एष जीवराजः । यावदेनमुपसर्पामि । (उपसर्पति ।)

(राजा चित्तशर्मणा सह प्रणमति ।)

वस्तुविचारः—सिद्धसंकल्पौ भूयास्ताम् ।

अविद्या—(सविषादम् । स्वगतम् ।) हन्त, विफलो मे मनोरथः पाषण्डेषु ।

(ततः प्रविशन्ति पाषण्डसिद्धान्ताः ।)

यह संसार असार है ऐसा समझकर यह समस्त दृश्यवस्तुको तृणकी तरह तुच्छ मानता है, और रोमाञ्चित शरीरावयवों द्वारा आन्तरिक शाश्वत सुखकी अनुभूतिको व्यञ्जित करता है ॥ १० ॥

(वस्तुविचारका प्रवेश)

वस्तुविचार—पूज्या शिवभक्तिने कहा है कि 'वत्स वस्तुविचार इस समय जीवराज वेदारण्यमें प्रवेश करना चाहते हैं ऐसा सुननेमें आया है । अतः उनको अपथसे निवृत्त करके सन्मार्गसे ही लानेके लिये तुम उनके पास जाओ' । (आगे देखकर) यही हैं जीवराज । जब तक इनके पास चलूं ।

(समीप जाता है)

(राजा चित्तशर्माके साथ वस्तुविचारको नमस्कार करता है)

वस्तुविचार—आपके संकल्पकी सिद्धि हो ।

अविद्या—(विषादके साथ) (स्वगत) हाय, पाखण्डोंके संबन्धमें मेरा मनोरथ विफल हुआ ।

(पाखण्ड सिद्धान्तोंका प्रवेश)

लोकायतिकसिद्धान्तः—

न क्लेशक्लेशयोगो भागोऽनुपरोध एव सर्वत्र ।
इति सति किं न रमन्ते मन्दधियो मामके तन्त्रे ॥ ११ ॥

(इति परिक्रामति ।)

चित्तशर्मा—(राजानं प्रति ।) अत्रायमस्याशयः—'प्रत्यक्षमेव प्रमाणम्, अदृष्टचरं तु नास्त्येव । तथा च ।

पृथिव्यापो वह्निः पवन इति सत्याः परमसौ
तदेषां संघातो भवति वपुरात्मा बहुविधः ।
समष्टेस्ताम्बूलादरुणिमवदुन्मीलति मतिः
सुखादिव्यापारैरुपनमति धर्मादि तु मृषा ॥ १२ ॥

अतः ।

देशः कालोऽथ जातिः कुलमकुलमियं स्वा परेत्यादिहेतो-
र्वर्ज्यायर्ज्येतिमिथ्याकुहकविरचितां यन्त्रणामन्तरेण ।
आद्ये खाद्येऽथ पेयेऽप्यनियमिततया काममापुष्य गात्रं
दृष्ट्वा मिष्टामवाप्य स्मरमदमुदितां भोग एवाभ्युपेयः ॥ १३ ॥

लोकायतिक—कोई कष्ट है नहीं, सर्वत्र बेरोकटोक प्रवेश हो सकता है, फिर भी यह मूर्ख जनसमुदाय मेरे शास्त्रमें रुचि क्यों नहीं रखता है ॥ ११ ॥

(आगे चलता है)

चित्तशर्मा—(राजाके प्रति) यहाँ इसका यह आशय है कि प्रत्यक्षमात्र प्रमाण है, जो पदार्थ नहीं दीखता है वह नहीं है । क्योंकि—पृथिवी, जल, तेज, वायु यही सत्य तत्त्व हैं, इनका ही समुदाय नानारूप शरीरके रूपमें प्रकट है, जैसे पानके उपकरणोंके समुदायसे लाली उत्पन्न हो जाती है उसी तरह इनके समुदायसे चैतन्य उत्पन्न हो जाता है, सुखादिके लिये किये गये व्यापारोंमें उस चैतन्यकी परिणति होती है, धर्मादि मिथ्या है ॥ १२ ॥

देश, काल, जाति, सत्कुल, दुष्कुल, स्वीया, परकीया, इत्यादि कारणोंसे कोई स्त्री त्याज्य या ग्राह्य होती है यह मिथ्या कल्पित कष्टके विना ही, जैसे खाद्य पेय आदिमें अनियमित रूपसे शरीरपोषण किया गया है उसी तरह, मधुसदृशी तथा काममदमोहिता स्त्रीको पाकर उसका भोग ही उचित मार्ग है ॥१३॥

इति।

चित्तशर्मा—(सभ्रूभङ्गम्।) वयस्य, लोकायतिकमतमिदमतिरमणीयं प्रतीयते। यदत्र 'न विधिर्न निषेधो न धर्माधर्मौ नास्ति परलोकः' इत्यादिना प्रत्यक्षसिद्धविषयाभिरतिर्निरातङ्का हि प्रतीयते।

अविद्या—(स्वगतम्। सहर्षम्।) कथमप्यस्मदीय एव चित्तशर्मा।

(राजा सस्मितं वस्तुविचारं पश्यति।)

वस्तुविचारः—(सोद्वेगम्। स्वगतम्।) प्रमादः प्रमादः। पर्यायेण सत्पथमेनं नयेयम्। (प्रकाशम्।) किमये चित्तशर्मन्, अनभिज्ञ इवालपसि। वयं किम् 'इदमखिलमस्ति' इत्ययोचाम। 'किमपि नास्ति यत्साक्षात्' इति प्रत्यक्षसिद्धार्थाभिरतिरनातङ्केति ब्रूमहे। शापादिवशादिहार्थान्तरभ्रमेण विश्रब्धालविषयाभिरतिस्तु नरकाय भवति। तथा च तस्य प्रत्यक्षप्रमितार्थसत्यत्ववादोऽप्येतदभिप्रायक एव। 'नास्ति परलोकः' इत्यादीनि च ब्रह्मव्यतिरिक्तस्य सर्वस्याप्यभावोपलक्षकाणि। तस्य देहा-

---

चित्तशर्मा—(राजाके प्रति कुटिल भ्रूके साथ)

वयस्य, यह चार्वाकमत बड़ा सुन्दर लगता है, क्योंकि इसमें न कोई विधि है न निषेध, न कोई धर्म है न अधर्म, न परलोक है। इन सारी बातोंसे प्रत्यक्ष सिद्ध वस्तु मात्रमें प्रवृत्ति निर्बाध मालूम पड़ती है।

अविद्या—(स्वगत, सहर्ष) किसी तरह हो चित्तशर्मा है हमारा ही। (राजा मुस्कराकर चित्तशर्माकी ओर देखते हैं)

वस्तुविचार—(उद्वेगके साथ, स्वगत) गलती हो रही है, गलती हो रही है। किसी तरह धीरे-धीरे इनको सत्पथ पर लाना है। (प्रकट) क्या जी चित्तशर्मा, तुम अनभिज्ञकी तरह क्यों कह रहे हो? हमने क्या यह कहा था कि 'यह सकल वस्तु सत्य है'। हम तो यही कहते हैं कि कुछ भी वस्तु साक्षात् नहीं है, इससे यही तात्पर्य है कि प्रत्यक्षसिद्ध वस्तुमें अनुराग निर्बाध है। शापादिके कारण यदि इसमें अर्थान्तरका भ्रम हो जाय, और उससे अवास्तव वस्तुमें अनुराग हो तो वह नरकका कारण होगा। इस प्रकारसे चार्वाकोंका प्रत्यक्ष सिद्ध वस्तुका सत्यत्व स्वीकार करना इसीपर आश्रित है। 'परलोक नहीं है' यह उनकी उक्ति ब्रह्मातिरिक्त सकलवस्तुकी असत्यता बतानेके

त्मत्ववादोऽप्यन्नमयकोशस्यात्मोपलक्षकत्वनिबन्धन इति सर्वमद्वैतपर्यवसाय्येव ।

राजा—(सशिरःकम्पं पुरोऽवलोक्य ।)

परिहितकषायवासाः परिहृतहिंसः समस्तभूतेषु ।
अभ्येति भिक्षुवेषः कच्छविहीनोऽत्र बुद्धसिद्धान्तः ॥ १४ ॥

बुद्धः—अहो मन्दमेधसः, स्वानुभवविरुद्धो व्याहारः ।
प्रत्यक्षतो यत्प्रमितं कदापि तदेव सत्यं न ततोऽन्यदस्ति ।
इत्येव बुद्धिर्यदि तर्हि कस्मादपेत्यहेतोरबलामुपैति ॥ १५ ॥

चार्वाकः—अये बुद्धसिद्धान्त, किमनुमानमपि ते प्रमाणम् ।

बुद्धः—कः संदेहः ।

ऊर्ध्वं चाधश्च नानाविधभुवनभिदा नामरूपव्यवस्था-
मुर्व्यामाचक्रवालाद्वनगिरिसरितामर्णवानां च तत्त्वम् ।
ज्योतिश्चक्रोपरागस्थितिमतिसदसद्भाविभोग्यानि येन

लिये है । चार्वाक लोगोंका देहात्मवादवाद भी अन्नमयकोशकी आत्मतासिद्धिके लिये ही है । इस प्रकार मैं देखता हूँ कि चार्वाकोंका सारा सिद्धान्त अद्वैतमें ही पर्यवसित होता है ।

राजा—(शिर हिलाते हुए आगेकी ओर देखकर) कापायवस्त्रधारी, सर्वभूतहिंसाविरत, भिक्षुवेषधारी तथा कच्छविहीन यह बौद्धसिद्धान्त आ रहा है ॥ १४ ॥

बुद्ध—अरे मूर्खो, तुम्हारा कथन तुम्हारे ही अनुभवके विरुद्ध है । यदि प्रत्यक्ष प्रमितवस्तु ही सत् तथा उसके अतिरिक्त समस्त वस्तु असत्य है तो फिर असत्यके लिये स्त्रीगमन क्यों करता है ॥ १५ ॥

चार्वाक—अजी बुद्धसिद्धान्त, क्या तुम अनुमान प्रमाण भी मानते हो ?

बुद्ध—इसमें क्या शक, जिस अनुमान प्रमाणके बलपर मैं नानाविध ऊपर नीचे फैले संसार, नाम रूपकी सारी व्यवस्था, पृथ्वीपर सुमेरु पर्यन्त वर्त्तमान नाना प्रकारके वन, पर्वत, तालाब, तथा समुद्र, नक्षत्र मण्डल, ग्रहण, नक्षत्रोंकी स्थिति एवं गति, भूत भविष्य वर्त्तमान समस्त भोग्य वस्तुएं

प्रत्यक्षं दर्शयेऽहं क इव विवदतामत्र हन्तानुमाने ॥ १६ ॥

अतः।

प्रत्यक्षमनुमानं च प्रमाणं मे न संशयः।
अस्ति स्वर्गश्च नरको धर्मोऽधर्मश्च कारणम् ॥ १७ ॥

परं तु परिदृश्यमानमखिलमपि क्षणक्षणविलक्षणतया क्षणिकमेव। पश्य तावत्।

क्षणादूर्ध्वं न तिष्ठन्ति शरीरेन्द्रियबुद्धयः।
दीपार्चिरिव वर्तन्ते स्कन्धाः क्षणविलम्बिनः ॥ १८ ॥
प्रत्यक्षं जायते विश्वं जातं जातं प्रणश्यति।
नष्टं नावर्तते किं तु जायते च पुनः पुनः ॥ १९ ॥

तथा च।

कर्मोत्तेजितवासनाकृतजगज्जन्मप्रवाहो यथा
जालान्तःप्रसृतार्कतेजसि रजःस्तोमस्तथा भासते।
धारावाहिनि बोध एव गलति ज्ञानेन वा वासना
पश्चान्निर्विषयोऽमलश्च स भवन्नात्मापवर्गो मतः ॥ २० ॥

प्रत्यक्ष दिखलाऊं, उस अनुमानके विषयमें कौन मतभेद प्रकट कर सकता है ॥ १६ ॥

मैं असन्दिग्धभावसे प्रत्यक्ष तथा अनुमान यह दो प्रमाण मानता हूँ इसमें कारण स्वर्ग नरक तथा धर्म और अधर्म है किन्तु मेरे मतमें सकलदृश्यवस्तु प्रतिक्षण विलक्षणतया क्षणिक ही होता है ॥ १७ ॥

देखिये—शरीर, इन्द्रिय, तथा बुद्धिकी सत्ता क्षणसे अधिक काल तक नहीं रहती है, सारे स्कन्ध दीयेकी लौ की तरह क्षणविलम्बी हुआ करते हैं ॥ १८ ॥

यह प्रत्यक्ष विश्व उत्पन्न होते-होते नष्ट हो जाता है, नष्ट होकर वह पुनः लौटता नहीं है, केवल पुनः पुनः उत्पन्न हुआ करता है ॥ १९ ॥

कर्म द्वारा जनित वासनाओंके कारण होनेवाली जल परम्परा उसी तरह है जैसे जालान्तर्गत सूर्यकरोंमें रजोराशि भासित होती है। धारावाही ज्ञानके

अत्र 'बाह्यार्थः प्रत्यक्षसिद्धः' इति वैभाषिको जगाद। 'बोधाकारानुमेयो बाह्यार्थः' इति सौत्रान्तिकः। 'बुद्धिमात्रमर्थो न कश्चिदपि बाह्यः' इति योगाचारः। 'न बुद्धिमात्रमपि शून्यमेव तत्त्वम्' इति माध्यमिकः। तदेवं चतुर्मतमेतच्छास्त्रम्।

चित्तशर्मा—वयस्य, नियताध्ययनविहितानुष्ठानसंकटमन्तरेण सुगमनिःश्रेयसमिदं सुगतमतमनादरणीयम्।

वस्तुविचारः—तदपि श्रूयताम्। अनाद्यविद्यावासनाप्रपञ्चिता विषयसंततिः स्वरूपज्ञाने प्रतीयते। तदिदमेव संसरणं नाम। तदनु—तत्त्वज्ञानतो वासनाविगलने सति स्वरूपज्ञानस्य निर्विषयोपरागत्वमेवापवर्ग इत्यद्वैतमेवाभिमतमस्य सुगतसिद्धान्तस्यापि। अत एवामुष्य जगन्मिथ्यात्वाभिप्रायः शून्यवादः। क्षणिकतावादस्तु विशेषणीभूततत्तत्क्षणानित्यत्वाभिप्रायकः। स चायमपवर्गः। 'निष्कामकर्मानुष्ठानजन्यचित्तशुद्धि-

---

होनेपर वह वासना लुप्त हो जाती है, तदनन्तर निर्विषय होनेके कारण निर्मल आत्मा ही अपवर्ग है ॥ २० ॥

इस बौद्धसिद्धान्तमें चार प्रस्थान हैं, वैभाषिकोंका कहना है कि 'बाह्य अर्थ प्रत्यक्षसिद्ध है'। सौत्रान्तिकोंके मतमें 'बाह्य अर्थ ज्ञानाकारानुमेय' हुआ करते हैं। 'ज्ञान ही वास्तविक पदार्थ है, बाह्य अर्थ नहीं' यह योगाचारकी मान्यता है। 'शून्य ही तत्त्व है बुद्धिमात्र नहीं' ऐसा माध्यमिकोंका कहना है।

चित्तशर्मा—नियत अध्ययन एवं विहित अनुष्ठान आदिकी झंझटोंसे मुक्त होनेके कारण सुलभ मोक्ष प्रदान करनेवाला यह बौद्धमत आदरके योग्य नहीं है।

वस्तुविचार—यह भी सुन लीजिये। अनादि अविद्या वासनासे उत्पन्न विषय समुदाय स्वरूप ज्ञानमें भासित हुआ करता है, इसीका नाम संसरण है। इसके बाद तत्त्वज्ञानद्वारा वासनाके नष्ट हो जानेपर स्वरूपज्ञानका विषयोपराग राहित्य ही अपवर्ग है यह बौद्धमत तो अद्वैतमत ही है। इसका शून्यवाद भी जगन्मिथ्यात्ववाद ही है। क्षणिकतावाद भी विशेषणीभूत क्षणोंकी अनित्यताका समर्थन है। वही है इसका अपवर्ग जो निष्कामकर्मानुष्ठानजनित

द्वारक उपनिषदधिगम्यः' इत्येतदाशयमविज्ञाय शापवशेन निगमपथपरित्यागस्तु नरकाय भवति।

(लोकायतिकसिद्धान्तो विवसनसिद्धान्तं पश्यति।)

विवसनसिद्धान्तः—(सहस्ततालं विहसन्।) अहो, स्वव्याघातोपहतोऽयमस्योपन्यासः।

प्रत्यक्षाधिकमप्रमाणमुररीकृत्यानुमानं ततो
गम्यं धर्ममुरीकरोति च ततः स्वर्गादि भोगादि च।
यत्सत्तत्क्षणिकं ब्रवीति च पुनर्व्याहन्यते स्वं वचः
स्वेनैवास्य न किं जिगीषति कथं बुद्धो मतेनामुना ॥ २१ ॥

सुगतः—(साभ्यसूयम्।) अये नग्नक्षपणकसिद्धान्त, दूरत एव तिष्ठ। स्नातः पूतः संनिधेहि स्वमतमभिधातुम्।

विवसनः—

देहोऽयं मलभाण्डमस्य शुचिता का नाम तीर्थोदकै-
र्देही निर्मल एव तिष्ठति घटस्यान्तः प्रदीपो यथा।

चित्तशुद्धि द्वारा उपनिषद् द्वारा कहा जाता है। इसी अभिप्रायको नहीं जाननेके कारण बौद्धोंने शापवश निगमपथका परित्याग किया जो उनके नरकका कारण हुआ।

(लोकायतिकके सिद्धान्त जैन सिद्धान्तकी ओर देखता है)

विवसनसिद्धान्त—(ताली बजाकर हसता हुआ) अहा, इसका कथन अपनी ही उक्तिसे व्याहत है।

प्रत्यक्षातिरिक्त वस्तुको अप्रमाण मानते हुए भी इसने अनुमान प्रमाण स्वीकार किया है और उसी अनुमानके बलपर धर्म तथा स्वर्गादि भोग्य वस्तुओंकी सत्ता स्वीकार करता है। यह एक ओर तो कहता है कि 'यत् सत् तत् क्षणिकम्'। इसका यह कथन अपनी ही उक्तिसे व्याहत हो जाता है। बौद्ध इसी प्रकारके अपने मतसे विजयकी इच्छा रखता है ॥ २१ ॥

सुगत—(असूयासे) अजी नग्नक्षपणकसिद्धान्त, अलग ही रहो, पहले नहा धोकर पवित्र बन लो, फिर अपना मत बतानेके लिये मेरे पास आओ।

विवसन—यह देह तो मलका पात्र है, गङ्गादि तीर्थोंके जलसे उसकी पवित्रता क्या होगी? रहा देही, वह सदा पवित्र ही है जैसे घटके भीतर रखा

देहो नान्तरितस्तु संसरति स स्वीयैर्हृतः कर्मभिः
प्रारब्धानुगुणं प्रपद्य च वपुर्भुङ्क्ते सुखं वाऽसुखम् ॥ २२ ॥

बुद्धः—अये, किमर्थमावरणं न क्रियते ।

विवसनः—

जीवस्यावरणं देहो देहस्यावरणं कुतः ।
यदि तस्यापि कार्यं स्यात्तस्यापीत्यनवस्थितिः ॥ २३ ॥

बुद्धः—अये, कथमेतादृशस्य जीवस्य मोक्षः ।

विवसनः—शृणु तावत् ।

मयूरपिच्छधारणं मलं च केशलुञ्चनं
महर्षिपूजनानि नग्नता मनस्यनीर्ष्यता ।
अहिंसनं क्षमा दया सदेति मोक्षसाधनैः
शरीरकारि कर्म तत्सवासनं विनश्यति ॥ २४ ॥

तथा सति ।

उच्चैर्भूरिमहो निरन्तरमहालोकान्तराणामुप-
र्यास्ते मोक्षशिला नितान्तमहिता ज्योतिर्मयी शाश्वती ।

गया प्रदीप । देहीके लिये देह व्यवधायक नहीं होता है, अपने उपार्जित कर्मोंके अनुसार शरीर पाकर वह सुख अथवा दुःखका भोग किया करता है ॥ २२ ॥

बुद्ध—अजी, तुम कपड़ा क्यों नहीं पहनते हो ?

विवसन—जीवका आवरण देह है फिर देहका आवरण क्या हो ? यदि आवरणका भी आवरण किया जाय तो अनवस्था होगी ॥ २३ ॥

बुद्ध—अजी, तुम्हारे इस तरहके जीवका मोक्ष कैसे होता है ?

विवसन—सुनिये—

मयूरपिच्छ धारण, मल, केशलुञ्चन, महर्षिपूजन, नग्नता, मनसे ईर्ष्याका परित्याग, अहिंसा, क्षमा, तथा दया आदि मोक्षसाधन कर्मोंसे शरीरोत्पादक कर्मोंका वासनासहित नाश हो जाता है ॥ २४ ॥

वासनासहित कर्मोंके नाश हो जानेपर—

निरन्तरवर्त्तमान महालोकोंके ऊपर अतितेजस्वी एक अतिप्रशंसित तथा शाश्वती मोक्षशिला है, जीव बिजलीकी तरह उसपर वेगसे गिरता है शरीरके

तामभ्येति झटित्यसौ तडिदिवोद्गच्छन्वपुर्ध्वंसना-
त्तत्रायं परमात्मनाथ घटते मोक्षोऽयमर्हन्मतः ॥ २५ ॥

बुद्धः—अये, कुतस्तवायमध्यवसायः ।

विवसनः—शब्देनानुमानेन च ।

बुद्धः—किमयमेव सिद्धपरमेष्ठिपदाभिधेयः परमात्मा खव मते जगत्कर्ता ।

विवसनः—नहि नहि । कर्मभिरेव जगन्ति जायन्ते विनश्यन्ति च ।

वस्तुविचारः—अस्यापि स्वप्रकाशसंविद्रूपदेहातिरिक्तात्माभ्युपगमेन सिद्धपरमेष्ठिनामकपरमात्माभ्युपगमेन च जीवपराभेदरूपमद्वैतमेवाभिमतमिति रमणीयमेव मतम् । परं स्वेतदभिमताहिंसाक्षमादयादिपारम्यानुसंधानतो यज्ञादिकममुष्यानभिमतमिति भ्रान्त्या शापवशेन निगमपथपरित्क्षेपस्तु पतनाय जायते । अतः 'स्यादस्ति' इत्यादिसप्तभङ्गीप्रतिपादनं जगदनिर्वचनीयत्वतात्पर्यकम् । देहशौचाद्यभावप्रतिपादनं चात्मनः स्वतो निर्मलत्वाभिप्रायकम् ।

नष्ट हो जानेसे वह वहीं परमात्मामें लीन हो जाता है । अर्हन् भगवान् ने यही मोक्ष स्वीकार किया है ॥ २५ ॥

बुद्ध—अजी, तुमको यह कैसे मालूम हुआ है ।

विवसन—शब्दप्रमाण तथा अनुमानसे ।

बुद्ध—क्या यही सिद्धपरमेष्ठीपदसे प्रतिपाद्य परमात्मा जगत्का कर्त्ता है तुम्हारे मत में ?

विवसन—नहीं नहीं । कर्मसे ही जगत्की उत्पत्ति तथा विनाश होता है ।

वस्तुविचार—यह विवसन सिद्धान्त भी तो स्वप्रकाश ज्ञानस्वरूप आत्मा मानता है, सिद्धपरमेष्ठी नामक परमात्मा भी मानता है, जीवात्मा तथा परात्मामें अभेद भी मानता है, फलतः इसका मत तो अद्वैतमत ही हुआ । यह तो बड़ा अच्छा मत है । इसके मतमें अहिंसा दया क्षमा आदि पर अधिक जोर दिया गया है जिससे यज्ञादि अभिमत नहीं रह गया, इस प्रकार इसने शापवश निगमपथका परित्याग कर दिया है जो इसके लिये नरकका कारण होगा । 'स्यादस्ति' इत्यादि सप्तभङ्गीन्यायसे यह भी जगत्की अनिर्वाच्यता ही

अविद्या—(जनान्तिकम् ।) सखि विपर्यवासने, देवोऽयम् 'अवैदिकानि' इति खलु मतान्यमूनि न संमन्यते । वैदिकेषु सोमसिद्धान्तादिषु वा किंचिदभिनिवेश्य यदि सगुणविद्याभिरभिरमेत, तावतापि ननु भवेदस्माकमाश्वासः । तेजस्तिमिरवदद्वैतविद्या किलात्यन्तिकविरोधिनी दृश्यते ।

राजा—(पुरो विलोक्य ।) क एष

भस्मलेपशरदभ्रविभ्रमं बिभ्रदुग्रवपुरद्भुतभ्रमः ।
पुण्डरीकधवलाननभ्रमच्चण्डकोकनदचारुलोचनः ॥ २६ ॥

चित्तशर्मा—अयमेव सोमसिद्धान्तो नाम ।

सोमसिद्धान्तः—(सस्मितम् ।) हन्त, प्रमाणपथातिवर्तिन एवानेन केनाऽपि केऽपि पदार्थाः प्रतायन्ते । अपि च ।

तदागमास्तद्गिर एव वर्ततामतोऽपवर्गोऽस्य यथाकथंचन ।

प्रमाणित करता है, देहकी अशुचिताका प्रतिपादन तो आत्माके स्वतः निर्मलताको बोधित करनेके अभिप्रायसे है ।

अविद्या—(औरोंसे छिपाकर) सखि विपर्यवासने, यह जीवराज इन अवैदिक मतों पर विश्वास नहीं करते हैं । यदि किसी वैदिक सोमसिद्धान्तादिमें थोड़ा बहुत विश्वास कराया जाय और वह उन सगुणविद्याओंमें कुछ अनुराग दिखलाये, तो हम लोगोंको कुछ आश्वासन मिले । यह अद्वैतविद्या तो तेजके साथ प्रकाशकी तरह हमारी अत्यन्त विरोधिनी है ।

राजा—(आगे देखकर) यह कौन है ?

इसका शरीर भस्म लेपनसे शरद् ऋतुके आकाशकी तरह लगता है, इसकी चाल विलक्षण है, इसके कमलोपम मुखमण्डलमें रक्तकमल सदृश रमणीय नयन घूम रहे हैं ॥ २६ ॥

चित्तशर्मा—यही हैं सोमसिद्धान्त ।

सोमसिद्धान्त—(मुस्कुराकर) हाय, यह प्रमाणसे दूर ही कुछ पदार्थोंका प्रतिपादन कर रहा है, और—

उसकी वाणी ही उसके आगम हैं, भले ही उससे उसका मोक्ष बने, परन्तु

यदैहिकं सौख्यमिदं किमीर्यतामतो भृशं गर्हितमार्हतं मतम् ॥ २७ ॥

(किञ्चिदन्तर्विमृशन् ।) अहो बत मामकमतस्य रमणीयता ।

ज्योत्स्नाधौतदिशा निशा परिकरैर्विश्वोत्तरं चत्वरं
मद्यं हृद्यरसं मदालसवधूवक्त्राम्बुजामोदितम् ।
आस्वाद्यं तरसं घृतादिसरसं कान्ताकरान्तार्पितं
स्वर्गं प्राप्य समग्रमत्र परतः प्राप्योऽपवर्गोऽपि यत् ॥ २८ ॥

विवसनः—(सभयोद्वेगम् , स्वगतम् ।) हन्त, कथमयमन्तक इव चिन्ताविषयोऽपि संतापयति । (प्रकाशम् ।) अरे सोमसिद्धान्त, कस्तव मते धर्मः, कथमिव स्वर्गः, क इव चापवर्गः ।

सोमसिद्धान्तः—अरे, श्रूयताम् ।

'प्रत्यग्रप्रहृतक्षरद्भलभलद्रक्तप्रवाहक्षणो
नृत्यन्मर्त्यनवोपहारनिवहैर्मद्यैश्च संप्रीणितः ।
सार्वज्ञ्यादिसमग्रदिव्यगुणसंपत्त्या महाभैरवः
सारूप्यं निजमातनोति बलभिद्योग्यं च भाग्यं दिशन् ॥२९॥

ऐहिक सुखके संबन्धमें क्या कहा जाय ? इस विवसन-सिद्धान्तमें कुछ सार नहीं है ॥ २७ ॥

(थोड़ा सोचकर) अहा, हमारा मत कितना रमणीय है ?

चन्द्रिकासे धुली हुई धवल निशा, सारे सामानसे सजा आँगन, मदालस ललना द्वारा सुखकमलमें रखकर सुगन्ध बनाया गया दिव्य मद्य, घीसे तर तथा कान्ताके हाथसे अर्पित मांसरूप खाद्य, इस प्रकारसे सारा स्वर्ग यहीं मिल जाता है और ऊपरसे अपवर्ग भी प्राप्य है ॥ २८ ॥

विवसन—(भय तथा उद्वेगके साथ, स्वगत) हाय, जैसे यमराज चिन्ता करने परभी सन्तप्त करता है यहभी उसी तरह सन्तप्त करता है । (प्रकट) अरे सोमसिद्धान्त, तुम्हारे मतमें धर्म क्या है, स्वर्ग कैसा है और अपवर्ग ?

सोमसिद्धान्त—अरे सुन,

तत्काल काटे गये अतएव झरझर शोणित-प्रवाही तथा नाचते हुए मानव-की बलि तथा मद्यनैवेद्यसे प्रसन्न महाभैरव सर्वज्ञता-प्रभृति गुणोंसे सारूप्य प्रदान करके इन्द्रके सदृश वैभवका पात्र बना देते हैं ॥ २९ ॥

सदेहकैवल्यमिदमेव नः परमपुरुषार्थः' इति। स्वर्गस्त्वयमेव, यदत्र समभिलषितसर्वार्थसिद्धिभिरनियन्त्रिताः कामोपभोगा इति।

वस्तुविचारः—अये चित्तशर्मन्, एवमेव भेदवादिनः सर्वेऽप्यस्मदीयसगुणोपासनफलीभूतेषु तत्तदुपासनतरतमतानुगुण्येन सालोक्यसामीप्यसारूप्यरूपेषु पदेषु रममाणास्तदेव परममसृतं मन्यन्ते। तथाहि—जीवाणुत्वनित्यत्ववादिनो रामानुजीयाः 'चिराद् दुष्कर्मकवलितज्ञानानन्दस्वभावतया संसरन्तो जीवा दुःखानुभवनिर्विण्णा भक्त्या प्रपत्त्या वा हरिमाराध्य तत्प्रसादेन विगलत्कर्मबन्धा भगवत्सारूप्यमधिगम्य स्वकीयधर्मज्ञानविकासेन भगवदानन्दमनुभवन्ति' इत्यभिदधते। तथैव प्रत्यक्षादित्रयप्रामाण्यजगत्सत्यत्ववादिना माध्वा अपि 'अविद्यासंकटविघटितज्ञानानन्दस्वभावास्तत्त्वता भगवद्भिन्ना जीवाः संसरणदुःखानुभवनिर्विण्णाः सकलाम्नायसमधिगम्यं भगवन्तं भक्त्या समाराध्य तत्प्रसादतः श्रवणमनना-

---

सदेह कैवल्यही हम लोगोंके मतमें परम पुरुषार्थ है। स्वर्गतो यही है कि समस्त अभीष्ट सिद्धियोंके साथ बेरोकटोक कामोपभोग किया जाय।

वस्तुविचार—अजी चित्तशर्मा, सभी भेदवादी हमारी सगुणोपासनाओंके फलमें मिलनेवाले सालोक्य, सामीप्य और सारूप्य आदिमें अपनी अपनी उपासनाओंके मात्रातारतम्यके अनुसार आनन्द भोग करते तथा इसी स्थितिको परम तत्त्व मानते हैं। जैसे जीवको अणुता स्वीकार करनेवाले रामानुजी लोग कहते हैं कि चिरकालसे दुष्कर्मोंके कारण आवृत हो गयी है ज्ञानस्वरूपता तथा आनन्दमयता जिनकी ऐसे जीवगण संसरण करते हुए दुःखानुभवोंसे उदासीन तथा खिन्न होकर भक्ति एवं शरणागतिके द्वारा जब भगवान्‌की आराधना करते हैं तब उनका कर्म बन्धन छूट जाता है और तब वे भगवत्स्वरूप हो जाते तथा अपने धर्म और ज्ञानके विकाससे भगवान्‌की आनन्दमयताका अनुभव करते हैं। इसी प्रकार प्रत्यक्ष आदि तीन प्रमाणों पर आस्था रखनेवाले तथा जगत्‌की सत्यता स्वीकार करनेवाले माध्वगण भी मानते हैं कि अविद्यावश जीवोंकी ज्ञानानन्दस्वरूपता विघटित हो जाती है, जीव वस्तुतः भगवान्‌से भिन्न है, वह जब संसरणदुःखसे खिन्न हो उठता है तब सकल वेदप्रतिपाद्य भगवान्‌को अपनी भक्तिसे आराधित करके उन्हींकी कृपासे श्रवण-मनन आदि

दिविगलदविद्यावरणतया विशुद्धस्वभावा भगवच्छरीरं भूतादिवदाविश्य नीरक्षीरवदवस्थिताः स्वस्वाधिकारतरतमतानुगुण्येन तदीयैरेवावयवैः स्वस्वजात्यनुगुणान्भोगान्भुञ्जते, स एव च मोक्षः' इत्याचक्षते।

(सोमसिद्धान्तः किमपि किमप्यालपन्परवश्यमभिनयति।)

राजा—(पुरोऽवलोक्य।) अये, किमेतावदस्य वैक्लवं कापालिकस्य।

चित्तशर्मा—अयं किल महाभैरवपूजावसाने निपीय मद्यमतिमात्रमुन्मस्तकितमदावेशविवशो विलुठति।

सोमसिद्धान्तः—(सरभसमुत्थाय विकटताण्डवं नाटयन्परिक्रामन्।) अहो प्रमादः प्रमादः। मदीयः किल परमपुरुषार्थः केनापि दुरात्मना चोरितः। किमितो विधातव्यम्। (पार्श्वतोऽवलोक्य।)

प्रत्यङ्गभासिपरिपाण्डुघनोर्ध्वपुण्ड्रः
पद्माक्षजालतुलसीमणिहारकण्ठः।
भाषास्तुतिं परिपठन्निह पाञ्चरात्र-
सिद्धान्त एष शुचिवेषभृदभ्युपैति॥ ३०॥

द्वारा आविद्यक आवरणसे छूटता तथा विशुद्ध स्वभाव हो जाता है, वह भूतादिकी तरह भगवान् पर आविष्ट होकर नीरक्षीरकी तरह भगवान्में मिलजाता तथा अपने-अपने अधिकारके अनुसार भगवान्के ही अवयवों द्वारा अपनी जातिके योग्य भोगोंको पाता है, यही मोक्ष है।

(सोमसिद्धान्त कुछ कुछ बड़बड़ाता हुआ परवशसा हो जाता है)

राजा—(आगेकी ओर देखकर) अजी, इस कापालिकको यह क्या हो गया?

चित्तशर्मा—यह महाभैरवकी पूजाके अन्तमें बहुत मद्य पीकर उसी मदके प्रभावसे विवश होकर लोट रहा है।

सोमसिद्धान्त—(वेगसे उठकर विकट नृत्य करता हुआ आगे बढ़कर) अहा, बड़ी गलती हुई, मेरे परम पुरुषार्थको किसी दुष्टने चुरा लिया। अब क्या किया जाय? (बगलकी ओर देखकर)

प्रत्येक अङ्गमें श्वेत ऊर्ध्वपुण्ड्र तथा गलेमें पद्माक्ष तथा तुलसीकी माला धारण करनेवाला यह पवित्रवेषधारी पाञ्चरात्र-सिद्धान्त भाषास्तुतिका पाठ करता हुआ इधर ही आ रहा है॥ ३०॥

(सरभसमुरस्कृत्य तान्त्रिकं पाणौ गृह्णन् ।) कथमरे, मदपवर्गमचूचुरस्त्वम् ।

तान्त्रिकः—(श्रवसी कर्णाभ्यां पिधाय ।) रामानुज रामानुज, किमहं चोरयामि ।

श्रीवैष्णवः—सोमसिद्धान्त, यदि प्रमाणतो महाजनानुमतमेव चौर्यमवसितम्, तर्हि किं क्रियेत तत्प्रतिश्रूयताम् । (सर्वान् प्रति ।) अहो भवन्तः सर्वे साक्षिणः शृण्वन्तु ।

तान्त्रिकः—यदि तथा स्यात्तर्हि तव दासो भवेयम् ।

सोमसिद्धान्तः—तदिदं भवन्तो विमृशन्तु ।

बुद्धादयः—अरे, कथ्यतामपवर्गस्त्वदीयः ।

तान्त्रिकः—(कर्णे ।) एवमेव ।

बुद्धादयः—(श्रुत्वा विहस्य ।) अये तान्त्रिक, वञ्चितोऽसि पाषण्डकापालिकदास्येन । यतः ।

सारूप्यरूपं सविशेषमेतत्सदेहकैवल्यमिदं मदीयम् ।

(वेगसे समीप जाकर और तान्त्रिकका हाथ पकड़ कर) अरे, क्या तुमने हमारा अपवर्ग चुराया है ।

तान्त्रिक—(कान मूंदकर) रामानुज, रामानुज, क्या मैं चोरी करता हूं ? ।

श्रीवैष्णव—सोमसिद्धान्त, यदि वस्तुतः इसने महाजन-सम्मत चौर्य ही किया है तो क्या किया जाय, यह बताओ । (सभी लोगोंसे) आप सभी सुनिये तथा साक्षी रहिये ।

तान्त्रिक—यदि यह सिद्ध हो जाय कि मैंने चोरीकी है तो मैं तुम्हारा दास हो जाऊंगा ।

सोमसिद्धान्त—आप लोग इसपर विचार कीजिये ।

बुद्ध आदि—अरे, तुम यहतो बताओ कि तुम्हारा अपवर्ग क्या है ?

तान्त्रिक—(कानमें) यही है ।

बुद्ध आदि—(सुनकर, हंसकर) अजी तान्त्रिक, इस पाषण्ड-कापालिककी दासता करनी पड़ेगी, तुम हार गये । क्योंकि—इसका सविशेष सारूप्य मोक्ष

एकीभवन्त्यत्र भवन्त एव स चेत्स राजात्र कलिः प्रमाणम् ॥ ३१ ॥

(ततः प्रविशति कलिः।)

कलिः—

बालोऽप्ययं पटुरिति प्रतिबुध्य तत्त्व-
माहूय मामकृतकैः प्रणयैरविद्या।
मह्यं वराय सदृशीं कुहनां स्वकीयां
दत्त्वातनिष्ट सुमहत्किल कौतुकं मे ॥ ३२ ॥

तदस्याः किमिव मया न प्रियमाचरणीयम्। (इति सकौतुकं परिक्रामति।)

सोमसिद्धान्तः—राजन्कले, विजयी भव। प्रतिपद्यतामत्र किंचिदिव दण्डनीतिः।

कलिः—तत्किं नाम।

सोमसिद्धान्तः—तान्त्रिकोऽयं चोरितमदीयपुरुषार्थो मध्यस्थैरध्यवसितप्रमोषश्च प्रतिश्रुतं तु नानुतिष्ठति।

है और आप सदेह कैवल्य मानते हैं, इसमें आप सभी एकसे हैं, इसके साक्षी आपके राजा कलि हैं ॥ ३१ ॥

(कलिका प्रवेश)

कलि—बालक होकर भी यह पटु है, इस तत्त्वको समझकर अविद्याने मुझे निश्छल प्रेमसे अपने पास बुलाया, और मुझे वर बनाकर अपनी पुत्री कुहनासे मेरा विवाह कर दिया, उसके इन आचरणोंसे मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ ॥३२॥

अतः अविद्याका कौन सा ऐसा प्रिय कार्य है जो मुझे नहीं करना है।

सोमसिद्धान्त—राजन् कले, आपकी जय हो। आप इसका न्याय करें।

कलि—क्या बात है?

सोमसिद्धान्त—इस तान्त्रिकने मेरा अपवर्ग चुरा लिया है, मध्यस्थोंने तयकर दिया है कि इसने चोरीकी है, फिरभी यह वादा पूरा नहीं कर रहा है ॥

कलिः—(जनान्तिकम् ।) अये, तान्त्रिकोऽयं वैदिकः । श्रूयते । तत्कथमसावभिभावनीयः ।

सोमसिद्धान्तः—यद्येवं मन्यसे, तर्हि श्रूयताम्—'वयं यथा भैरवागमानुरोधेन वेदप्रामाण्यवादिनो वेदविरुद्धमधुमांसादिनिषेवणाभिर्वेदबाह्यतया पाषण्डेषु गण्यामहे, तद्वदिमेऽपि पाञ्चरात्रागमानुरोधेन वेदप्रामाण्यवादिनो वेदविरुद्धैराचारैः पाषण्डा एव । किं च द्विविधा इमे तान्त्रिकाः, उदीच्याः केचित् , अवाच्याः परे, इति । तत्र तावदवाच्या नाम पाषण्डाः, ते पशव एव । यतः ।

अप्राकृतानकृतकानपहाय वेदां-
स्तत्प्रातिभट्यविनिवेशितनीचभाषाः ।
कर्म त्यजन्ति पिहितं विहितेतराणि
निर्माल्यपैतृकमुखानि वितन्वते च ॥ ३३ ॥

हन्त बुद्धेरुपरिप्लवता ।

आचार्यहस्तादधिगम्य चीटीं निबध्य कण्ठे कुणपस्य दग्ध्वा ।

कलि—(छिपाकर) अजी, यह तान्त्रिकभी वैदिक है, इसे कैसे सताया जाय ।

सोमसिद्धान्त—यदि आप ऐसा सोचते हैं तो सुनिये—जैसे हम लोग भैरवागमके अनुसार ही वेदका प्रामाण्य मानते हुए भी वेद-विरुद्ध मधु-मांसादिके सेवनसे वेदविरोधी पाखण्ड गिनेजाते हैं, उसी तरह ये लोगभी पाञ्चरात्रके अनुसार वेदका प्रामाण्य मानते हैं परन्तु वेदविरुद्ध आचारसे पाखण्ड ही हैं । और ये तान्त्रिक दो तरहके हैं—उदीच्य तथा अवाच्य । उनमें अवाच्य पाखण्ड तो निरे पशु ही हैं । क्योंकि—

ये लोग अप्राकृत तथा नित्य वेदोंको छोड़कर उसकी जगहपर नीच भाषाको बैठाते हैं, विहित कर्मका त्याग करते हैं निर्माल्य पैतृक आदि अविहित कर्म किया करते हैं ॥ ३३ ॥

हाय, इनकी बुद्धि भ्रष्ट हो गई है ।

ये अभागे आचार्यके हाथसे चीटी लेकर मुर्देके गलेमें बांध देते हैं और उसे जला देते हैं, और फिर उन्हें विश्वास हो जाता है कि इस चीटीवाले

वैकुण्ठवीथ्यां गृहनिश्रयेण नन्दन्ति मूढाः पशवो न किं ते ॥ ३४ ॥

कलिः—(स्वगतम् ।) तदहमप्येवमेनं प्रतारयामि । (प्रकाशम् ।) अये, प्रतिश्रुतम् पाषण्डदास्यमनुतिष्ठ । परतो वैकुण्ठे शमलभूमिपरिसरे तव निवेशनाय चीटिकामहं प्रहिणुयाम् ।

तान्त्रिकः—(सभयम्) राजन्, यद्रोचते भवतस्तदाचरामि; (इति श्रद्धया बद्धांजलिस्तिष्ठति ।)

कलिः—(पुरो विलोक्य ।)

उत्तुङ्गद्विपकुम्भकर्कशकुचाभोगा रणन्मेखल-
श्रोणीमण्डलभारमन्थरगतिः कंदर्पदर्पोद्धता ।
उन्मीलन्मदिराविकारविवशव्यालोलतारेक्षणा
स्निग्धालोकनमोहिनी विलसति श्रद्धा पुरस्तामसी ॥३५॥

(विचिन्त्य ।) महाप्रभावा ह्येषा

शास्त्रं किन्विदमप्रमाणमिह किं न प्रीयते देवता
सा प्रीता यदि किं कुहापि भुवने दुष्प्रापमेकं भवेत् ।

प्रेतको स्वर्गमें स्थान मिल गया, इसी से वे प्रसन्न हो उठते हैं, वस्तुतः वह पशु ही हैं ॥ ३४ ॥

कलि—(स्वगत) तो मैं भी इसको इस प्रकारसे ठगता हूँ । (प्रकट) अजी, तुम प्रतिज्ञात रूपमें इसका दास्य स्वीकार करो, बादमें वैकुण्टमें शमल-भूमिके पास तुमको स्थान मिल जाय, मैं इसके लिये चीठी भेज दूंगा ।

तान्त्रिक—(भयसे) राजन्, आपकी जैसी इच्छा, वही करूँगा ।

(श्रद्धासे हाथ जोड़ता है)

कलि—(आगेकी ओर देखकर) उन्नत गजकुम्भके समान स्तनोंसे युक्त, बजती हुई रशनासे मन्थरगमना, कामदर्पसे उद्धत, प्रकट मदविकारसे विवश लाल घूमती आंखोंवाली तथा स्निग्धदृष्टि मोहित करनेवाली यह तामसी श्रद्धा आगे खड़ी है ॥ ३५ ॥

(सोचकर) यह तामसी श्रद्धा महाप्रभावशालिनी है ।

क्या यह सारा शास्त्र अप्रमाण है ? क्या देवता प्रसन्न नहीं होते हैं ? क्या देवताके प्रसन्न हो जानेपर इस विश्वमें कुछ अप्राप्य रह जाता है । इस जीवनमें

भोगानत्र बहून्प्रदाय परतः कैवल्यलक्ष्मीप्रदे
सद्यःसिद्धिपदे जनः कुलपथे कस्मान्न संनह्यति ॥ ३६ ॥

इत्यादिनानाविधसाधनबाधनैरापामरपण्डितमखिलमपि जनमिह कुलपथे महोत्सव इव निधिडयन्ती दक्षिणपथमप्रचारेण वितथमिव कृतवती। अयि श्रद्धे, परिगृह्यतामयं तान्त्रिकः।

श्रद्धा—तथा। (इति गाढमालिङ्गति।)

तान्त्रिकः—(सुखपारवश्यमभिनयन्।)

स्वर्गो दिवः किं गलितोऽयमुर्व्यामुर्वी च किं स्वर्गदशां प्रपन्ना।
सत्त्वातिरेकक्षरदात्मतत्त्वं विश्वं किमानन्दमयं विधत्ते ॥ ३७ ॥

इति श्रद्धापरवशो दासोऽहम्। (इति साष्टाङ्गं प्रणमति।)

राजा—स्थाने सांप्रतमस्य न्याय्यतया दासत्वम्। अन्यथा ब्राह्मणो दास इति विप्रतिषिद्धमेवैतत्।

कलिः—दिष्ट्यायमप्रयासतः प्रामाणिको दासलाभः।

नाना भोग प्रदान करके जन्मान्तरमें मोक्ष-लक्ष्मी प्रदान करनेवाले इस सद्यः सिद्धिप्रद कुलपथमें लोग क्यों नहीं तत्पर होते हैं ॥ ३६ ॥

इस प्रकारसे नानाविध साधन-बाधन दिखाकर मूर्खसे लेकर पण्डित तकको इस कुलपथमें—उत्सवमें जैसे लोग सम्मिलित होते हैं—उसी तरह सम्मिलित करानेवाली यह तामसी श्रद्धा दक्षिणपथको प्रचारशून्य सा बनाकर विफल कर चुकी है। अरी श्रद्धे, इस तान्त्रिकको अपनाओ।

श्रद्धा—जो आदेश। (तान्त्रिकका गाढालिङ्गन करती है)

तान्त्रिक—(सुखपरवशताका अभिनय करता हुआ) क्या आकाशसे स्वर्ग पृथ्वीपर उतर आया है, या पृथ्वी ही स्वर्गकी स्थितिमें आ गई है, जो सत्त्वगुणकी प्रचुरतासे आत्मतत्त्वको पिघलाकर इस विश्वको आनन्दमय बना रही है ॥ ३७ ॥

मैं अब श्रद्धापरवश दास हूँ। (साष्टाङ्ग प्रणाम करता है)

राजा—इस प्रकारसे इसका दास होना ठीक है, नहीं तो ब्राह्मण और दास यह बात विरुद्ध लगती थी।

कलि—भाग्यसे बिना प्रयासके ही यह प्रामाणिक दासलाभ हुआ।

सोमसिद्धान्तः—राजन्, एवमेव लाभान्तरमपि नः संनमति । (पुरतो निर्दिश्य ।)

तिर्यंगतिर्यग्विदलितपरिणतप्रथुकारवल्लिभद्राभिः ।
मुद्राभिर्जटिलतनुर्दग्धो माध्वोऽयमापतति ॥ ३८ ॥

माध्वसिद्धान्तः—अद्य खलु लवङ्गिकायां घृतशौचप्रायश्चित्ताङ्गमभिनवतीर्थस्वामिपादैः श्रीवैष्णवसमाराधनं क्रियत इति निशम्य श्रीमुष्णतोऽहमागच्छामि । (ऊर्ध्वमवलोक्य ।) तदितो यावत्समयानतिपातमाचार्यस्वामिपादवन्दनमाचरणीयम् । (इति ससंभ्रमं परिक्रामति ।)

कापालिकः—(कलिं प्रति ।) राजन्, य एष

अंसे बिभ्रद्दभ्रदुभरभरां गोणीं मधुष्ठीलवत्
क्षुद्रम्लेच्छमुखालुसंकुलकरः प्रारब्धवायुस्तुतिः ।
अङ्कूरानिव पाप्मनामविरलानङ्गे मपीलाञ्छना-
नाबिभ्रच्चकितो बलीमुख इवोदप्लुतं हिण्डते ॥ ३९ ॥

सोमसिद्धान्त—राजन्, इसी तरह दूसरे लाभ भी हमको होंगे ।

(आगेकी ओर दिखाकर)

सीधा तथा तिरछा कटे गये मोटे एवं पके करेलेकी तरह दीखनेवाली मुद्राओंसे व्याप्त शरीर यह जला हुआ माध्व आ रहा है ॥ ३८ ॥

माध्वसिद्धान्त—आज लवङ्गिकामें अभिनव तीर्थपादजी घृतशौचप्रायश्चित्त के अङ्गभूत श्रीवैष्णव-समाराधनका अनुष्ठान करने जा रहे हैं, यह समाचार सुनकर मैं श्रीमुष्णसे चला आ रहा हूँ । (ऊपर देखकर) जबतक समय नहीं बीत जाता है, तभी तक आचार्य स्वामीजीके चरणोंमें प्रणाम निवेदन करलूं ।

(घबड़ाकर आगे जाता है)

कापालिक—(कलिके प्रति) राजन्, यह जो कन्धेपर बहुत भारी कमण्डल लटकाये, दुर्मुख, क्षुद्र म्लेच्छकी तरह मुखपर हाथ फेरता हुआ, वायु देवकी स्तुति करता हुआ, तथा पापके अंकुरकी तरह प्रतीत होनेवाले इन घने मसीचिह्नोंको धारण करनेवाला बन्दरकी तरह कूदता भागा जा रहा है ॥ ३९ ॥

अयं तावद्दुराचारैस्ततोऽपि वेदबाह्यः ।

कलिः—कथमिव ।

कापालिकः—

उपवासदिनभ्रान्त्यामप्येष किल दुर्मतिः ।
न जुहोति न दत्ते वा पितृश्राद्धं च मुञ्चति ॥ ४० ॥

किंच ।

स्नानं सांध्यविधिर्जपोऽथ हवनं स्वाध्यायमाध्याह्निके
देवाभ्यर्चनमित्यमून्यविकलं कृत्यानि निर्वर्तयन् ।
सद्यः स्नातरजस्वलाकृतपतिश्राद्धे मितद्वादशी-
काष्ठाभ्यन्तर एव पारणमयं कृत्वा चिरान्निर्गतः ॥ ४१ ॥

कलिः—हन्त, समग्रो वैदिकाचारोऽस्य पाषण्डस्य माध्वसिद्धान्तस्य प्रशिष्यतामपि नार्हति । अयं मूढस्तिष्ठतु वराकः । किमनेन ।

जीवराजः—सखे चित्तशर्मन् , अमीषां मुखान्यवलोकनीयानि । तदितो वामेतरेणैव पथा मृगयाविनोदिनो वेदारण्यमधिगच्छामः ।

यह तो दुराचारोंके कारण उससे भी अधिक वेदबाह्य है ।

कलि—कैसे ?

कापालिक—भ्रमसे भी यदि इसे समझमें आजाय कि आज उपवासका दिन है तो यह बेवकूफ न होम करेगा, न दान देगा, और पितृश्राद्ध भी छोड़ देगा ॥ ४० ॥

और यह स्नान, सायं-सन्ध्या, होम, स्वाध्याय, मध्याह्न-कृत्य, देवाभ्यर्चन, इत्यादि कर्त्तव्योंका अविकल भावसे सम्पादन करता है, सद्यःस्नाता रजस्वला स्त्री द्वारा किये गये पतिश्राद्धमें द्वादशी तिथिके कुछ दण्डोंके भीतर ही पारणा करके यह निकला है ॥ ४१ ॥

कलि—हाय, इस पाखण्डका समग्र वैदिकाचार माध्व-सिद्धान्तके प्रशिष्य होनेकी भी क्षमता नहीं धारण करता है । यह बेवकूफ रहे, मुझे इससे क्या लेना-देना है ।

जीवराज—सखे चित्तशर्मा, इनके मुख देखने पड़ रहे हैं, अतः दक्षिण-मार्गसे शिकारके योग्य वेदारण्य चला जाय ।

पाषण्डः—(अपवार्य । परस्परमुखान्यवलोक्य । सनिर्वेदम् ।) मतान्तरे बलवदभिनिवेशितोऽयमधृष्योऽस्माभिरितो यथागतमपसरामः ।

अविद्या—(जनान्तिकम्) अयि विषयवासने, दृष्टानि खलु वस्तुविचारदुश्चेष्टितानि पाषण्डेषु । एवमग्रेऽपि शमादिभिरुपनिपत्य यदि किल राजायमनुरुध्येत, तर्हि सुमहत्किल संकटमापद्यत । तदितो वयमग्रत एव गत्वासूयया संनिधाप्यमानैर्मोहादिभिरस्मदीयैः शमादिप्रचारोपरोधाय निपुणतरं किमपि संविधातव्यम् ।

विषयवासना—साधु चिन्तितं भर्ट्रन्या ।

अविद्या—(प्रकाशम् ।) यावदमी वयमृजुनैव पथा किंचिदग्रतो गच्छामः ।

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे ।)

इति चतुर्थोऽङ्कः ।

पाखण्ड—(छिपाकर, एक दूसरेका मुख देखते हुए, खेदके साथ) मतान्तरमें इसका बलवान् आग्रह है, हमलोग इसे डिगा नहीं सकते हैं, अतः यहाँसे निकल चलना चाहिये ।

अविद्या—(छिपाकर) अरी विषयवासने, पाखण्डोंपर किये गये वस्तुविचारके दुर्व्यवहारको देखा तुमने ? इसी तरह आगेभी यदि शम आदि एक साथ आकर राजाको बाध्य करें, तो बड़ी आफत हो जायगी । अतः हम लोग पहले ही चलकर असूया द्वारा भेजे गये हमारे विश्वस्त मोहादिके द्वारा शम आदिके प्रचारको रोकनेके लिये कुछ अच्छा उपाय करें ।

विषयवासना—स्वामिनीने ठीक सोचा है ।

अविद्या—(प्रकट) तब तक हम लोग इस सीधे रास्तेही कुछ दूर आगे तक चलें ।

(सभीका प्रस्थान)

(चतुर्थ अङ्क समाप्त)

पञ्चमोऽङ्कः

अविद्या—हन्त, तदेवमतिमहति संकटे निपत्य करणीयताविमूढामिह न कोऽपि मामुपसरति ।

(नेपथ्ये ।)

रतिकङ्कणपदमुद्रितरमणीयशिरोधरालिप्तैः ।
घुसृणद्रवहरिणमदैर्द्युतिमात्तमुखः स्मरो जयति ॥ १ ॥

अविद्या—(श्रुत्वा । सहर्षम् ।) अये, कामः संप्राप्तः ।

(ततः प्रविशति कामः ।)

कामः—

वामाङ्के वदने च वक्षसि चिरादेणेक्षणालाञ्छना
बद्धा नाम पताकिकास्त्रिनयनब्रह्माच्युतानामपि ।
सन्त्वन्ये बत के पुनर्दिविषदो मच्छासनोल्लङ्घिन-
स्तत्ताद्दग्विभवस्य मेऽत्र मनुजाः के नाम कीटा इमे ॥ २ ॥

(अपने परिवारके साथ अविद्याका प्रवेश)

अविद्या—हाय, इस प्रकार इस महान् सङ्कटमें पड़कर मैं किङ्कर्त्तव्यविमूढ हो रही हूं, फिर भी कोई मेरे पास नहीं आ रहा है ।

(नेपथ्यमें)

रतिके कङ्कण द्वारा विरचित चिह्नोंसे भूषित ग्रीवाभागमें लिप्त चन्दन तथा कस्तूरीके द्रवसे जिसका मुख सुन्दर हो रहा है, उस कन्दर्पकी जय हो ॥१॥

अविद्या—(सुनकर, सहर्ष) अहा, काम आ रहा है ।

(कामका प्रवेश होता है)

काम—मैंने महादेवके वामाङ्कमें ब्रह्माके मुखमें एवं विष्णुके हृदयमें क्रमशः पार्वती, सरस्वती एवं लक्ष्मी नामक स्त्री रूप अपनी पताका बांध दी है, तब भला दूसरे किस देवताकी शक्ति हो सकती है कि हमारे शासनका उल्लङ्घन करे । इस प्रकारकी शक्ति रखनेवाले मुझ कन्दर्पके सामने यह नरसमुदाय तो कीटके समान है ॥ २ ॥

(पुरोऽवलोक्य।) इयमितः सपरिवारा देवी। (उपसृत्य।) विजयतां देवी।

देवी—इत आस्यताम्।

कामः—(उपविश्य।)

का चिन्ता मयि वो निषीदति जगद्वीरे दिशां जित्वरे
येनार्थः पुरुषेण वोऽभिलषितस्तं ब्रूत किंचिन्मम।
दिक्पालं द्रुहिणं मुकुन्दमथवा साक्षान्महेशं क्षणा-
न्निर्जित्य प्रमदाकटाक्षविशिखैः कुर्वे भवत्किंकरम्॥ ३॥

विषयवासना—भट्टिनि, यदि किलानेन कर्माण्यवरुद्धानि, तत्र शमादेरुच्छ्वसितुमपि न भवेदवकाशः।

प्रवृत्तिः—भट्टिनि, विवेको विरागमुपनिधाय यदि किल कामानवरुद्धमेव कर्म कारयति, तर्हि तत्र किमप्यन्तरमधिगम्य झटिति तद्विघटने कः समर्थो भवेत्।

अविद्या—(विचिन्त्य।) पुरो दृश्यताम्।

(आगेकी ओर देखकर) यही हैं सपरिवार देवीजी। (समीप जाकर) जयहो देवीजीकी।

देवी—इधर बैठो।

काम—(बैठकर)

दिग्विजयी मुझ कन्दर्पके रहते हुए आपको चिन्ता करनेकी क्या आवश्यकता है, जिस पुरुषसे प्रयोजनहो उसका नाम भर बता दीजिये, वह दिक्पाल हो, ब्रह्माहो या साक्षात् महेशहो, हम उसे क्षणभरमें स्त्रीकटाक्ष रूप बाणोंसे पराजित करके आपका किङ्कर बनाये देते हैं॥ ३॥

विषयवासना—स्वामिनि, यदि कामदेवने कर्मोंको अवरुद्ध कर लिया तब तो शमादिको सांस लेनेकाभी अवसर नहीं मिलेगा।

प्रवृत्ति—स्वामिनि, यदि विवेकने विरागका अवलम्बन करके निष्काम कर्मही करवानेका प्रयास किया, तब थोड़ा सा भी अन्तर पाकर झटपट उसे विघटित करनेमें कौन समर्थ होगा?

अविद्या—(सोचकर) आगे देखो—

कोपः स एष कुटिलभ्रुकुटीकरालं
वक्त्रं दधद्मदिवासृगवेक्षणेन ।
उद्दण्डदण्डधरचण्डधराभटीक-
मभ्येति विभ्रमविलासकथानभिज्ञः ॥ ४ ॥

(ततः प्रविशति क्रोधः ।)

क्रोधः—

धर्मः कश्चन कामनानधिकृतस्तेनास्मदीयाः परा-
भूयेरन्ननुवेपते मम वपुर्हन्ताहमाविर्भवन् ।
इष्टापूर्ततपःशतात्तपरमोत्सेधं तु तत्संचयं
तूलस्तोममहाचलं पविरिव प्रध्वंसये दृश्यताम् ॥ ५ ॥

(उपसृत्य ।) विजयतां देवी । (इत्यभिमुखमुपविशति ।)

विषयवासना—भट्टिनि, यथा प्रायशो धर्म एव कुहापि न प्रवर्तेत, तथा विधातुं कः प्रगल्भेत ।

(देवी चिन्तां नाटयति ।)

(नेपथ्ये ।)

कुटिलभ्रुकुटिशाली मुख धारण करनेवाले आते हुए इस कोपकी आँखें खूनसी उगल रही हैं, विनोद तथा विलासकी कथासे अपरिचित यह कोप उद्दण्ड दण्डधर अनुचरोंके साथ भयङ्कर मुद्रामें इधर ही आ रहा है ॥ ४ ॥

(क्रोधका प्रवेश)

क्रोध—यह धर्म कौन है ? इसे तो कामनाने नहीं नियुक्त किया है ? वह हमारे आदमियोंको सता रहा है । मेरी देह कांप रही है, मैं प्रकट होते ही यज्ञ तप द्वारा प्राप्त उत्कर्षों पर घमण्ड करनेवाले उस धर्मके समुदायको उसी तरह ध्वस्तकर रहा हूँ जैसे तूलराशिको वज्र ध्वस्त करता है, आप देखें ॥५॥

(समीप जाकर) देवीजीकी जयहो । (सामने बैठता है)

विषयवासना—स्वामिनि, जिससे धर्मकी कहीं प्रवृत्ति ही नहीं हो सके, इस तरहका कार्य करनेकी बहादुरी कौन कर सकता है ?

(देवी चिन्ता प्रकट करती है)

(नेपथ्यमें)

एहि याहि यथाकामं नाहितं तेन किंचन।
देहि वाचमिमां नैव ब्रूहि मां प्रति जात्वपि ॥ ६ ॥
पितरौ वा विपद्येतां जायतां वा सुतायुतम्।
मिलन्तु वोपरागाश्च मिथो दद्यां न किंचन ॥ ७ ॥

देवी—(श्रुत्वा।) ननु संप्राप्त एव तादृशो लोभः।

(ततः प्रविशति लोभः।)

लोभः—

अभ्येतु घोरवपुषा धुरि राक्षसो वा
दंष्ट्राकरालवदनः स्वयमन्तको वा।
चेतो बिभेति न तथा मम दुर्निवारे
दृष्टे यथार्थिनि सपुस्तकदर्भपाणौ ॥ ८ ॥

(परिक्रम्य। उपसृत्य।) विजयतां देवी। (इति पार्श्वतो निषीदति।)

विषयवासना—(लोभं निर्दिश्य।)

कणस्तृणं वा जगतां त्रयेऽपि न देयमेतस्य दृशास्ति किंचित्।

यथारुचि आओ, जाओ, इसमें कोई क्षति नहीं है, किन्तु कभीभी मुझसे कुछ देनेको मत कहना ॥ ६ ॥

माता पिताकी मृत्यु हो जाय, अथवा हजार बेटे पैदाहों, या कितने भी सूर्यग्रहण चन्द्रग्रहण इकट्ठे हों, मैं कुछ देनेको नहीं ॥ ७ ॥

देवी—(सुनकर) उस तरहकी शक्ति रखनेवाला लोभ तो आ गया।

(लोभका प्रवेश)

लोभ—भयङ्कर शरीर धारण करनेवाला राक्षस सामने आकर खड़ा हो जाय, या भयोत्पादक दंष्ट्रासे भीषण मुख स्वयं यमराज उपस्थित हों, मुझे उनसे उतना भय नहीं होता है जितना भय पुस्तक तथा कुश हाथ में लिये हुए दुर्निवार याचकके देखे जाने पर होता है ॥ ८ ॥

(थोड़ा चलकर) देवीजीको जय हो। (एक ओर बैठता है)

विषयवासना—(लोभको दिखाकर)

एक कण हो या तृण, तीनों लोकोंमें कुछ भी ऐसा नहीं है जो इसके

न हर्षदृष्ट्या तु किमप्यदेयं मही विशाला मणिपर्वतो वा ॥ ९ ॥

(पुरोऽवलोक्य ।) हन्त, स्मृतमात्र एव संनिहितः । अहेप

हस्तेनानुपदं प्रियस्य सुहृदो हस्तं समास्फालयन्
हासोत्तालसमुच्छलत्कलकलः संफुल्लवक्त्राम्बुजः ।
दूरीकृत्य विषाददैन्यजडताचिन्ताविभावानसा-
वुत्साहेन सहात्मजेन वलते हर्षोऽतिमात्रोत्सवः ॥ १० ॥

(ततः प्रविशति हर्षः ।)

हर्षः—

वध्यं च वारणपतेर्निदधामि कण्ठे
कुर्वे च रत्नपटलीकनकाभिषेकान् ।
न प्राणतो हि परमस्ति शरीरभाजां
तानप्यहं तृणमिव प्रतिपादयामि ॥ ११ ॥

(इति परिक्रम्य ।) विजयतां देवी । (इति लोभस्य प्रतीपमुपविशति ।)

विषयवासना—अये हर्ष, भवदनुजन्मा मदः किं न दृश्यते ।

लिये दातव्य हो, और हर्ष की दृष्टिमें कुछ भी अदेय नहीं है चाहे वह विशाल भूभाग हो अथवा मणिपर्वत हो ॥ ९ ॥

(आगेकी ओर देखकर) अहा, स्मरण करते ही वह उपस्थित हो गया । यह—

अपने प्रियमित्रके हाथ में हाथ दिये हुए ये विकसित-वदन हर्ष अपनी उत्ताल हँसीसे कलकल उत्पन्न कर रहा है, इसने विषाद, दैन्य, जडता, चिन्ता आदि भावोंको दूर कर दिया है, अतिशय उत्सवमें मग्न यह अपने उत्साह नामक पुत्रके साथ आनन्दित हो रहा है ॥ १० ॥

(हर्षका प्रवेश)

हर्ष—मैं वध्यजनको हाथीके कन्धों पर बैठाता तथा रत्नों एवं सुवर्णसे उसे अभिषिक्त करता हूँ, शरीरधारियोंके लिये प्राणसे बढ़ी कुछ वस्तु नहीं है, उन प्राणोंको भी मैं तृणकी तरह दानमें देता हूँ ॥ ११ ॥

(चलकर) जय हो देवीजीकी । (लोभकी विरुद्ध दिशामें बैठता है)

विषयवासना—अजी हर्ष, तुम्हारा अनुज मद क्यों नहीं दीखता है ?

हर्षः—(अग्रतो निर्दिश्य ।) इतो दृश्यताम् ।

आलिङ्गितोऽयमवधीरणया रमण्या
पुत्रैः प्रमादविपदस्मरणैः परीतः ।
दूरीकृतो विनयधर्मविचारगन्धैः
सोऽयं मदो जयति मन्थरदृष्टिपातः ॥ १२ ॥

(ततः प्रविशति मदः ।)

मदः—

उन्मीलितालानमुदग्रसत्त्वं मदावलं भूरिमदान्धमेतम् ।
बाले समालम्ब्य बलाद्विकर्षन्निवर्ततेऽयं धुरि निःसरन्तम् ॥ १३ ॥

(इति विकटं परिक्रम्य हर्षोपकण्ठे निषीदति ।)

प्रवृत्तिः—भट्टिनि, यथा ह्ययं धर्मातिक्रमादिना कीदृशमप्यस्मदधीनं करोति, तथैव मानोऽपि महद्विनयादिना कमपि मदधीनयेदेव । तथा ह्येष

विगर्हितनमोवाको विनयादिपराङ्मुखः ।
आहोपुरुषिकाप्रेयानायान्मानो मदोच्छ्रितः ॥ १४ ॥

हर्ष—(आगेकी ओर दिखाता हुआ—) इधर देखिये—

अवधीरणा नामक अपनी प्रिय पत्नीसे आलिङ्गित एवं प्रमाद, विपत्, अस्मरण नामक अपने पुत्रोंसे घिरा हुआ वह मद आकर उपस्थित हो रहा है जो विनय, धर्म तथा विचारकी गन्धसे भी अपनेको दूर रखता है तथा सदा मन्थर-दृष्टि बना रहता है ॥ १२ ॥

मद—खूंटेको उखाड़ फेंकनेवाले इस मतवाले दुर्दान्त गजराजको बलपूर्वक पकड़कर मैं घसीटकर लेता आ रहा हूँ, जो मेरे सामने निकल रहा है ॥ १३ ॥

(उद्दण्डभावसे चलकर हर्षके समीपमें बैठता है)

प्रवृत्ति—भट्टिनि, जैसे यह मद धर्म में अतिक्रम उत्पन्न करके किसी किसी को हमारे अधीन करता है उसी तरह मान भी तो अविनयके द्वारा किसीको मेरे अधीन करेगा ही । क्योंकि यह—

नमस्कारकी विधिकी निन्दा करता तथा विनय आदिसे चिढ़ा रहता है, उसे अहङ्कार पर प्रेम है, उसे मदसे स्नेह है, वही तो वह आ रहा है ॥१४॥

(ततः प्रविशति मानः ।)

मानः—

इष्टापूर्तसहस्रलब्धपरमापूर्वातिपूनात्मके
विज्ञानातिशयप्रभूतविभवे विश्वैकवन्द्ये मयि ।
वेष्टन्ते तिलयन्त्रनद्धवृषवत्किं कोऽपि देवालये
वन्दन्ते कुकलासवच्च शिरसः किं न्यञ्चितोदञ्चितैः ॥ १५ ॥

(इति परिक्रम्य ।) विजयतां देवी । (इति क्रोधसमीपमधिवसति ।)

विषयवासना—भट्टिनि, लोभमहिम्ना कर्म कुत्रापि प्रायशो नानुतिष्ठेदेव । कथंचिदनुष्ठितान्यपि परातिसंधानेन विफलयतापि केनचिद्भवितव्यम् ।

प्रवृत्तिः—(पुरतो निर्दिश्य ।) सोऽपि संनिहित एव । यदेष
सौवर्णलेपनघगद्धगितांशुजाल-
मापादचूडमयमाभरणं दधानः ।
विष्टब्धमूर्तिरतिधीरगतिः प्रसन्नो
मिथ्याविलासरसिको मिलतीह दम्भः ॥ १६ ॥

(मानका प्रवेश होता है)

मान—हजारों यज्ञादि सत्कर्म द्वारा अर्जित परम पुण्यसे अति पवित्र तथा विज्ञानके उत्कर्षसे प्राप्त प्रचुर विभवसे सम्पन्न संसार-पूज्य मुझ मानके रहते हुए यह कुछ लोग कोल्हूमें जुते बैलकी तरह देवालयोंका चक्कर काटते हैं, और कुछ लोग गिरगिटकी तरह सिरको ऊँचे-नीचे करके लोगोंको वन्दना किया करते हैं ॥ १५ ॥

(चलकर) जय हो देवी जी की । (क्रोधके पास बैठता है)

विषयवासना—स्वामिनि, प्रायः लोभकी महिमासे कोई कहीं सत् कर्म करेगा ही नहीं, किसी ने अगर किसी तरह कुछ किया भी तो फूंककी नीति चरत कर किसीको उसे विफल करनेमें भी संलग्न होना चाहिये ।

प्रवृत्ति—(आगे दिखाकर) वह व्यक्ति भी सन्निहित ही है, जो—पैरसे सिरतक सुवर्ण-लिप्त होनेके कारण किरणोंसे धक् धक् करनेवाले आभूषण धारण किये दृढ़ गतिसे चलनेवाला यह दम्भ अतिमन्द गमनसे आ रहा है जिसे मिथ्या विलासमें प्रेम है ॥ १६ ॥

(ततः प्रविशति दम्भः।)

दम्भः—

इन्द्रः कुबेर इति ये महिताः सुरास्ते
बाह्याङ्गणं निबिडयन्ति निरन्तरं मे।
एतेषु मे यदिह किंचिदुदञ्चितभ्रूः
किं किं न सिध्यति जनस्य मदाश्रितस्य ॥ १७ ॥

(इति परिक्रम्य।) विजयतां देवी। (इति सर्वेषामग्रतस्तिष्ठति।)

विषयवासना—भट्टिनि, तदेतेषां क्रियासिद्धिषु महाप्रभावो मोहः सहकारी।

(ततः प्रविशति मोहः।)

(मोहो देवीं प्रणम्य तदन्तिके निषीदति।)

प्रवृत्तिः—भट्टिनि, श्रूयताम्।

ये संसारपथं विचिन्त्य वितथं तत्त्वावमर्शोन्मुखाः
संनह्यन्ति भृशं मनागपि शिशोराकर्णिते क्रन्दिते।

(दम्भका प्रवेश)

दम्भ—इन्द्र या कुबेर जो देव प्रतिष्ठित हैं वे सदा मेरे बाह्य अङ्गणमें भीड़ लगाये रहते हैं क्योंकि इनमेंसे कुछ पर मेरी नजर रहती है। मेरे आश्रित जनको कौन-सी सिद्धि नहीं मिलती है ॥ १७ ॥

(चलकर) जय हो देवीजीकी। (सबके आगेमें बैठता है)

विषयवासना—स्वामिनि, इन लोगोंकी कार्य-सिद्धिमें महाप्रभावशाली मोह सहायता करेगा।

(मोहका प्रवेश)

(मोह देवीको प्रणाम करके उनके पास बैठता है)

प्रवृत्ति—स्वामिनि, सुनिये—

संसार-मार्गको विरस जानकर जो लोग तत्त्वविचारकी ओर प्रवृत्त होते हैं वही तनिक सा लड़केका रोना सुनकर सारी तत्त्व-विचार-कथाको ताकपर

हित्वा तत्त्वकथामपास्य नियमानुत्प्लुत्य धावन्ति ते
मोहः सोऽयमलङ्घनीयमहिमा केनैष जय्यो भवेत् ॥ १८ ॥

विषयवासना—तदेयमपारबलविभवसारेषु निजपरिवारेषु किमसारविषयिणीभिराशङ्काभिरात्मानमाकुलयसि ।

अविद्या—भोः कामादयः, श्रूयन्ताम् । निजकुलसमापतितविकटसंकटविघटनाय हितकार्यघटनाय चायमवसरः । अतो मया किंचिदभिधीयते । तदवहितैरेव भवद्भिराचरितव्यम् ।

कामादयः—यदाज्ञापयति देवी ।

अविद्या—सहजसिद्धविरुद्धस्वभावशमदमादिकृतदुर्बोधनेन मयि विरसीकृतात्मा देवश्चित्तशर्मणा साकमत्र परिसरे निमिषमात्र एव संनिदधीत । ततः पूर्वमेव शिवतद्भक्तिप्रभावैर्युष्माभिरप्रमादमेव निजनिजपरिवारैः सममयमुद्देशः सर्वोऽपि यथा शम-दमादीनामीषदुच्छ्वसितुमपि नावकाशः, तथा निबिडयितव्यः ।

रख देते तथा समस्त नियमोंका त्याग करके दौड़ पड़ते हैं ऐसा है यह मोह, इसकी महिमा अपार है, इसे कौन जीत सकता है ? ॥ १८ ॥

विषयवासना—इस प्रकार आपके परिवारका बल-विभव अब अपार है तब आप इन व्यर्थकी चिन्ताओंसे अपनी आत्माको क्यों व्याकुल कर रही हैं ?

अविद्या—अजी कामादि, सुनो, अपने कुलपर आई हुई विकट आपत्तिको दूर करने तथा हित-कार्य सम्पादित करनेका यही उपयुक्त अवसर आया है, इसलिये मुझे कुछ कहना है, तुम लोग सावधानीसे उसपर आचरण करना ।

कामादि—देवीकी जो आज्ञा ।

अविद्या—स्वभावतः विरोधी स्वभावके कारण शम-दम आदि ने राजा जीवको उलटा सीधा समझा दिया है जिससे राजा मुझपर अप्रसन्न हो उठे हैं, वह अभी एक क्षणमें अपने प्रधान मन्त्री चित्तशर्मके साथ इस देशमें उपस्थित होंगे । उससे पहले ही तुम लोग शिवभक्ति तथा उसके प्रभावके साथ सावधानीसे अपने अपने परिवारोंको लेकर इस प्रकारसे यहाँ जम जाना कि शम दम आदिको सांस लेनेका भी अवसर नहीं मिल सके ।

कामादयः—प्राप्तावसरमेव पराक्रमयिष्यामस्तावत् , यदादिशति भट्टिनी । (इति कामादयो निष्क्रामन्ति ।)

(ततः प्रविशति चित्तशर्मणा सह जीवराजः ।)

राजा—(पुरोऽवलोक्य ।) कथमत्रैव सपरिवारा देवी ।

(सर्वाः ससंभ्रममुत्तिष्ठन्ति ।)

प्रवृत्तिः—देव, कियच्चिरमभूदस्माकमिहागतानाम् ।

राजा—चित्तशर्मन् , इतोऽपि कियदन्तरे वेदारण्यभागः ।

चित्तशर्मा—ननु प्रविष्ट एव । यदिदानीम्

स्फायन्ते घृतदाज्यगन्धिन इमे वाताः क्वचित्कुत्रचित्
सर्पिष्मच्चरुशंसिनः क्वचिदपि स्निग्धा वपामोदिनः ।
एते चानुपदं पयोदपटलीसौहित्यनाडिन्धमा
धूमा व्योमपथं तरन्ति मखभुक्संचारनिःश्रेणिकाः ॥ १९ ॥

काम आदि—स्वामिनीके आदेशानुसार अवसर आने पर हम अपना पराक्रम दिखलायेंगे ।

(काम आदिका प्रस्थान)

[चित्तशर्माके साथ जीवराजका प्रवेश]

राजा—(आगेकी ओर देखकर) क्यों, सपरिवार देवी यहीं हैं ।

(सभी घबड़ाकर उठ खड़ी होती हैं)

प्रवृत्ति—देव, कुछ देर हुई कि हम लोग यहाँ आई हैं ।

राजा—चित्तशर्मा, यहाँसे कितनी दूरी पर वेदारण्यका वह भाग है ?

चित्तशर्मा—हम लोग पहुँच गये, क्योंकि इस समय—कहीं घृतकी गन्धसे युक्त तथा कहीं घृताक्त चरुकी सूचना देने वाली और कहीं वपाकी सुगन्धिसे पूर्ण हवा फैल रही है, समीपमें ही मेघमालाकी तुलना करनेवाली धूमराशि दीख रही है जो देवोंके सञ्चारमें काल आने वाली सीढ़ीसी लग रही है ॥ १९ ॥

अपि चात्र

प्रक्रीडच्छुकसारिकादिपटलीशश्वत्समाश्रावित-
प्रत्याश्रावितमुह्यदृत्विगपथप्रक्रान्तिसंदेहतः।
एते जाग्रति साग्रहाः सुमतयः सभ्याः समं यज्ञभि-
र्वैदुष्यप्रथनाय यागवसरौचित्यप्रतीक्षाकृतः॥ २०॥

यावदिह प्रविश्य चक्षुषी विनोदयामः। (इति सर्वे तथा कुर्वन्ति।)

राजा—(समन्तादवलोक्य। सानन्दम्।)

विहितेष्टयो मतिमतां पर्वसु काम्यक्रिया एताः।
प्रमदा इव खलु रमयन्त्यक्ष्ण्यः पूर्वसंपदुल्लसिताः॥ २१॥

अपि च।

विहरति विस्मयनीया कुड्यचन सौत्रामणी लक्ष्मीः।
संपूर्णसोममुख्यस्फीतरसाश्च क्रियाः क्वचिद्भान्ति॥ २२॥

(विमृश्य।)

कमलोल्लासिपदानां कमनीयविचित्रभूरिभोग्यानाम्।

और यहाँ,

खेलता हुआ शुक तथा सारिकाका समुदाय जब तुरत शुद्धरूपमें वेद मन्त्रको दुहरा देता है—तब मोहवश ऋत्विजोंने गलती की थी, यह सन्देह उत्पन्न होता है, इसीलिये बुद्धिमान् सभ्यजन यज्ञवालोंके साथ अपने वैदुष्यको प्रकाशित करनेके लिये उपयुक्त अवसरकी प्रतीक्षामें रहते हैं॥ २०॥

जबतक हमलोग इस वेदारण्यमें प्रवेश करके अपने नेत्रको आनन्दित करते हैं।

राजा—(चारो ओर देखकर, सानन्द)

पर्वमें बुद्धिमान् जनों द्वारा अनुष्ठित यह काम्य-क्रियायें रमणियोंकी तरह हृदयोंको आनन्दित करती हैं, यह पूर्वतन सम्पत्तिसे साध्य तथा अक्षय हैं॥२१॥

और—

कहीं पर आश्चर्यमें डालदेनेवाली सौत्रामणि यज्ञकी समृद्धि शोभा पा रही है, कहीं पर सम्पूर्ण सोमयागकी क्रिया दीख पड़ती है॥ २२॥

(विचार कर) इनके चरण-कमलकी तरह शोभित हैं, (इनकी निष्पत्ति

आसां कामपरिस्फुरदमृतं सुखमातनोति सुखम् ॥ २३ ॥

विषयवासना—(जनान्तिकम् ।) सखि प्रवृत्ते, काम्यक्रियाणामासां निर्वर्णनेन तत्फलप्रशंसया च कामाविष्ट इव दृश्यते देवः ।

प्रवृत्तिः—ननु महाप्रभावः कामः ।

चित्तशर्मा—(स्वगतम् ।) हन्त प्रमादः । दुरात्मना कामेनाभिभूयमानः सव्याजमन्यतोऽवकर्षणीयो देवः । (प्रकाशम् ।) पदान्तर एव परिणतफलागममिमं प्रदेशमासाद्य विश्रमसुखमनुभूयतां देवेन ।

राजा—तथा । (इति किंचिदन्यतो गत्वा परतो निर्दिश्य ।)

शस्तस्तोत्रमयीर्गिरः श्रुतिपुटीसौहित्यनाधिन्वमा
वैतानानिह पावकान्घृतभरीकिंजल्किताश्रानपि ।
अङ्गान्युत्पुलकानि मे विदधतः पूतांश्च वातानिमान्
हातुं न प्रभवामि पावनहविर्गन्धानुबन्धानपि ॥ २४ ॥

कमला-लक्ष्मीसे साध्य है) इनके द्वारा रमणीय नाना भोग प्राप्त होते हैं, कामनानुसार अमृत प्रदान करनेवाला इन क्रियारूप रमणियोंका प्रारम्भ स्वरूप मुख सुख प्रदान करता है ॥ २३ ॥

विषयवासना—(भौंरोंसे छिपाकर) सखि प्रवृत्ते, इन काम्य क्रियाओंके वर्णन तथा उनके फलकी प्रशंसासे लगता है कि राजा उसकी ओर आकृष्ट हो रहे हैं ।

प्रवृत्ति—कामका प्रभाव बहुत बड़ा है ।

चित्तशर्मा—(स्वगत) हाय, गलती हो गई । दुरात्मा काम राजाको आकृष्ट करता जा रहा है, अतः राजाको किसी बहानेसे दूसरी तरफ खींच ले जाना चाहिये । (प्रकट) समीपमें ही है पक्व फलवाला कानन प्रदेश, (परमार्थमें—पर्यन्तसुखद फलदायी वेद भाग) वहाँ चलकर महाराज विश्राम का सुख प्राप्त करें ।

राजा—ठीक है । (थोड़ा आगे चलकर, आगेकी ओर दिखाकर)

कानोंको प्रसन्नता प्रदान करनेवाली प्रशंसनीय स्तोत्रकी वाणियोंको, घृतकी धारासे संवर्धित हवनीय वह्नियोंको, एवं मेरे शरीरको रोमाञ्चित करनेवाले इन पूत हविर्गन्धसे युक्त पवित्र वातोंको मैं छोड़नेमें असमर्थ हूँ ॥ २४ ॥

अविद्या—सखि विषयवासने, लब्धापरित्यागाभिलाषस्वभावेन लोभेनापि वशीकृत इव देवः। यदयमिमान्विषयान्न परित्यक्तुमुत्सहते।

चित्तशर्मा—(स्वगतम्।) आः किमिह लब्धप्रसरो लोभहतकोऽपि। भवतु। निवारयाम्येनमितोऽपि गुणवद्विषयान्तरप्रदर्शनेन। (प्रकाशम्।) वयस्य, किंचिदत्र परभागे दीयता दृष्टिः।

राजा—(विलोक्य। साश्चर्यम्।)

तडिज्जटिलिता दिशस्तरणिकोटिभिर्भास्यते
नभःस्थलमुपस्थितैरनुपमैश्च तौर्यत्रिकैः।
मनोऽपि च विनोद्यते मधुसुधाकरीमाधुरी-
निरन्तरधुरंधरैर्निखिलदुर्लभैः सौरभैः॥ २५॥

वयस्य, किमेतद्विमृश्यताम्।

(चित्तशर्मा संकल्पं पश्यति।)

संकल्पः—(विचार्य।) देव, काम्योपासनाः संघाभूय भवदनुजिघृक्षया संनिदधते।

अविद्या—सखि विषयवासने, लब्ध वस्तुको नहीं छोड़ना ही लोभका स्वभाव है, उस लोभने—मालूम पड़ता है—कि राजाको अपने वशमें कर लिया है क्योंकि यह इस देशका (रम्यवाणी, सुन्दर वह्नि, तथा पूर्ववातरूप विषयोंका) परित्याग करना नहीं चाहते हैं।

चित्तशर्मा—(स्वगत) आः, अभागा लोभ भी अजब तरहका मौकापर आ धमकनेवाला है, अस्तु, अन्य गुणवान् पदार्थको दिखाकर मैं राजाको इधरसे निवारित करता हूं। (प्रकट) वयस्य, थोड़ा इधर तो दृष्टि दीजिये।

राजा—(देखकर—आश्चर्यसे)

बिजलीसे भरी दिशायें हजारों सूर्योंसे देदीप्यमान हो रही हैं, आकाशमें अनुपम नृत्य-गीत वादित्र उपस्थित हो रहे हैं, मेरे मनको मधुमय माधुरीसे परिपूर्ण सकल साधारण दुर्लभ सौरभ विनोदित कर रहा है॥ २५॥

मित्र, सोचो यह क्या हो सकता है।

(चित्तशर्मा संकल्पकी ओर देखते हैं)

संकल्प—(विचार करके) देव, आपको अनुगृहीत करने की इच्छासे काम्योपासनायें दल बांधकर समीप आ रही हैं।

(ततः प्रविशन्ति काम्योपासनाः।)

काम्योपासनाः—विजयतां देवः।

राजा—

बृहस्पतिर्मे स कियान्वचःक्रमे दिवस्पतिर्वा विभवेषु मे कियान्।
इमा दुरापास्तपसापि भूयसा यदाविरासन्ननुपाध्युपासनाः॥ २६॥

(इति स्तब्धोरस्तटमविनीतस्तिष्ठति।)

चित्तशर्मा—(स्वगतम्।)

विनीतोऽयं विभुर्हन्त वितनोति विकत्थनाम्।
महतामपि दुष्टात्मा मानो हि दुरतिक्रमः॥ २७॥

(प्रकाशम्।) वयस्य, सविनयादरमिमा महोपासना यथोचितमर्हणीयाः।

राजा—तथा। (इति सभयं परावृत्य सप्रश्रयादरमभ्युद्गमं नाटयन् यथोचितं संभावयति।)

संकल्पः—(पुरतो निर्दिश्य।)

हृष्टाङ्गलक्षितरतिक्रमशोभितैषा
शृङ्गारिणी विजयते धुरि वामदेव्या।

(काम्योपासनाओंका प्रवेश)

काम्योपासनायें—महाराजकी जय हो।

राजा—बोलनेमें बृहस्पति तथा सम्पत्तिमें 'इन्द्र, मेरे सामने क्या है? क्योंकि प्रचुर तपस्या द्वारा दुर्लभ यह काम्योपासनायें मुझे प्राप्त हो रही हैं॥२६॥

(छाती तानकर अविनीत भावसे खड़ा होता है)

चित्तशर्मा—हमारे प्रभु विनीत होकर भी, आज 'आत्म-प्रशंसापर तुले हुए हैं, यह दुष्ट अभिमान महान् जनोंके लिये भी दुर्लङ्घ्य है॥ २७॥

(प्रकट) वयस्य, आदर तथा नम्रताके साथ इन उपासनाओंका स्वागत करना चाहिये।

राजा—ठीक है। (सभय लौटकर नम्रता तथा आदरके साथ उन उपासनाओंका यथोचित सत्कार करता है)

सङ्कल्प—(आगेकी ओर दिखलाकर)

आगे-आगे आती हुई यह शृङ्गार-प्रधान वामदेव्योपासना है जिसके प्रसङ्ग

आयुः सुदीर्घमभिनन्द्यगुणान्कुमारान्
हृद्यां च कीर्तिमियमातनुते हि विद्या ॥ २८ ॥

चित्तशर्मा—उपपद्यत एव । क्रत्वङ्गभूतहिंकारप्रस्तावोद्गीथप्रतिहार-निधनेषु योषिदुपमन्त्रणसहशयनाद्यभेदप्रतिपत्तिरूपेयमङ्गावबद्धोपासना बहुफला कल्पलतेव कस्य वा मनो न हरति ।

(राजा सरोमाञ्चविकसितकपोलं चित्तशर्मणो हस्तमास्फालयति ।)

विषयवासना—किमिहापूर्वार्थसंदर्शनजनितचित्तविस्तारात्मको हर्षोऽपि । दिष्ट्या दिष्ट्या ।

चित्तशर्मा—(स्वगतम् ।) हन्त, हर्षेण महताविष्टो वयस्यः । यदि किलैतत्प्रतिनियतवृत्तिरत्र मदोऽपि संनिदधीत, ततोऽति हि नाम संकट-मापद्यते । तदिममन्यतोमुखयितुमेवं ब्रवीमि । (प्रकाशम् ।)वयस्य, पार्श्वतो दीयतां दृष्टिः ।

(राजा श्रुतिमभिनयन्नजस्रमीलनानि करोति ।)

अङ्ग-समुदायसे रति भावकी शोभा फूटी सी पड़ती है, यह विद्या, दीर्घ आयु, सुन्दर सन्तति, तथा मनोरम कीर्त्ति देती है ॥ २८ ॥

चित्तशर्मा—उचित ही है । यज्ञाङ्गभूत हिंकार प्रस्ताव, उद्गीथ, प्रतिहार, तथा निधनके साथ स्त्रीके आमन्त्रण एवं सहशयनादि क्रिया-कलापकी ,अभिन्नता स्वीकार करनेवाली यह साङ्ग विद्या बहुत सारे फल देनेवाली कल्पलताके समान है, यह किसको आकर्षित नहीं करती है ।

(राजाका कपोल रोमाञ्चित हो उठता है, वह चित्तशर्माका हाथ मसलता है)

विषयवासना—क्या यहाँ नई वस्तुके दर्शनसे उत्पन्न होनेवाले चित्त-विस्तारके रूपमें वर्त्तमान हर्ष भी है, अहो भाग्य ।

चित्तशर्मा—(स्वगत) हाय, राजापर हर्षका प्रभाव छा रहा है । यदि निश्चितरूपसे हर्षके साथ रहनेवाला मद भी यहाँ आ जाय तो महान् संकट उपस्थित हो जायगा । अतः राजाको दूसरी ओर उन्मुख करनेके लिये कुछ कहता हूँ । (प्रकट) वयस्य, बगलकी ओर दृष्टि दीजिये ।

(राजा सुनकर भी अनसुनी कर देता है)

विषयवासना—पुष्कलोऽयमस्मिन्मदावेशः ।

चित्तशर्मा—(आत्मगतम् ।) आः प्रमादः प्रमादः । कममेनमितोऽहमभिमतमुद्देशं गमयेयम् । (संकल्पमवलोक्य संकेतयते ।)

संकल्पः—देव, मदत्र किंचिदक्षिसौभाग्यम् ।

राजा—किमिव ।

संकल्पः—

रचितरुचिरशोभाऋग्यजुःसामपुष्पै-
र्दुहतनिगमरसौघप्रस्फुरद्दिव्यरूपा ।
सदमृतवसुरुद्रादित्यसाम्राज्यदात्री
विलसति मधुविद्या वीतदोषा तदेषा ॥ २९ ॥

चित्तशर्मा—(स्मरणमभिनीय ।) श्रूयते हि—दिव्यमधुमूर्तेरादित्यस्यान्तराम्नायरसरूपममृतमन्यादिमुखेन वस्वादयो देवा दृष्ट्वैवाभिनन्दन्ति तदेव रूपं प्रतिपद्यन्ते, तत एव चोद्यन्ति, यस्तावदेतदमृतमेवं वेद स वस्वाद्यन्यतमो भूत्वा तत्साम्राज्यमविनाशित्वमपि पर्येति ।

विषयवासना—इसपर मदका गहरा प्रभाव है ।

चित्तशर्मा—(स्वगत) हाय, गलती हुई । [अब मैं। किसपर इस राजाको यहाँसे अलग करके अभीष्ट देशकी ओर ले जाऊं ?

(संकल्पकी ओर देखकर इशारा करता है)

सङ्कल्प—महाराज, इधर कुछ ऐसी वस्तु है जिसकी उपस्थिति नयनोंके सौभाग्यकी सूचना देती है ।

राजा—वह क्या है ?

सङ्कल्प—ऋक्, यजु, तथा सामरूप पुष्पोंसे रुचिर शोभा पैदा करनेवाली, अनायास निकलनेवाले रसोंसे दिव्यरूप यह निर्दोष मधु विद्या वास्तविक अमृत वसु-रुद्रादि साम्राज्य प्रदान करनेवाली है ॥ २९ ॥

चित्तशर्मा—(स्मरणका अभिनय करके) सुना जाता है कि दिव्य मधु मूर्त्ति आदित्यके अभ्यन्तर भागमें आम्नाय रसरूप अमृत वर्त्तमान है, जिसे अन्यादिके माध्यमसे साक्षात्कृत करके वस्वादि देवगण प्रसन्नता प्राप्त करके उसी रूपमें हो जाते हैं । जो इस अमृत तत्त्वको जानेगा वह वसुओंमें एक

राजा—(स्वरूपमहिमफलान्यनुसंधाय सौवर्गसुखचिन्तां नाटयन् ।)

नेदीयःसुरदीर्घिकातिशिशिरे कल्पद्रुपुष्पोत्करैः
स्फारामोदिनि मारुते विवलति प्रासादशृङ्गोदरे ।
पुंभावालसभव्यदिव्यमहिलाबिम्बाधरास्वादने
तत्तादृक्सुखवैखरी शिव शिव प्राप्येत वै जात्वपि ॥३०॥

(इति मुह्यति ।)

विपयवासना—भट्टिनि, मधुविद्यायां मज्जति व्यामोहमेष नो देवः ।

अविद्या—केनैष लङ्घनीयप्रसरः समये महामोहः ।

चित्तशर्मा—(स्वगतम् ।) हन्त, नितान्तमभिभूयते वयस्यो मोहेन । (प्रकाशम् ।) देव बुध्यस्व । धीरः खल्वसि ।

(राजा प्रतिबुध्यते ।)

चित्तशर्मा—

स्मृतिमात्रतोऽपि यस्याः कमपि विकारं प्रपद्यते देही ।
आसादिता यदि हि सा मदयति कं वा विवेकिनं नैषा ॥ ३१ ॥

हो जावगा तथा उन वसुओंके साम्राज्य एवं अविनाशित्वका भाजन बन जावगा।

राजा—(स्वरूप प्रतिष्ठा-फल का अनुसन्धान करके स्वर्गसुखकी चिन्ता करते हुए) समीपवर्ती गङ्गाके शीतल संपर्कमें कल्पद्रुम विकसित पुष्पोंकी सुगन्धसे भरी हवाके चलते रहनेपर प्रासादकी चोटीपर पुरुषायितके लिये तत्पर सुन्दरी स्त्रीके अलस अधर-बिम्बके आस्वादनमें जो सुखकी प्रचुरता वर्त्तमान है, शिव-शिव, क्या वह कभी मुझे भी प्राप्त होगी ॥ ३० ॥

(मोहित हो जाता है)

विपयवासना—स्वामिनि हमारे महाराज मधुविद्यापर मोहित हो रहे हैं।

अविद्या—इस महामोहके प्रसरको समयपर कौन लांघ सकता है ?

चित्तशर्मा—(स्वगत) हाय, राजापर मोहका काफी प्रभाव है।

(प्रकट) महाराज, होश कीजिये, आप तो गम्भीर कहलाते हैं।

(राजा संभल जाता है)

चित्तशर्मा—जिस मधुविद्याके स्मरणमात्रसे देही इस तरहके विकारको प्राप्त कर लेता है, यदि वह मधुविद्या किसीको प्राप्त हो जाय तो वह अविवेकी भला कैसे मदमत्त नहीं हो उठेगा ? ॥ ३१ ॥

राजा—(श्रुत्वा । सप्रत्यभिज्ञम् ।) नैषा विवेकाद्यभिमता विद्या। अत एव किल 'अविवेकिनमेषा मदयति' इति चित्तशर्मणा सव्याजमभिहितम्। (प्रकाशम् । पुरतो विलोक्य) संकल्प, कैषा महाभागा।

चित्तशर्मा—(स्वगतम् ।) हन्त, विवेकादिस्मृतिमात्र एव प्रकृतिमासादितो वयस्यः।

संकल्पः—

कमपि हृदि दधाना कान्तरूपं महान्तं
तदुपरि निदधाना भावभेदानशेषान्।
इयमपहतपाप्मा सत्यसंकल्पकामा
जयति दहरविद्या सद्गुणैः श्लाघनीया॥ ३२॥

राजा—(स्वगतं सगौरवं सादरं च।) इयमात्मविद्यायाः पदमात्रान्तरैव खल्वियमात्मविद्यायाः यदपहतपाप्मत्वादिकतिपयगुणारोप एव विशेषः।

चित्तशर्मा—(जनान्तिकम्) वयस्य, तदस्या दहरविद्यायाः पदान्तर

राजा—(सुनकर—कुछ स्मरण सा करके) यह विद्या विवेकको स्वीकार्य नहीं है, इसीसे कह रहा है कि—'यह अविवेकीको मदमत्त बना देती है'। यह बात चित्तशर्मा व्याजान्तरसे कह रहा है।

(प्रकट, आगेकी ओर देखकर) सङ्कल्प, यह सुन्दरी कौन है?

चित्तशर्मा—अहा, विवेक आदिके स्मरणमात्रसे ही राजा प्रकृतिस्थ हो रहे हैं।

सङ्कल्प—किसी कमनीय रूपशाली पुरुषको हृदयमें धारण करके उसके ऊपर अपने समस्त भाव-राशिको न्यौछावर करनेवाली यह सत्यकाम तथा सत्यसङ्कल्पा दहरविद्या है जो निष्कलङ्क तथा सद्गुणोंके कारण प्रशंसाकी पात्र है॥ ३२॥

राजा—(स्वगत, गौरव तथा आदरके साथ) यह आत्मविद्याके अतिसमीप है, इसीलिये तो इसे निष्कलङ्क आदि विशेषणोंसे योजित किया जाता है। यही अन्तर है कि यह सविशेष है और आत्मविद्या निर्विशेष॥

चित्तशर्मा—(दूसरोंसे छिपाकर—राजासे) वयस्य, इस दहर विद्याके

एव तत्रभवत्या शिवभक्त्या निरतिशयनिजप्रभावेण भवदभिलषितपरमानन्दकन्दली विद्यापि भवदक्षिपथैकगोचरतयानुप्रवेशिता स्यात् । तत्र सावधानं दीयतां दृष्टिः । यतो महामोहादयस्तदपवारणाय संनह्यन्ति ।

राजा—(निभृतं निरूप्य । विद्यामुपलभ्य । स्वगतम् ।) हन्त, सैवेय नयनानन्दचन्द्रिका । (जनान्तिकम् ।) वयस्य किं ब्रवीमि । पुरा किल

एषा चित्रगता मनो हृतवती सौन्दर्यसारोद्भवै-
रानन्दैरतिमोहिनीं किल दशामासान्वती कामपि ।
स्यादेतत्करशिल्पमुच्छ्वसितमिदं चित्रं किलेत्यास्थितं
तत्तस्याः करशिल्पमल्पितवती सैषातिहृद्याकृतिः ॥ ३३ ॥

(चक्षुषी निमील्य । संमोहं नाटयन् । प्रकाशम् ।)

अङ्गेनैव किमर्चिरादिभिरहं नीतोऽस्मि धातुः पदं
किं वा मत्सुकृतैरसावियमिमौ लोकौ विपर्यासितौ ।
हन्तैतन्मुखचन्द्रमःप्रतिगुणादुत्कूलितेयं व्यधा-
दात्मानन्दसुधासमुद्रलहरी विश्वं किमेकार्णवम् ॥ ३४ ॥

अतिनिकटमें ही पूज्या शिवभक्ति द्वारा अपने प्रभावके बलपर आपके द्वारा अभिलषित परमानन्ददात्री विद्या भी आपकी आँखोंके सामने लाई जा सकती है । वहाँ आप सावधानतापूर्वक देखें क्योंकि महामोह आदि उसे छिपानेका उद्योग करते हैं ।

राजा—(सावधानीसे देखकर, विद्याको पाकर, स्वगत) अहा, यही है वह मेरे नयनोंको आनन्दित करनेवाली । (प्रकट) मित्र, क्या कहूं ? पहले—

चित्रमें दीखने पर इसने सौन्दर्य-सारसे निर्मित अपने अङ्गों द्वारा मोहमयी स्थिति उत्पन्न करके मेरा मन हर लिया था, उस समय मैंने समझा था कि यह चित्रकारके हाथकी सफाई होगी जिसके चलते चित्र इतना आकर्षक बन गया है, परन्तु अब मैं मानता हूँ कि इसकी यह रमणीय आकृति चित्रसे कहीं अच्छी है, इसके सामने चित्र तुच्छ है ॥ ३३ ॥

(आँखें मूंदकर मोहका अभिनय करता हुआ, प्रकट)

क्या मैं सदेह अर्चिः आदि मार्गोंसे ब्रह्मके लोकमें पहुँचा दिया गया हूं ? या मेरे पुण्योंने दोनों लोकोंको ही बदल दिया है ? अहा, इसके मुखचन्द्रका

अपि च ।

सुषुप्तिर्वा चित्साक्षिकहृदयविश्रान्तिलसिता
मदो वा मोहो वा घनसुखमयः कोऽप्यभिनवः ।
निरुन्धानो बाह्यं करणपटलं नहुतजगत्
प्रकारः कोऽप्यन्तः प्रसरति विकारो मनसि मे ॥ ३५ ॥

(इति स्तम्भं नाटयति ।)

विषयवासना—(जनान्तिकम् ।) भट्टिनि, दिष्ट्या फलितस्ते ननु मनोरथः । यदयमासामुपासनानां प्रभावविलसितैरतिमात्रपर्युत्सुकितः प्रमोदभरविकसितवदनारविन्दश्रिरेण परवानास्ते ॥ पश्यतावत् ।

प्रावृषि नीपद्रुम इव परितः स्तवकैरुदग्रकुड्मलितैः ।
अङ्गैरविरलपुलकैराविष्कृतसत्त्वविक्रियैर्लसति ॥ ३६ ॥

अविद्या—अपि विषयवासने, देवस्य विकारोऽयमुपासनासक्तिनि-

देखकर उफनती हुई यह आत्मानन्द रूप सुधा सागरकी तरङ्ग-परम्परा क्या संसारको एकार्णव बना रही है ॥ ३४ ॥

और—

सुषुप्ति क्या है यह ? जिसमें चैतन्यमात्र साक्षिक हृदय विश्रान्ति उल्लसित होती है, यह क्या कोई नया मद, मोह है जो घनानन्दमय है, मेरे हृदयमें कुछ ऐसा विकार पैदा हो रहा है जो बाह्य जगत्का तथा इन्द्रियगणका निरोध-सा करता जा रहा है ॥ ३५ ॥

(स्तम्भका अभिनय करता है)

विषयवासना—(दूसरोंसे छिपाकर) स्वामिनि, सौभाग्यवश आपका मनोरथ सफल हो रहा है, क्योंकि राजा इन उपासनाओंके प्रभावसे अत्यन्त उत्सुक होकर प्रसन्न मुखकमल तथा पराधीन हो रहे हैं । देखिये—

जैसे बरसातके दिनोंमें कदम्ब पुष्पस्तवकोंसे भर जाता है उसी तरह यह रोमाञ्चसे परिपूर्ण हो रहे हैं, अतिशय रोमाञ्चित इनके अङ्ग सात्त्विक विकारकी सूचना दे रहे हैं ॥ ३६ ॥

अविद्या—विषयवासने, राजाकी यह विक्रिया उपासनाओंमें आसक्तिके

बन्धन इति मनो मम न प्रत्येति। यदिह मद्विषयकप्रणयगौरवगन्धोऽपि नोपलभ्यते।

विषयवासना—किमन्यदिह कारणं संभाव्यते।

राजा—(सोन्मादम्।)

मधुलहरीनयनपथे मम मिलिता कापि विद्येति।
दृष्ट्वाभिनन्दिता सा तन्मयमास्ते जगत्समस्तमिदम् ॥ ३७ ॥

अविद्या—विषयवासने, श्रुतं खलु देवस्य। विद्यानुरागसंमोहपल्लवितमेतत्।

विषयवासना—फलितमिव ते संदेहेन। भवतु। भूयोऽपि विमृशामः।

चित्तशर्मा—(स्वगतम्।) हन्त, प्रमादः प्रमादः। तदिदमस्य विद्यारतिपारवश्यविजृम्भितं वयस्यस्य। जल्पितमेवमन्यथयामि। (प्रकाशम्।) देवि, दिष्ट्या बलवदुपासनासक्तहृदयो देवः। अतः किल 'मधुलहरी, दृष्ट्वाभिनन्दिता' इत्यादि मधुविद्यास्वरूपगन्धिनी वागस्य प्रसृता।

कारण है, मेरा मन ऐसा विश्वास नहीं कर रहा है, क्योंकि इसमें मेरे विषयमें स्नेहकी बास भी नहीं मिल रही है॥

विषयवासना—फिर यहाँ दूसरा क्या कारण हो सकता है?

राजा—(उन्मादीकी तरह) विद्या मेरी आँखोंसे मधुलहरीकी तरह अभी अभी देखी गई है, दीखने पर मेरी आँखोंने उसका अभिनन्दन किया, इस समय सम्पूर्ण विश्व मेरे लिये तन्मय हो रहा है॥ ३७॥

अविद्या—विषयवासने, सुना तुमने? राजाका यह विद्यानुरागकृत सम्मोहका ही विलास है।

विषयवासना—आपका सन्देह ठीक निकला। अस्तु, फिर सोचें।

चित्तशर्मा—(स्वगत) हाय, गलती हुई। यह तो मेरे प्रिय मित्रकी विद्यानुराग-परवशता है। मैं उक्तिको दूसरी दिशामें लगाता हूँ।

(प्रकट) देवि, राजाका हृदय उपासनाओंमें आसक्त हो रहा है, इसीलिये यह 'मधुलहरी' 'अभिनन्दन' आदि कहते जाते हैं। इनकी इन उक्तियोंमें मधुविद्याके स्वरूपकी गन्ध है।

विषयवासना—भट्टिनि, विमर्शविषय एवायमस्य विकारः।

अविद्या—कामं विमृश्यताम्। मम तु न सन्देहः। विद्यानुरागोन्मादविजृम्भितमेवैतत्। हन्त, बहिःप्रवृत्त्युपलम्भाय प्रहिता किमद्याप्यसूया चिरयति।

(ततः प्रविशत्यसूया।)

(असूया राजानं प्रणम्य देव्याः समीपे निषीदति।)

देवी—(अपवार्य।) अये असूये, काम्योपासनादर्शनप्रकरणे किमपि पर्युत्सुकितः स्तब्ध इव दृश्यते देवः। तत्किमत्र कारणं भवेत्।

असूया—देवि, तदिदमेव वक्तुकामागतास्मि।

प्रवृत्तिः—कथमिव।

असूया—'तत्रभवती शिवभक्तिरेतास्वेवोपासनासु विद्यामपि राजमात्रदृश्यामनुप्रवेशितवती' इति ततस्ततः संचरन्त्या मया श्रुतमभूत्।

प्रवृत्तिः—युज्यते हि तादृशीषु तादृशो महान्प्रभावः।

विषयवासना—स्वामिनि, यह इनका विकार विचारका विषय है।

अविद्या—तुम लोग भले ही विचार करो, मुझे तो सन्देह नहीं है। यह विद्याके विषयमें ही रागकृत उन्मादका विलास है। हाय, बाहरकी खबर लानेके लिये भेजी गई असूया अब भी क्यों देर कर रही है?

(असूयाका प्रवेश)

(असूया राजाको प्रणाम करके समीपमें बैठती है)

देवी—(दूसरोंसे छिपाकर) अरी असूया, काम्योपासनाओंके दर्शनके सिलसिलेमें राजा कुछ उत्सुक तथा स्तब्ध दीख रहे हैं, इसमें क्या कारण हो सकता है?

असूया—देवि, यही तो मैं कहने आई हूँ।

प्रवृत्ति—सो कैसे?

असूया—पूज्या शिवभक्तिने इन्हीं उपासनाओंके बीचमें विद्याको भी राजमात्रदृश्य रूपमें प्रवेशित कर दिया है, ऐसा मैंने इधर-उधर घूमते हुए सुना है।

प्रवृत्ति—उन लोगोंमें उस तरहकी महिमाका होना संभव है।

अविद्या—(स्वगतम् ।) हन्त, किमिदमापतितम् । अभिमतसिद्धये यतमानायास्तत्प्रतीपमुपनमितं दैवेन । तदितोऽपकृष्य विषयान्तरप्रदर्शनेन देवो विनोदयितव्यः । (प्रकाशम् ।) महाराज, स्थिरप्रणयेन भवता निकाममभिनन्दितास्मि । किमतः परं मम प्रियमस्ति ।

चित्तशर्मा—(जनान्तिकम् ।) हन्त, तदुक्तिरेव तदनर्थनिदर्शनतया प्रवृत्ता । भवतु । एवमेव ।

अविद्या—तदग्रतो गच्छामि । सुचिरमिह परिभ्रमणपरिश्रान्तमात्मानमवस्थापयितुं न पारयामि । (राजानं चिरं निर्वर्ण्य ।)

मामेवं विविधोपभोगललितामुत्सृज्य किं लप्स्यते
भूयः प्रागिव सा दशा परिणमेदात्मावशेषीकृता ।
वञ्च्यन्ते करणान्यमूनि तु परं किं तत्रापश्यन्मुखं
साकूतस्मितकेलिलोलनयनं बिम्बाधरं पास्यसि ॥ ३८ ॥

अविद्या—(स्वगत) हाय, यह क्या आ पड़ा, मैं अपने अभीष्टकी सिद्धिका प्रयास कर रही थी, और भाग्यने उसके विपरीत अनिष्ट उपस्थित कर दिया । अतः यहाँसे हटाकर राजाको दूसरे विषयोंके दर्शनसे विनोदित करना चाहिये । (प्रकट) महाराज, आपके दृढ़ अनुरागसे मैं अत्यन्त प्रसन्न हूँ, इससे बढ़ा मेरा क्या प्रिय होगा ।

चित्तशर्मा—(दूसरोंसे छिपाकर) हाय, इसकी यह उक्ति ही अनर्थका प्रमाण है । अस्तु, यही ठीक है ।

अविद्या—मैं आगेकी ओर जाती हूँ, यहाँ बहुत देरसे भ्रमण करती हुई मैं थक सी गई हूँ, अब मैं यहाँ नहीं रह सकती हूँ । (राजाकी ओर देर तक देखकर)

नाना प्रकारके भोगोंसे रमणीया मुझ प्यारी ललनाको इस प्रकार छोड़ कर तुम क्या पा लोगे ? फिर तुम्हारी वही दशा होगी कि तुम स्वमात्रशिष्ट—असहाय निर्लिप्त हो जाओगे । इन इन्द्रियोंको क्यों धोखा देते हो, उस स्थितिमें (आत्ममात्रशेषतादशामें) विलास भावसे भरे नयनोंसे युक्त किस मुखको देखते हुए अधरबिम्बका रसास्वादन करोगे ? ॥ ३८ ॥

किं च ।

न वाग् न रूपं न रसो न गन्धो न स्पर्शनं वा सुखहेतुरस्ति ।
भवानहो कं गुणमाकलय्य विद्येति संमुह्यति वा न जाने ॥ ३६ ॥

(इति सकोपा सपरिवारा गन्तुमिच्छति ।)

राजा—(सभ्रूभङ्गम् ।) किमये चित्तशर्मन्, विद्यामधुकृतं ममोन्मादमियदतिभूमिं गतमुपेक्षितवानसि । अतः किलैवमकाण्डे दुर्मनायते देवी ।

चित्तशर्मा—यदर्थोऽयमारम्भः । अथवा ।

मोहस्य किल संवेगः केनापि न निवार्यते ।
कोऽनुरुन्धीत वा वेगं नीचप्रवणपाथसाम् ॥ ४० ॥

राजा—(स्वगतम् ।) सम्यगनुशासितोऽस्मि कामादिप्रवणोऽहं 'नीचप्रवण' इति वयस्यस्य संबोधनेन ।

अविद्या—अलमलममीभिरसारोपचारैः । (इति सकोपं सपरिवारा निष्क्रामति ।)

और—विद्याकी न वाणी है न रूप, न रस है न गन्ध, न स्पर्श है जो सुखका हेतु हो । न जाने, आप विद्यामें कौन सा गुण पाकर उसमें आसक्त हो रहे हैं ॥ ३९ ॥

(सकोप अपने परिवारके साथ जाना चाहती है)

राजा—(भ्रूभङ्गके साथ) अजी चित्तशर्मा, तुमने विद्यामधु द्वारा उत्पादित मेरे इतने बड़े हुए उन्मादकी उपेक्षा कर दी, इसीसे देवी असमय में उदास हो रही हैं ।

चित्तशर्मा—इसीलिये तो यह सारा प्रयास है । अथवा—

मोहके वेगको कोई नहीं रोक सकता है । नीचेकी ओर जाने वाले जलके वेगको कौन रोक सकता है ? ॥ ४० ॥

राजा—(स्वगत) कामादिमें आसक्त मुझको मेरे मित्रने 'नीचप्रवण' शब्द द्वारा संबोधित करके बड़ी अच्छी तरह सावधान कर दिया है ।

अविद्या—इन अभिसारके उपायोंसे क्या लाभ ? (कोपसे सपरिवार जाती है)

उपासना—हन्त, बलवता विषयान्तरेण विफलीकृतो नः संरम्भः। (इति समन्दाक्षं तिरोधत्ते।)

(सहैव ताभिर्विद्यापि।)

राजा—सखे चित्तशर्मन्, भवतु। यथाकथंचिदखिलमपि समये कथमपि समाधीयते। दुर्लभं तु लब्धमेव। तदितः परमविलम्बितमेव कार्यसिद्धौ व्यावर्तव्यमस्माभिः।

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे।)

इति पञ्चमोऽङ्कः।

उपासना—हाय, बलवान् विषयान्तरने हमारे प्रयास व्यर्थ कर दिये।

(लज्जासे छिप जाती है)

(उन्हींके साथ विद्या भी छिप जाती है)

राजा—सखे चित्तशर्मा, छोड़ो इन बातोंको। किसी तरह सारी स्थितिका समाधान यथासमय हो जाता है। दुर्लभ वस्तु तो मिल ही गई। अब इसके आगे शीघ्र ही कार्यसिद्धिके लिये तत्पर हो जाना है। (सभीका प्रस्थान)

पञ्चम अङ्क समाप्त

षष्ठोऽङ्कः

(ततः प्रविशति चित्तशर्मा ।)

चित्तशर्मा—अद्य खलु दहरोपासनादिभिः सह विद्यादर्शनप्रभृति-निकाममस्वस्थहृदयो महाराजः । तथा हि ।

विश्लेषव्यथया चिरेण हृदयानुस्यूतया कर्शितो
निश्वासेन घनोष्मणा मलिनयन्नोष्ठं निसर्गारुणम् ।
म्लायन्मुखपङ्कजो न भजते निर्वेशलेशं मना-
गन्तः कोटरलग्नपावक इव श्रीखण्डशाखी चिरात् ॥ १ ॥

एवमेव महाराजदर्शनप्रभृति सा विद्यापि नितान्तदुःसहेन विरहसंता-पेन परिभूयत इति बहुधा श्रूयते । तथा हि ।

नैदाघोष्मनिमीलदुत्पलदलच्छायामुषी चक्षुषी
ज्योत्स्नाहीनशरत्सुधाकरसखं वीतप्रसादं मुखम् ।

(चित्तशर्माका प्रवेश)

चित्तशर्मा—आज महाराजने जबसे दहरोपासना आदिके साथ विद्याको देखा है तबसे वह नितान्त अस्वस्थहृदय हो रहे हैं । क्योंकि—

हृदयमें लगी वियोगव्यथासे कृशकाय राजा अत्युष्ण निश्वासोंसे स्वभावतः रक्तवर्ण अपने अधरोंको मलिन बना रहे हैं, उनका मुखकमल म्लान हो रहा है, उन्हें कहीं चैन नहीं मिल रही है, उनकी स्थिति ठीक वैसी ही है जैसी कोटरमें अग्निशिखा धारण करनेवाले श्रीखण्ड वृक्षकी स्थिति होती है ॥ १ ॥

इसी तरह वह विद्या भी—जबसे उसने महाराजको देखा है तबसे—असह्य विरह-सन्तापसे परिभूत हो रही है, यह बात कई बार सुनी गई है, उसकी आँखें निदाघकालकी भीषण ऊष्मासे मुरझाये हुए उत्पलकी तुलना धारण कर रही हैं, ज्योत्स्नारहित शरत्कालिक चन्द्रमाकी तरह उसका मुख प्रसन्नताका परित्याग कर रहा है, उसकी देह उसी तरह उजली हो रही है जैसे फूली हुई

उद्भूतप्रसवेव लोध्रलतिका धत्ते तनुः पाण्डुता-
मङ्गैरेवमनङ्गतन्त्रललितैरास्ते विनिद्रा चिरम् ॥ २ ॥

अपि च।

आलीभिः किल शायिता मरकतस्निग्धे नलिन्या दले
पाथोबिन्दुरिव प्रकामतरला बालाधिकं म्लायति।
सिक्ताश्चन्दनबिन्दवश्चुरुचुरायन्ते स्तनाभोगयो-
र्मुक्ता भान्ति च सुभ्रुवः स्तवकयोः सक्ता मिलिन्दा इव ॥ ३ ॥

अतो न विलम्बसहा दशेयमस्या इति करुणया मैत्रीमुखादभिधाय प्रेषितम्। तदनयोरितरेतरप्ररोचनविषये यत्नो न विधेय एव। परं त्वसूयाभिहितवृत्तान्तश्रवणप्रभूत नितान्तपरिकुपिता तावदविद्या कथमिव समावेया स्यात्। (विचिन्त्य।) हन्त, लब्धोऽयमुपायः। तदेवं समाधास्ये। (अग्रतोऽवलोक्य।) कथमसूया।

(ततः प्रविशत्यसूया।)

असूया—प्रेषितास्मि देव्याहमविद्यया चित्तशर्माणमभिधातुम्। तमहं

लोध्रलता, इस प्रकार कामतन्त्रसे ललित अङ्गोंके साथ वह चिरकालसे विनिद्र बनी हुई है ॥ २ ॥

सखियों द्वारा मरकत मणिकी तरह चिकने नलिनीदलपर सुलाई गई बाला विद्या जलबिन्दुकी तरह नितान्त चञ्चल होकर बहुत कष्ट प्राप्त करती है, उसके स्तनमण्डलपर डाली गयी चन्दनकी बिन्दुएँ तत्काल सूखकर चुर-चुर हो जाती तथा उसके केशपाशमें लगी मुक्तायें भ्रमरकी तरह लगती हैं ॥ ३ ॥

अतः उसकी स्थिति विलम्ब सहनके योग्य नहीं है यह बात करुणाने मैत्रीके मुखसे कहला भेजा है। अतः राजा तथा विद्याके परस्पर प्रलोभनके संबन्धमें प्रयास करनेकी आवश्यकता नहीं ही है। हाँ, असूया द्वारा कही गई बातें सुन लेनेके बाद नितान्त कुपिता अविद्याको कैसे समझाया जाय? (सोचकर) अहा, उपाय सूझ गया, उसका समाधान यों कर लूँगा। (आगेकी ओर देखकर) क्यों, असूया है?

(असूयाका प्रवेश)

असूया—देवी अविद्याने मुझे चित्तशर्मासे कुछ कहनेको भेजा है, मैं उन्हें

क्व पश्यामि । (पुरतोऽवलोक्य ।) दिष्ट्या सोऽयमित एवाभिवर्तते चित्तशर्मा । यावदेनमुपसर्पामि । (उपसृत्य ।) आर्य, देवी समाज्ञापयति—'वयस्य, तदेवं देवो मयि विमुखतां प्रतिपद्यमानो विमतासक्त एव ननु शाठ्यमवलम्बते । भवतापि न खलु कश्चिदिहोपायश्चिन्त्यते' इति ।

चित्तशर्मा—अये, मद्वचनादुच्यतां देवी ।

असूया—किमिति ।

चित्तशर्मा—प्रकृतिकोपनायास्तव निकामकार्कश्येन वैरस्यमुपलभ्य निर्विण्णः स्वयमपि राजा 'बृहदारण्यपरिसरे कुत्रापि शिवक्षेत्रादिषु तापसैः सह चिरं निवत्स्यामि' इति चिन्तयन्नास्ते । त्वं पुनरेवं मामुपालभसे । किमहं करोमि । भवतु । क्रियतामेवम् । 'त्वया कंचित्कालं सह परिवारेण कोपागारमनुप्रविश्य स्थीयताम् । राजैव यदि प्रसादनाय कदाचिदागच्छेत्तदापि सरलतया झटिति प्रसादो न करणीयः । तदुपरि सकलमहमेव समीकरिष्यामि' इति ।

असूया—यदाज्ञापयत्यार्यः । (इति निष्क्रान्ता ।)

कहाँ देख पाऊँगी । (आगे देखकर) भाग्यवश वह चित्तशर्मा इधर ही चले आ रहे हैं, जबतक मैं उनके पास चलूँ ।

(समीप जाकर) आर्य, देवीजीने कहा है कि—वयस्य, राजा मुझसे इस प्रकार विमुख होकर शत्रुपक्षमें मिले हुएकी तरह शठताका व्यवहार करते हैं, आप भी इसका कुछ उपाय नहीं सोच रहे हैं ।

चित्तशर्मा—जाकर मेरी ओरसे देवीसे कह देना कि—

असूया—क्या ?

चित्तशर्मा—"स्वभावतः कोपना आपकी नितान्त कर्कशताके कारण विरस भावसे खिन्न राजा स्वयं सोचा करते हैं कि 'बृहद् अरण्यके समीप किसी शिवक्षेत्र आदि स्थानमें कुछ दिनों तक तापसोंसे सत्सङ्ग करूँगा' । और आप इस तरह मुझे उलाहना देती हैं । मैं क्या करूँ ? अस्तु, ऐसा करूँगा । राजा ही जब आपको मनाने जायँ तो भी आप सरलतासे प्रसन्नता नहीं दिखावें, उसके आगे फिर मैं सब कर लूँगा ।

असूया—आपका जो आदेश । (जाती है)

चित्तशर्मा—यावदहमपि विजने शृङ्गारवने मदनपर्याकुलस्य सवयसो महाराजस्य परिसरवर्ती भवामि। (इति निष्क्रान्तः।)

प्रवेशकः।

(ततः प्रविशति क्रोधागारं सपरिवारा देवी।)

देवी—सखि विषयवासने, कियदनुसृतोऽपि देवो मयि विरसहृदय एव। तथा हि।

यातं तत्प्रणयानुबन्धि गरिमस्फीतं मयि प्रेक्षणं
पृष्टं चेत्प्रतिवक्ति किंचन परासक्तं विकर्षन्मनः।
अभ्याशागतमुत्तमर्णमिव मामभ्यागतामीक्षते
चेतः कृन्तति नीरसानुलपनैर्बाह्योपचारैरपि॥ ४॥

प्रत्युत 'तापसाधिष्ठितेष्वरण्येषु तपश्चरामि' इति वदति। किमत्र कर्तव्यम्।

विषयवासना—देवि, मा भैषीः। यतश्चित्तशर्मायमस्माकमनुकूलस्तिष्ठति।

देवी—(विचिन्त्य।) 'तेषु तेषु सिद्धक्षेत्रेषु तपश्चरणाय गते राजनि

चित्तशर्मा—जब तक मैं भी एकान्त शृङ्गारवनमें मदनपर्याकुल प्रिय वयस्य महाराज का पार्श्ववर्त्ती होता हूँ। (जाता है)

(प्रवेशक समाप्त।)

(कोपभवनमें बैठी सपरिवार अविद्याका प्रवेश)

देवी—सखि विषयवासने, बहुत मनानेपर भी महाराज मुझपर रूठे ही हुए हैं, क्योंकि प्रेमपूर्ण भावसे गौरवपूर्ण मुद्रामें जो मुझे देखा करते थे वह तो दूर गया, अब कुछ पूछनेपर यदि उत्तर देते हैं तो ऐसा लगता है कि कहीं अन्यत्र आसक्त मनको खींच रहे हों, समीपमें पहुँच जानेपर मुझे उसी भावसे देखते हैं जैसे ऋणी व्यक्ति अपने महाजनको (त्रस्त भावसे) देखता है, और उनके बाह्य शिष्टाचार तथा नीरस कथोपकथन मेरे हृदयको विदीर्ण कर देते हैं॥ ४॥

प्रत्युत—वह कहते हैं कि "मैं तपस्वियों द्वारा अधिष्ठित जङ्गलोंमें निवास करूँगा" इस प्रसङ्गमें क्या किया जाय?

विषयवासना—देवि, डरिये मत। यह चित्तशर्मा हमलोगोंके अनुकूल है।

देवी—(सोचकर) राजा जब तपस्या करनेके लिये उन सिद्धक्षेत्रोंमें

परा शिवभक्तिरुपेत्य कदाचित्तया सह संघट्टनाय यत्नं करिष्यति' इति चिन्तातरलितं मम हृदयम् ।

विषयवासना—सखि, तत्रापि किंचित्प्रतिविधानमध्यवसितमस्ति ।

देवी—कथमिव ।

विषयवासना—

भवदनभिमताया देवि तस्यास्तु भक्ते-
रनभिमतविधाना तामसी राजसी च ।
प्रचरति शिवभक्तिस्ते ममाप्यन्तरङ्गे
झटिति विघटयिष्ये तन्मुखात्तत्प्रयत्नम् ॥ ५ ॥

तदेनयोः समुत्साहनाय समये राजसंमुखीकरणाय च सद्य एव विसृज्यतामसूया ।

देवी—सम्यगुचितमेव चिन्तितम् । असूये, सपदि वेदारण्यमधिगम्य तत्र विनयेन तामसराजसशिवभक्त्योः सविधमुपसृत्य मद्वचनाद् ब्रूहि—'यदि खलु तत्र जीवराजः समागच्छति तमभिमुखीकृत्य भवद्विधेयेषु काम्यक्रियोपासनादिष्वेव संनहनीयः' इति ।

जायेंगे तब शिवभक्ति आकर कदाचित् राजाको (विद्या नामकी) उस रमणीके साथ मिलानेका प्रयास करे, इसी चिन्तासे मैं चञ्चल हो रही हूँ ।

विषयवासना—सखि, उसके लिये भी कुछ उपाय किया जा चुका है ।

देवी—सो क्या ?

विषयवासना—आपकी शत्रु हैं शिवभक्ति; और शिवभक्ति राजसी तथा तामसी श्रद्धाको नहीं देखना चाहती हैं, जहाँ शिवभक्ति जायँगी वहाँ वे दोनों हमारी अन्तरङ्ग सखियाँ—राजसी तथा तामसी श्रद्धायें भी जायँगी उन्हींके द्वारा मैं शिवभक्तिका सारा प्रयास विघटित कर दूँगी ॥ ५ ॥

अतः राजसी तथा तामसी श्रद्धाको उत्साहित करने तथा राजाके सामने पहुँचानेके लिये असूयाको भेजा जाय ।

देवी—तुमने ठीक ही सोचा है । असूये, तुम अभी वेदारण्य जाकर नम्रतापूर्वक तामस तथा राजस शिवभक्तिसे मेरी तरफसे निवेदन करना कि "यदि जीवराज वहाँ जायँ तो उनको मिलाकर स्ववशवर्त्ती काम्यक्रिया तथा उपासनामें ही उचत कराना" ।

असूया—यदादिशति भट्टिनी। (इति निष्क्रामति।)

देवी—विषयवासने, तदितः परमानुकूल्यमुपागत एव महाराजः।

(ततः प्रविशति चित्तशर्मणा सह राजा।)

राजा—सखे चित्तशर्मन्, अपि नाम मया प्रसादितापि देवी मामवधीर्य कोपागार एव निवसेत्।

चित्तशर्मा—कः संदेहः। दुष्परिहरतया तथातिभूमिं गमितो हि मया तदीयकोपः, यथा स्वामिकार्यमनन्तरायमेव संपद्येत।

राजा—भवतु। यावदेनामुपसर्पामि। (उपसर्पति।)

(देवी राजानमवलोक्य सुखं परावर्त्य तिष्ठति।)

राजा—

विसृज सुतनु मौनं विस्मरेदं व्यलीकं
प्रणयिषु ननु कोपः पद्मपत्रोदबिन्दुः।
अधर इव किमेतद्रागमभ्येति चक्षु-
र्गमय हृदयमेनं गाहमानासुखानि॥ ६॥

असूया—स्वामिनीकी जैसी आज्ञा। (जाती है)

देवी—विषयवासने, इसके बाद तो महाराज परम अनुकूल हो जायेंगे।

(चित्तशर्माके साथ राजाका प्रवेश)

राजा—सखे चित्तशर्मा, क्या यह भी संभव है कि मेरे द्वारा मनाई जानेपर भी देवी क्रोधागारमें ही रह जायँ, मेरी उपेक्षा करदें।

चित्तशर्मा—इसमें क्या सन्देह? मैंने उनके कोपको इतना बढ़ा दिया है कि आपका कार्य बिना किसी बाधाके हो जायगा।

राजा—अस्तु, तब तक इसके पास चलूँ। (समीप जाता है)

(देवी राजाको देखते ही मुँह घुमाकर बैठ जाती है)

राजा—हे सुन्दरि, इस अपराधको भुला दो, मौन त्याग करो, प्रियजनपर किया गया क्रोध तो कमलपत्रपरके जलकी तरह चपल होता है। तुम्हारे अधरकी तरह यह आँखें क्यों लालिमा धारण कर रही हैं? सुखोपभोग में लगाकर इस आँखकी लालिमाको हृदयमें स्थान दो॥ ६॥

देवी—सखि विषयवासने,

किमेतैरायासैर्व्रजतु स यथेष्टं मम किल
स्वभावोऽयं कीदृक्प्रणयपदभूतेऽपि विषये ।
मनागदृष्टे शाठ्ये मधुनि विषसंपृक्त इव मे
क्षणध्वस्तप्रेम प्रतरति पुनर्जातु न मनः ॥ ७ ॥

राजा—हन्त, कियदनुनीतापि प्रेयसी न प्रकृतिमापद्यते ।

(देवी तमनालोकयन्त्येव सभ्रुकुटि चित्तशर्माणं पश्यति ।)

चित्तशर्मा—(साकूतम् ।) देवि, प्रसीद प्रसीद । भवदधीन एव राजा । ननु चिराय निर्विद्यते ।

राजा—हन्त, कियदनुसृतापि नितान्तविमुखी मामवधीरयत्येव । तदहमितः परमरण्येषु कुहचिदाश्रमेषु तापसैः सह निवृत्स्युन्मुख एव तपश्चरेयम् । (इति सकोपाटोपं परावृत्य गच्छति ।)

(चित्तशर्मा देवीं संज्ञाप्य राजानमनुसरति ।)

देवी—अयि प्रवृत्ते, वयमपि तदनालक्षिता एव राजानमनुसरामः ।

देवी—सखि विषयवासने, इनके इन प्रयत्नोंसे क्या होगा, वह जहाँ चाहें, जायँ, यह कैसा स्वभाव है ? स्नेहपात्र वस्तुमें भी यदि मुझे कुछ शठता दीख जाती है तो मेरा प्रेम एक पलमें समाप्त हो जाता तथा मेरा मन फिर उस वस्तुमें उसी तरह नहीं रमता है जैसे विषमिश्रित अन्नमें ॥ ७ ॥

राजा—हाय, कितना मनाया, फिर भी मेरी प्रिया नहीं मानती है ।

(देवी राजाको बिना देखे ही भ्रूभङ्गके साथ चित्तशर्मा की ओर देखती है)

चित्तशर्मा—देवि, प्रसन्न हों, आप प्रसन्न हों, राजा आपके ही वशमें हैं, यह बहुत देरसे खिन्न हो रहे हैं ॥

राजा—अहा, कितना अनुनय किया फिर भी यह नितान्त विमुखी बनी हुई मेरा तिरस्कार ही करती जा रही है । अच्छा, तो मैं अब जङ्गलोंमें, किसी आश्रममें तापसोंके साथ निवृत्युन्मुख होकर तपस्या करूँगा ।

(कोपके वेगसे लौटकर जाता है)

(चित्तशर्मा देवीको समझाकर राजाका अनुसरण करता है)

देवी—अरी प्रवृत्ति, हम लोग भी छिपकर राजाका अनुसरण करें ।

प्रवृत्तिः—उचितमाह देवी।

राजा—कः कोऽत्र भोः।

(प्रविश्य।)

दौवारिकः—अयमस्मि।

राजा—संकल्प, वेदारण्यमार्गमादेशय।

संकल्पः—इत इतो देव!

(सर्वे वेदारण्यगमनं नाटयन्ति।)

राजा—(जनान्तिकम्।)

सत्यं नैव सुखं कदाचिदनया जायेत न प्रत्युत
प्रत्यूहः प्रकृतस्य सांप्रतमसावुच्चस्तचैश्रेयसः।
त्यक्तव्या महती रुजेव बहुना यत्नेन दैवादसा-
वस्मानुत्सृजति स्वयं यदि ननु ध्वस्तानि दुःखानि नः ॥८॥

चित्तशर्मा—वयस्य, तदेतत्प्रकरणं च भवदाश्रयं च विज्ञानतयैव मया कृतमेवं संविधानम्।

राजा—सखे चित्तशर्मन्, अपि नाम हृदयानन्दचन्द्रिकाप्रियतमा मयात्र समधिगम्येत।

प्रवृत्ति—देवीजी, ठीक कह रही हैं।

राजा—कोई है यहाँ?

(नेपथ्यमें)

दौवारिक—मैं हूँ।

राजा—संकल्प, वेदारण्यका मार्ग दिखलाओ।

संकल्प—महाराज, इधरसे चला जाय, इधरसे।

(सभी वेदारण्य जानेका अभिनय करते हैं)

राजा—(छिपाकर) इस अविद्यासे कभी सच्चा सुख तो मिल ही नहीं सकता है, प्रत्युत इससे उच्चतर प्रकृत श्रेयमें विघ्न-बाधा पड़ सकती है, अतः यह प्रयत्नपूर्वक महारोगकी तरह परिहार्य है, यदि यह स्वयम् मुझे छोड़ रही है तब तो हमारे सारे क्लेश (अनायास) मिट गये ॥ ८ ॥

चित्तशर्मा—यह प्रकरण तथा आपके प्रसङ्गका समस्त वृत्त मैंने विज्ञान-भावसे ही किया है।

राजा—सखे चित्तशर्मा, हृदयको चन्द्रिकाकी तरह आनन्दित करनेवाली प्रियतमा यदि यहाँ मिल जाय?

चित्तशर्मा—कः संदेहः । अघटितघटनापटीयसि भवदभ्युदयैकताने मयि तव सचिवे जाग्रति किमिव नाधिगम्येत । शृणु तावत् ।

संदिश्ये यदि वत्सलेन भवता कार्येषु केष्वप्यहं
कुर्यामेव हि मन्दरस्य शिखया मेरोः शिखाग्रन्थनम् ।
तैलं पाणितले निधृष्य सिकता निष्यन्दयेयं क्षणात्
कान्तासंघटनं मिथः सरसतासंपादनं मे कियत् ॥ ९ ॥

राजा—सखे, त्वयि सर्वमुपपद्यत एव । (स्मरणमभिनीय ।)

निर्व्याजोपनमद्दयासरलया भक्त्या किमप्यद्भुतं
कन्यारत्नमदर्शि तत्तडिदिवाकाशे विलिल्ये पुनः ।
किं नु स्वप्नविशेष एव मनसः कश्चिद्विकारोऽथवा
तत्त्वं तस्य न वेद्मि तत्परिणये पुष्णाति तृष्णां मनः ॥ १० ॥

अपि च ।

चित्रेणापहृतं तदाकृतिमता चित्तं ममार्धं सखे
भूयः सा मम भाग्यतो नयनयोः पन्थानमासादिता ।

चित्तशर्मा—सन्देह क्या है ? अघटितघटनापटु तथा आपके अभ्युदयमें निरत हमारे समान मन्त्रीके विद्यमान रहते क्या नहीं मिल सकता है ?

सुन लीजिये—

किसी कार्यमें यदि आप प्रेमसे आज्ञा दें तो मैं मन्दराचलकी चोटीसे सुमेरु पर्वतकी चोटीका गंठबन्धन कर सकता हूँ, हाथमें बालू लेकर और उसे मसलकर क्षणभर तेल निकाल दे सकता हूँ, किसी रमणीसे मिलाना तथा उसकी सरसताका संपादन करना कौन सी बड़ी बात है ? ॥ ९ ॥

राजा—सखे, तुमसे सब संभव है । (स्मरण करनेका अभिनय करके)

अकपट भक्तिसे युक्त दयाके कारण तुमने जो कन्यारत्न दिखलाया था वह आकाशमें बिजलीकी तरह तत्काल विलीन हो गई, क्या वह स्वप्न था या कुछ मानसिक विकार था ? उसका तत्त्व मेरी समझमें नहीं आ रहा है, केवल मन उससे विवाहकी इच्छा पालता जा रहा है ॥ १० ॥

उसकी आकृतिसे युक्त चित्रने मेरा आधा मन हर लिया, सौभाग्यवश जब वह सुन्दरी मेरे नयनोंके सामने आई तो उसने मेरा पूरा मन हर लिया । मन

निःशेषं तदपाहरद्विधुमुखी सर्वैः सहैवेन्द्रियैः
प्राणा एव लुठन्ति केवलमिमे गात्रेषु मे संदिताः ॥ ११ ॥

सखे चित्तशर्मन्, अपि नाम तदेनामधिकृत्य समवकर्णिता कापि वार्ता।

चित्तशर्मा—अथ किम्।

राजा—वयस्य, कथय कथय।

चित्तशर्मा—अथ किल तत्रभवत्या प्रहिता मुदिता मामुपेत्य तद्वचनादभिहितवती। यथा किल—'अये चित्तशर्मन्, जीवराजस्य विद्याभिलाषजनितविरहसंतापातिशयः सत्सङ्गेन यथावदिहाभिमतः। श्रुत एव खलु भवता मैत्रीमुखेन जीवराजविरहखेदपरिभवो विद्याया अपि। तदेवमुभयानुरागे परां कोटिमधिरोहति कार्यस्य विलम्बनमनुचितमेव। अतः कथमपि जीवराजो वेदारण्यपरभागमचिरेणैव प्रापणीयः। अहमपि तदागमनसमनन्तरमेव कार्यस्य सिद्धये कृतसंधाना भवामि। अन्यदपि किंचिदिह कार्यमावश्यकमभिधीयते। तदवहितेन श्रोतव्यम्—अत्र तावदस्मदनभिमताचारे तामसी राजसी च शिवभक्ती निकाममोजायेते।

ही केवल नहीं, उसने हमारी इन्द्रियाँ भी हर लीं, मेरी देहमें बँधे हुए यह केवल मेरे प्राण ही लोट रहे हैं ॥ ११ ॥

सखे चित्तशर्मन्, क्या उसके संबन्धमें तुमने कुछ बात सुनी है?

चित्तशर्मा—और क्या?

राजा—मित्र, बताओ, बताओ।

चित्तशर्मा—आज पूज्या शिवभक्ति द्वारा भेजी गई मुदिता मेरे पास आई और उनकी ओरसे कह गई कि "अजी चित्तशर्मा, जीवराजके विद्याविषयक अभिलाषसे उत्पन्न विरहसन्तापके सम्बन्धमें सत्सङ्गने मुझसे सारी बात कही है। आपने भी मैत्रीके मुखसे जीवराजके विरहमें विद्याके खेदके प्रसङ्गमें सुना ही है। इस प्रकारसे दोनोंका अनुराग जब पराकाष्ठा पर आरूढ हो रहा है तब कार्यमें विलम्ब करना अनुचित ही है। अतः शीघ्र जीवराजको किसी तरह वेदारण्यपरभागमें प्रविष्ट कराया जाय। उनके वहाँ पहुँचते ही मैं कार्यमें तत्पर हो जाऊँगी। और भी इस प्रसङ्गमें कुछ आवश्यक कार्य बता रही हूँ, वह आप सावधानीसे सुन लें—इस संबन्धमें हमारे प्रतिकूल आचरण

तयोस्तावदेवं हृदयम्—'आवयोरिह जाग्रत्योरविद्याया नियोगमतिवर्तेत को नाम, स तावदत्र यदि विधिविहितान्यनुरुन्धीत तर्हि कामनामनुप्रवेश्य तमविद्याविधेयं कुर्वहे, यदि खलु नानुरुन्धीत तर्हि तत्प्रत्यवाय एव तमभिहत्य मोहादिवशे कुर्यात्, ईश्वरोऽपि किमत्र कुर्वीत' इति । अतः

नह्येतामिह ते नृपं सुखरुचीरुत्पाद्य पर्यायतः
कर्मोपासनजालकेऽतिगहने नैतत्पराणुद्यताम् ।
देवस्यैव हि शासनानि विधयो नामाविलङ्घ्या हि ते
भक्त्योः किं तु तयोर्मनागभिमतावाप्तिर्न संपाद्यताम् ॥१२॥

तदर्थमेवं करोतु वयस्यः । यथा—

विलासेष्वासक्तिं विदधदपि तद्भोगविमुखो
निरुद्धः कामिन्या निपुणरसिकः श्रोत्रिय इव ।
भजत्यत्रासक्तिं फलमनभिसंधाय चरितै-
रिदं यावद्विद्याधिगममुपदेशोऽस्य भवतु ॥ १३ ॥

करनेवाली तामसी तथा राजसी शिवभक्तियाँ प्रबल प्रयास कर रही हैं। उनके विचार यों हैं—कि "हम दोनोंके यहाँ रहते हुए अविद्याकी आज्ञाका उल्लङ्घन कौन कर सकता है ? यदि यहाँ पर जीवराज [विधिविहित कर्मोंका अनुरोध करेंगे तब कामनाका प्रवेश कराकर उनको अविद्याके अधीन कर दिया जायेगा, और यदि वह विधिविहित कर्मोंका अनुरोध नहीं करते हैं तब तो उसमें होने वाला प्रत्यवाय ही उनको ले जाकर मोह आदि के वशमें कर देगा, ईश्वर भी इसमें क्या करेंगे।" अतः—

राजसी तथा तामसी शिवभक्तियाँ सन्नद्ध रहें, वे राजाकी रुचि उत्पन्न करके क्रमशः कर्म तथा उपासनाके जालमें उन्हें फसावें, इसका विरोध नहीं करना है क्योंकि विधियाँ भी तो ईश्वरकी आज्ञा होनेसे अलङ्घ्य हैं, किन्तु राजसी तथा तामसी भक्तियोंके अभिमत अर्थकी सिद्धि नहीं होने दी जाय ॥ १२ ॥

उसके लिये आप ऐसा करें कि—जीवराजको विद्याकी प्राप्तिपर्यन्तके लिये ऐसा उपदेश दे दें कि वह विलासोंमें आसक्ति करते हुए भी उसके भोगोंसे उसी प्रकार विमुख रहे जैसे निपुणरसिक वैदिक कामिनीसे घिरे रहनेपर उसके भोगोंसे विमुख रहते हैं। आसक्ति हो लेकिन फलकी कामना न हो ॥ १३ ॥

अतो यावदहं निवृत्त्या सममीश्वरस्य दौवारिकमष्टाङ्गयोगं प्रहिणोमि। तावदिह वेदारण्यपूर्वभाग एव महेश्वरशासनरूपा विधयो यथायोगमनुरोद्धव्याः' इति।

राजा—हन्त, कियदनुकम्पते निरुपाधिवत्सला भगवती शिवभक्तिरस्मासु। (पुरोऽवलोक्य।) हन्त, दयितविषयकसंकथनरसाभिनिवेशवशादनवगतविप्रकर्षोऽयमस्माभिरधिगत एव वेदारण्यभागः। यदत्र शिक्षाकल्पादिनामानो विचित्रगहनरमणीयास्तदेकदेशभेदा दृश्यन्ते। (स्वगतम्।) उपपन्नमेवैतत्। (सकुतुकमितो विलोकयन्।) अत्र किल

नादब्रह्मविनोदिनो विजयते गान्धर्वविद्येति या
या विद्या विजयश्रियो जननभूश्चापेषुसंबन्धिनो।
जीवानन्दनिदानपारदगुणप्रख्यापयित्री च या
विद्याशेषतया विभाति सकलं भक्तिप्रभावान्मम॥ १४॥

चित्तशर्मा—किं बहुना। वैषयिकपरिपोषणैकनिरतो वात्स्यायनतन्त्र-

अतः जबतक मैं निवृत्तिके साथ ईश्वरके दौवारिक अष्टाङ्ग योगको भेजता हूँ। तबतक वेदारण्यके पूर्वभागमें ईश्वरीयआज्ञारूप विधियोंका यथासंभव अनुरोध करें"।

राजा—अहा, अकारणदयालु भगवती शिवभक्ति हम लोगोंपर कितनी कृपा करती है? (आगे देखकर) प्रियतमाके प्रसङ्गमें कथारसमें लीन होनेके कारण—दूरीका ज्ञान ही नहीं हो पाया और हम वेदारण्य भागमें चले आये। यहाँ शिक्षा, कल्प आदि नामके विचित्र गहन तथा रमणीय वेदारण्यके भाग दीख रहे हैं। (स्वगत) यह तो उचित ही है। (कौतुकसे चारों ओर देखते हुए) यहाँ पर—

नादमय ब्रह्मसे अपनेको विनोदित करनेवाली गान्धर्व विद्या, विजयलक्ष्मी प्रदान करनेवाली धनुर्विद्या, और जीवानन्दके कारणभूत पारदके गुणोंको प्रख्यापित करनेवाली आयुर्वेद विद्या, यह सारी विद्यायें पराविद्याके अङ्ग रूपमें मुझे यहाँ शिवभक्ति-कृपासे भासित होती हैं॥ १४॥

चित्तशर्मा—अधिक कहनेकी क्या आवश्यकता है? वैषयिक सुखोंको

सिद्धान्तोऽपि तदीयपरिणतिवैरस्योपनमदतिजुगुप्साहितनिर्वेदातिशय-फलितपरमार्थसुखस्वरूपजिज्ञासामुखेन विद्याशेषतयैवाध्यवसीयते।

राजा—(पुरोऽवलोक्य।)

गाढोद्बद्धजटासनीडनिविडव्यानद्धनीडोदर-
क्रीडन्नीडजकाकलीकलकलाटोपैरविक्षेपिणः।
देवे कापि निविष्टतुष्टमनसः शिष्टा इमे तापसाः
संघीभूय समापतन्ति क इमे धर्मा विशुद्धा इव॥ १५॥

अये विमृश्यताम्—इमे के इति।

संकल्पः—देव, संनिहितमिह भवन्तमवकर्ण्य पुण्याभिराशीर्भिर्योजयितुकामा वेदारण्यवासिनस्तापसाः संप्राप्ताः।

चित्तशर्मा—(कंचिदिव राजानमुपसृत्य। जनान्तिकम्।) वयस्य, मुख्याधिकारतया साधनचतुष्टयत्वेनाभिमता विवेकादयो मोहादिभिरनभिभूततया भवदुपनयनाय भगवत्या तापसवेषेण प्रहिताः।

पोषित करनेमें लगा हुआ कामशास्त्र भी तो पराविद्याका ही अङ्ग माना जाता है क्योंकि वह विषयसुखोंकी परिणामविरसतासे जुगुप्सा उत्पन्न कराकर उसके द्वारा निर्वेदको उत्पन्न करता है और तत्फलरूपतया परमार्थ-जिज्ञासामें सहायक बनता है।

राजा—(आगे देखकर) कसकर बाँधी गई जटाके अन्दर खूब अच्छी तरहसे निर्मित घोंसलोंमें खेलते हुए पक्षियोंके कलरव जिनके ध्यानको नहीं तोड़ सके हैं ऐसे यह विशुद्ध धर्मके सदृश प्रतीत होनेवाले तपस्वी कौन हैं जो किसी देवविशेषमें अपने सन्तुष्ट मनको निवेशित किये हुए दल बनाकर इधर आ रहे हैं॥ १५॥

अजी विचार करो, ये कौन हैं?

संकल्प—देव, आपका यहाँ आना हुआ है यह सुनकर ये वेदारण्यवासी तपस्वी आपको अपने पवित्र आशीर्वादसे युक्त करने आ रहे हैं।

चित्तशर्मा—(थोड़ा राजाके पास जाकर, छिपाकर) वयस्य, मुख्याधिकारके रूपमें साधनचतुष्टयके नामसे पुकारे जानेवाले विवेकादिको मोहादिसे सुरक्षित रूपमें आपको बुला लानेके लिये शिवभक्तिने तापसके रूपमें भेजा है।

राजा—(सपरितोषम् ।) वयस्य, तर्हि वयमभ्युपगच्छामः । (इत्युपगच्छति ।)

(ततः प्रविशन्ति विवेकाद्यस्तापसाः ।)

तापसाः—आदिष्टा वयमत्रभवत्या शिवभक्त्या—'जीवराजमधिगम्य विद्यापरिणयेऽधिकारनिर्वहणाय, तददृष्टपूर्वोऽयमस्माभिरिह कथं विधेयीकरणीयः । अथवा तदीयनर्मसचिवश्चित्तशर्मा परिचितपूर्वः, स एव सर्वमपि नः संविदधीत ।

(राजा सविनयादरमुपसृत्य सप्रश्रयाञ्जलिश्चित्तशर्मणा सहानमति ।)

तापसः—राजन्, महत्तरेण श्रेयसा युज्यस्व ।

चित्तशर्मा—(पुरतो निर्दिश्य ।)

विद्युत्ताण्डवडम्बरं जगदिदं मृत्योर्मुखान्तर्गतं
सत्यज्ञानसुखैकरूपममलं ब्रह्मैव तच्छाश्वतम् ।
तत्प्राप्ता वयमभ्युपाय इति च प्रज्ञानसंशीलना-
दन्तस्तोषविकासिवक्त्रकमलः सोऽयं विवेकः सुधीः ॥ १६ ॥

राजा—(प्रसन्नतासे) तो हम इनके पास चलें । (समीप जाता है)

(विवेकादि तापसों का प्रवेश)

तापसगण—हम लोगोंको शिवभक्तिने आदेश दिया है कि जीवराजके पास जाकर उन्हें विद्यापरिणयका अधिकार प्रदान करो । हमलोगोंने तो जीवराजको कहीं कभी नहीं देखा है, हम उन्हें किस प्रकार विद्यापरिणयके लायक बना सकेंगे ? अथवा उनका नर्मसचिव चित्तशर्मा हमारा परिचित है, वही सारा कार्य संपन्न करेगा । (राजा नम्रता तथा आदरके साथ हाथजोड़कर चित्तशर्माके साथ तापसोंको नमस्कार करता है)

तापस—राजन्, आप महत्तर श्रेयसे युक्त हों ।

चित्तशर्मा—(आगेकी ओर दिखाकर) बिजलीकी चमकके समान चञ्चल यह संसार मौतके मुखमें वर्त्तमान है, सच्चिदानन्दस्वरूप एक निर्मल ब्रह्मही सत्य है । हमलोगोंको उस ब्रह्मकी प्राप्ति करानेका साधन यही विवेक है, जो ज्ञानकी भावनासे विकसित मुखकमल धारणकर रहे हैं ॥ १६ ॥

अस्य नामनि स्मृतेऽपि मोहो न प्रभवत्येव । (पुरतो निर्दिश्य ।)

अयं विरागः परिशुद्धमूर्तिरलक्षितब्रह्मपुरंदरादिः ।
तदस्य दृष्ट्या न कुतोऽपि किंचित्कणात्कणीयान्कनकाचलोऽपि ॥१७॥

किञ्च—

मज्जत्वर्णवमेलनेन जगती कान्तारशैलोत्करै-
स्फुट्यद्भ्रश्यतु चान्तरिक्षमभितो नक्षत्रचन्द्रग्रहैः ।
कल्पान्तज्वलनः प्रसृत्य सकलं साटोपमालेढु वा
तत्त्वामर्शविनादिनोऽस्य तु दृशा लोमापि नो मीयते ॥ १८ ॥

तदेतस्य सन्निधाने कामः परासुरेव । (इतरतो निर्दिश्य ।) ताविमावप्राकृतसुखप्रापणकृतप्रातिभव्यौ अपरिमितसुकृतपरिपाकभूतौ शमदमौ ।

अपथविधाविनो विषयरूपनिपातकृतो
बहिरबहिश्चरेन्द्रियकरालतुरङ्गगणान् ।
दृढमवयम्य सद्गुणशतेन पदं परमं
गमयितुमीश्वरः शमदमप्रतिमो न परः ॥ १९ ॥

इनके नामके स्मरणसे भी मोहका प्रभाव नहीं पड़ता है । (आगे दिखाकर) यह विशुद्धमूर्ति तथा ब्रह्मा, इन्द्र आदि देवोंसे भी अलक्षित विराग हैं, इनकी दृष्टिमें कहीं कुछ नहीं है, सुमेरु पर्वत भी छोटेसे कणसे छोटा है ॥ १७ ॥

समुद्रोंके एक दूसरेसे मिल जानेके कारण वनों तथा पर्वतोंसे शुक्र पृथ्वी उसमें निमग्न होजाये, नक्षत्रों तथा ग्रहोंके साथ टूटता हुआ आकाश भ्रष्ट हो जाये, प्रलयकालिक वह्नि फैलकर सारी वस्तुओंको जलादे, तत्त्व-विचारमें लीन इन विरागके लिये बालभी नहीं बाँका हुआ है ॥ १८ ॥

अतः इनके सामने काम मराही हुआ है । (दूसरी ओर दिखलाकर) और अलौकिक सुखप्राप्तिमें मध्यस्थता करनेवाले अनन्त पुण्यपरिपाक स्वरूप ये दोनों शम-दम हैं ।

कुपथगामी तथा विषयरूप खाईमें गिरानेवाले बाह्य और आभ्यन्तर इन्द्रियरूप दुष्ट अश्वोंको सद्गुणरूप रस्सीसे कसकर नियन्त्रित करके परमपद तक पहुँचानेमें समर्थ—शम-दमके समान—कोई दूसरा नहीं है ॥ १९ ॥

राजा—(स्वगतम् ।) एतेन—'बहिरिन्द्रियनिग्रहः शमोऽयम् , अन्तरिन्द्रियनिग्रहो दमोऽयम्' इत्यभिहितं भवति ।

चित्तशर्मा—वयस्य, तदेतैरविश्लिष्टतयैव गम्यतामिष्टलाभाय ।

त्वय्यमीभिर्वृते दृष्टे संयमीन्द्रैर्वनाद्वनम् ।
नीयमानः स्वकार्याय स्मर्यते रघुनन्दनः ॥ २० ॥

अविद्या—विषयवासने, क एते राजानमभितः परिवार्य गच्छन्ति ।

विषयवासना—परिसरवर्तिनो योगक्षेमार्थमुपागताः केऽपि तापसाः स्युः ।

राजा—(पुरतो निर्दिश्य ।) किमिदमकाण्ड एव विद्युत्पुञ्जपिञ्जरितमिव सप्रकाशं नभो दृश्यते ।

संकल्पः—देव, भवदभ्युदयाय सकलमन्त्रतन्त्रपटलीर्नानाविधक्रतुविततीरुपासनाश्च संनिधाप्य राजसी तामसी च शिवभक्तिरितोमुखतया भवदुपगमं प्रतीक्षते ।

राजा—(स्वगत) इससे यह कहा गया कि 'अन्तरिन्द्रिय निग्रह दम' तथा 'बहिरिन्द्रिय निग्रह शम' है ।

चित्तशर्मा—वयस्य, आप इनसे बिना बिछुड़े अभीष्ट लाभके लिये जाइये । आपको इन तापसों के साथ एक वनसे दूसरे वनमें जाता देखता हूँ तो मुझे अपने कार्यके लिये एक वनसे दूसरे वनको ले जाये गये रघुनन्दनकी याद आजाती है ॥ २० ॥

अविद्या—विषयवासने, यह कौन हैं जो राजाको घेरकर चल रहें हैं ।

विषयवासना—समीपवर्त्ती तापस हैं जो राजासे अपनी सुख-सुविधाके लिये कुछ कहने आये हैं ।

राजा—(आगे की ओर दिखलाकर) यह क्या है कि एकाएक बिजली की राशिसे पीताभ आकाश चमकसा रहा है ?

संकल्प—देव, आपके अभ्युदयके लिये राजसी तथा तामसी शिवभक्ति सभी मन्त्र-तन्त्र-पटलों तथा नानाप्रकारके यज्ञसमुदायोंको समीपमें करके इसी ओर मुख किये आपके आगमनकी प्रतीक्षाकर रही हैं ॥

(राजा ससंभ्रमादरमभिगमनं नाटयति ।)

(ततः प्रविशतः शिवभक्ती ।)

शिवभक्तिः—यथाकथंचिदावाभ्यामैहिकामुष्मिकाभ्युदयविशेषेषु निकाममवकृष्य जीवराजोऽयमविद्याविधेयीकरणीयः ।

(राजा सप्रश्रयमुपसृत्य प्रणमति ।)

भक्ती—वत्स, सकलकल्याणभाजनं भूयाः ।

राजा—भगवत्यौ, मदुद्देशादिहोपगमनस्य प्रयोजनमवगन्तुमिच्छामि ।

भक्ती—वत्स, भवदभिनन्दनमन्तरेण न किंचिदिह नौ साधनीयमस्ति ।

राजा—सदृशमेव खलु यद्भवादृशीनां महानुभावानाम् । (पुरतो निर्दिश्य ।) भगवत्यौ, किमेतदतिबहलकंदलनसितशिखज्वालजालजटालानि कान्यपि महोमण्डलानि दृश्यन्ते ।

तामसी—भुवनहिताय बभूवुः पशुपतिविष्ण्वादयः, स्वयं यान्येतानि संनिदधते पाशुपतादीनि तानि तेऽस्त्राणि ।

(राजा घबड़ाहट तथा आदरसे पासजाने की चेष्टा करता है)

(राजसी तथा तामसी शिवभक्तियोंका प्रवेश)

शिवभक्ति—हम लोग किसी तरह पेहलौकिक तथा पारलौकिक अभ्युदय विशेषों में आकृष्ट करके इस राजाको अविद्याके अधीन कर दें ।

(राजा सादर समीप जाकर प्रणाम करता है)

दोनों भक्तियाँ—वत्स, आप सकल कल्याणके पात्र हों ।

राजा—देवियो, आप हमारे कामसे यहाँ आई हैं इसका प्रयोजन जानना चाहता हूँ ।

दोनों भक्तियाँ—आपको प्रसन्न करनेके अतिरिक्त हम लोगोंका कुछ भी कर्त्तव्य नहीं है ।

राजा—आप लोगोंके समान महामतियोंके लिये यह उचित ही है । (आगेकी ओर इशारा करके) देवियो, अधिक मात्रामें इकट्ठा हुआ श्वेत ज्वालाजालसे भीषण यह प्रकाशपुञ्ज क्या है ?

तामसी—संसारकी भलाईके लिये पशुपति, विष्णु आदि उत्पन्न हुए, यह जो आप देख रहे हैं वे पाशुपतादि अस्त्र हैं ।

राजसी—वत्स, सप्रश्रयेणोपसदनेन परिगृह्यन्तामिमानि दिव्यास्त्राणि। एतानि स्मृतप्रत्युपस्थितानि समयेषु भवतः श्रेयो महद्विधास्यन्ति।

राजा—तथा। (इति चरणग्रहणं नाटयति।)

असूया—भट्टिनि, राजानः खल्वपूर्वशस्त्रास्त्रप्रिया भवन्तीति पाशुपतादिदिव्यास्त्रप्रतिपादनेन शिवभक्तिभ्यामात्मनिर्विशेषीकृतो देवः।

राजा—(सपरितोषम्।) भगवत्यौ, परमनुगृहीतोऽस्मि। निःशङ्कमभिमतेषु विधेयेष्वनुयुज्यतामयं जनः।

तामसी—राजन्, इतः परिसर एव। (पुरतो निर्दिश्य।)

मन्त्रोऽयं शरभेश्वरो विजयते सर्वार्थचिन्तामणि-
र्विख्यातो बगलामुखीमनुरसावल्पश्रमैः सिध्यति।
यस्यानुग्रहमीहसे तदमुना धन्यः स सर्वो भवेत्
सन्त्येवं मनुकोटयोऽत्र निरतः श्रेयोऽखिलं प्राप्नुहि ॥२१॥

राजसी—वत्स, आप सादर चरण-निपात द्वारा इन दिव्यास्त्रोंको स्वीकार करें, ये अस्त्र याद करने पर उपस्थित होकर समय पर आपका बड़ा कल्याण करेंगे।

राजा—एवमस्तु। (चरण ग्रहण करता है)

असूया—स्वामिनि, राजा लोग अपूर्वशस्त्रास्त्रके प्रेमी होते हैं, इसलिये इन शिवभक्तियोंने पाशुपतादि दिव्यास्त्र देकर इन्हें वश कर लिया।

राजा—(प्रसन्नताके साथ) देवियो, मैं आपका अति अनुगृहीत हूँ, निःशङ्क भावसे आप मुझे स्वाभिमत कार्यमें नियुक्त करें।

तामसी—राजन्, यहाँ समीपमें ही—(आगेकी ओर इशारा करके) यह शरभेश्वर मन्त्र है जो सकल अभीष्ट अर्थके देनेमें चिन्तामणि है, यह बगलामुखी मन्त्र है जो थोड़ेसे ही परिश्रमसे सिद्ध हो जाता है, तुम जिसपर कृपा करना चाहोगे, वह इस मन्त्रसे कृतार्थ हो जायगा, इस तरहके करोड़ मन्त्र यहाँ विद्यमान हैं, इनमें तत्पर होकर समस्त कल्याण प्राप्त करो ॥ २१ ॥

अथवा—

श्येनेनाभिचरन्यजस्व स यथा श्येनो निपत्य क्षणा-
दादत्ते भुवि कुक्कुटादिपृथुकानेवं द्विषो दुर्जयान्।
आदत्ते स किलाध्वरोऽतिरभसादस्मे तवाकण्टकं
साम्राज्यं भविता ततोत्तरमितः किं नाम भाग्यं परम्॥ २२॥

राजसी—(सासूयम्। जनान्तिकम्।) किमेभिरिन्द्रजालैरिवातिफल्गु-स्वभावैरतिचिरसाध्यैरीषदपचारेऽपि चित्तविभ्रमकारिभिः। इत आगम्यताम्। (इति राजानमन्यतोऽपकर्षति।)

राजा—(स्वगतम्।) अहो प्रकृतिगुणदोषादनयोरप्यसूया।

राजसी—वत्स, दृश्यतामग्रेऽपि। पाशुपतं गाणपत्यं सौरं शाक्तं पाञ्चरात्रमिति पञ्च मतानि जयन्ति श्वेतानि स्कान्दषष्ठानि।

तदेतेषु श्रेयः पशुपतिमतं तन्न नियतो
यदि त्वं दीक्षेथास्तदुपरि दुरापं न किमपि।

अथवा—शत्रु-संहारकी इच्छासे श्येन याग करो, जैसे श्येन कुक्कुटादि दुर्बल पक्षियोंको झपटकर उठा ले जाता है, उसी तरहसे यह श्येनयाग दुर्जय शत्रुओंको बड़े वेगसे इस धराधाम परसे उठा ले जाता है। इसके द्वारा तुम्हारा साम्राज्य अकण्टक होगा, इससे बढ़कर और क्या सौभाग्य हो सकता है?॥२२॥

राजसी—(असूयापूर्वक, छिपाकर) इन्द्रजालकी तरह तुच्छ स्वभाव, अतिचिरकाल-साध्य, तथा थोड़े अनाचारसे भी पागल बना देनेवाले इन यज्ञोंसे क्या लाभ? इधर आओ।

(राजाको दूसरी ओर आकृष्ट करती है)

राजा—(स्वगत) अहा, प्रकृतिगत गुण-दोषसे इनमें भी परस्पर डाह विद्यमान है।

राजसी—वत्स, आगेभी देखो, पाशुपत, गाणपत, सौर, शाक्त, पाञ्चरात्र, तथा स्कान्द यह छः मत विद्यमान हैं।

इनमतोंमें पशुपतिमत श्रेष्ठ है, यदि तुम उसमतमें दीक्षित हो जाते हो तो तुम्हारे लिये कुछ भी दुर्लभ नहीं रह जायगा। पशुपति तुमको इन्द्रादि देव

स दत्ते सारूप्यं शतमखमुखामर्त्यमुकुटी-
मणिस्तोमज्योतिर्धगधगनकिञ्जल्कितपदम् ॥ २३ ॥

अथवा। मेरुमन्दरादय इव वाजपेयराजसूयपौण्डरीकादयो महाक्रतव इतः सहस्रशो दृश्यन्ते। तदेतेषु येषु केषुचिदभिलाषितमभिसंधाय पशुपतिराराधनीयः।

प्रसीदन्नेतेन प्रतिभवति देवस्तव फले
पशुक्षेत्रापत्यादि च गुणफलत्वेन भवति।
त्रिलोकीसाम्राज्यं त्रिचतुरदिनैः संभवति चे-
दमुष्यानुष्ठाने बत कथमभिज्ञो न रमताम् ॥ २४ ॥

यदि तावदमीषु बहुचित्तव्ययायाससाध्यतया मनसो न प्रवृत्तिः, तर्हि तिष्ठतु। परतो दृश्यताम्। इमाः किल शङ्खपद्मादिनिधिदेवता इव पञ्चाग्निविद्येति वैश्वानरविद्येति पर्यङ्कविद्येति च बहुधा महोपासनाः सहस्रमिता दृश्यन्ते।

एतासु या काचन कल्पवल्ली भावालवाले भवतो निधेया।

गणके मुकुटोंमें वर्त्तमान मणियोंके प्रकाशसे दीप्ति-चरणता रूप अपना सारूप्य प्रदान करेंगे ॥ २३ ॥

अथवा—मेरु-मन्दर आदिकी तरह वाजपेय-राजसूय-पौण्डरीक आदि हजारों महाक्रतु इधर दीख रहे हैं, इनमेंसे किसी एकका अवलम्बन करके पशुपतिकी आराधना करो।

इस यज्ञसे प्रसन्न होकर पशुपति तुम्हारे लिये फल-प्रदानमें मध्यस्थ बन जायेंगे, पशु, क्षेत्र, अपत्य आदि तो गौण फलके रूपमें मिलते ही हैं, तीन चार दिनोंमें ही त्रिलोकी-साम्राज्य मिल जाता है, फिर इस तरहके अनुष्ठानमें कौन चतुर व्यक्ति नहीं लग जाय ॥ २४ ॥

यदि इन यागोंमें बहुत मनोयोग, व्यय तथा आयासकी अपेक्षा है इसलिये प्रवृत्ति नहीं हो, तो ठहरो, दूसरी ओर देखो, यह शङ्ख, पद्म आदि निधियोंकी तरह यह पञ्चाग्निविद्या, वैश्वानरविद्या, पर्यङ्कविद्या आदि विद्यायें हजारोंकी संख्यामें दीख रही हैं।

इनमेंसे किसी एक विद्यारूप कल्पलताको तुम अपने हृदयरूप आलवालमें

न भारलेशो न च दूरयानं फलन्त्यभीष्टानि भवन्मतानि ॥ २५ ॥

चित्तशर्मा—भगवति, का नाम सा महोपासना यत्र किल संकल्पत एव सर्वकामार्थसिद्धिः श्रूयते ।

राजसी—सा किल सर्वोत्तमा । (इति तदन्तिकमुपनीय राजानमिमम-सावितिदहरविद्यां दर्शयति ।)

राजा—(सहर्षम् । आत्मगतम् ।) दिष्ट्याहमद्य वेदारण्यपरभागस-विधमुपगतोऽस्मि । (प्रकाशम् । सावहित्थम् ।) भगवति, निरुपधिवत्सलया भवत्या निकाममनुगृहीतोऽहम् । एतेषु येषु केषुचित्कर्मसु यासु कासुचिदुपासनासु च विरचिताभिनिवेशो यथामति यथाशक्ति च शिवमाराधयामि । (इति विधिष्वभिनिवेशं दर्शयति ।)

प्रवृत्तिः—सखि विषयवासने, दिष्ट्या फलित इव देव्या मनोरथः । यदेष काम्यक्रियोपासनास्वभिनिविष्टश्चिरेण मदनुरोधी दृश्यते ।

विषयवासना—विमर्शनीयम्, अधुनापि मम संदेह एव ।

रख लो, न कुछ भार है, न दूर जाना है, सारे अभीष्ट फल मिलते रहेंगे ॥२५॥

चित्तशर्मा—देवि, वह कौनसी उपासना है जिसमें—सुनता हूँ—संकल्प-से ही सकल कामनाकी सिद्धि हो जाती है ।

राजसी—वह सबसे बड़ी है । (समीप ले जाकर राजाको दिखलाती है कि यही वह दहर विद्या है) ।

राजा—(सहर्ष, स्वगत) सौभाग्यवश आज मैं वेदारण्यके परभागके समीप आ गया हूं । (प्रकट, आनन्दको छिपाते हुए) देवि, अकारण करुणा-मयी आपने मुझे बहुत अनुगृहीत किया है । इनमें से किसी कर्म या किसी उपासनामें मनोयोग लगाकर यथाबुद्धि शिवकी आराधना करता हूँ । (विधियोंमें आस्था व्यक्त करता है)

प्रवृत्ति—सखि विषयवासने, सौभाग्यवश तुम्हारा मनोरथ फलित सा हो रहा है, क्योंकि यह जीवराज काम्यकर्ममें अनुरक्त होकर चिरकाल के लिये मेरा अनुगामी बनता जा रहा है ।

विषयवासना—विचार करो, मुझे तो अभी भी सन्देह ही है ।

अविद्या—मम तु न संदेहः। यथापुरमस्मासु विमुख एव। कुतोऽपि दाक्षिण्यादाभिमुख्यमभिनयति। परथायमस्मासु कथमेतावदुदासीत। धिक्प्रदग्धमेतन्मम जीवितम्।

गते तादृक्प्रेमण्ययमहमिति द्वैतरहिते
चरत्यग्रे कस्मिन्नपि जन इव प्रेयसि निजे।
शनैर्मौने म्लाने गतगरिमणि प्राणधरणात्
परो नैव स्त्रीणां हृदयदहनः क्रूरदहनः ॥ २६ ॥

राजा—(सविषादम्।) सखे चित्तशर्मन्, अतिचिरेण सूत्रनर्तित-प्रतिमोपममनपेक्षितव्यापारैरात्मानमायासयामि।

चित्तशर्मा—(स्वगतम्।) अयमस्य विद्याभिरतिरसाभिनिवेशपरिणामः। (प्रकाशम्।) वयस्य, कुत एवम्।

राजा—सखे, श्रूयताम्।

किमेभिर्व्यापारैर्भ्रमिह फलं किं न्विति मनाग्-
विमर्शप्रस्तावे मम हि विफलं भाति सकलम्।

अविद्या—मुझको तो सन्देह नहीं है। यह राजा पूर्ववत् हमसे विमुख ही है, कभी-कभी सौजन्यवश अनुकूलताका अभिनय सा करता है, यदि दूसरी बात होती तो यह हमलोगोंपर इतनी उदासीनता क्यों दिखलाता? मेरे इस दग्धजीवनको धिक्कार है।

भेदबुद्धिसे परे उस तरहके प्रेमके चले जानेपर साधारण पुरुषकी तरह अपने प्रेमीके समीपमें ही घूमते रहनेपर गौरवसे रहित प्रतिष्ठाके मलिन हो जानेपर भी जीवित रहनेसे बढ़कर स्त्रियोंके लिये हृदयको दग्ध करनेवाला कोई क्रूर दहन नहीं है ॥ २६ ॥

राजा—(विषादके साथ) सखे चित्तशर्मन्, बहुत देरसे रस्सीमें बांध कर नचाई जानेवाली प्रतिमाकी तरह मैं अनभिमत व्यापारोंसे अपनेको आयासित कर रहा हूं।

चित्तशर्मा—(स्वगत) विद्याओंके प्रति अत्यासक्तिका ही इसको यह परिणाम (औदास्य) है। (प्रकट) वयस्य, यह क्यों?

राजा—इन व्यापारोंसे क्या लाभ है? इनमें क्या मिलेगा? थोड़ा भी विचार करनेपर मुझे तो यह सारा व्यापार व्यर्थ प्रतीत होता है। और क्या

किं बहुना—

कियत्कालानेवं लुठनमिति भक्त्या निगदितो
नियोगोऽपि व्यर्थश्रम इव हि निर्वेदयति माम् ॥ २७ ॥

चित्तशर्मा—हन्त, भगवत्याः प्रसादः सांप्रतमुदपद्यत निवृत्तिहेतुर्विषयविद्वेषजनितो वयस्यस्य निर्वेदः । अयमेवावसरो योगपरिचयस्यापि ।

(ततः प्रविशति निवृत्तिरष्टाङ्गयोगश्च ।)

निवृत्तिः—ततस्ततः ।

योगः—तदनु भगवत्या शिवभक्त्या तदेवमभिहितम्—'अद्य खलु जीवराजमतिचिरेण विविधकर्मोपासनासु परिक्लिष्टं चित्तशर्मणा सह वेदारण्यपरभागमानेष्यति निवृत्तिः । तदत्र विरुद्धापरिशुद्धवृत्तिनिरोधाय तत्प्रतिहारभूमिमधिगम्यताम् । अन्यच्च तस्य जीवराजस्य स्वप्ने साम्बदक्षिणामूर्तिरचिराद्दृश्यक्षणीयः' इति ।

निवृत्तिः—अहमपि 'प्रत्यक्षनैष्ठुर्यकलहादिकमन्तरेण तापसानां स्वाश्रमपददर्शनप्रार्थनापदेशेन जीवराजः प्रवेशनीयः' इति तत्रैव प्रहितास्मि ।

कहूं, कबतक इस तरह लुढ़कता रहूँगा ? मुझे तो भगवती शिवभक्तिका कथन भी परिश्रमकी व्यर्थतासे खिन्न कर रहा है ॥ २७ ॥

चित्तशर्मा—अहा, अब भगवती शिवभक्ति की कृपा हुई है । यही है विषयविद्वेषसे पैदा होनेवाली उदासीनता जो निवृत्तिका कारण होती है । योगके साथ परिचयका अवसर भी यही है ?

(अष्टाङ्गयोग तथा निवृत्तिका प्रवेश)

निवृत्ति—तब ?

योग—इसके बाद भगवती शिवभक्तिने इस प्रकार कहा—"आज बहुत दिनोंमें नाना प्रकारकी उपासनाओंसे क्लेशित जीवराजको चित्तशर्माके साथ निवृत्ति वेदारण्यके परभागमें ले आयेगी । अतः उसकी विरुद्ध तथा अपरिशुद्ध वृत्तियोंके निरोधार्थ वेदारण्यके दरवाजेपर चला जाय । इसके अतिरिक्त जीवराजको स्वप्नमें साम्बदक्षिणामूर्तिका प्रत्यक्ष दर्शन भी करा देना चाहिये" ।

निवृत्ति—मैं भी प्रत्यक्ष निष्ठुरता तथा कलहादिके बिना तापसोंको अपने आश्रमको देखनेके लिये प्रार्थनासे अनुनीत करने को उन्हींके द्वारा भेजी गई हूं ।

(उभौ राजानमुपगच्छतः ।)

निवृत्तिः—(राजानं प्रति ।) वत्स, निरन्तरायमितो भवदानयनाय भगवत्यायमष्टाङ्गयोगोऽपि प्रहितः ।

योगः—विजयतां देवः ।

राजा—किमयमेव स महात्मा योगः । (प्रणमति ।)

निवृत्तिः—(योगं निर्दिश्य ।)

निरुध्य प्राणादीन्नियमितपरिस्पन्दवशिता-
नतो बद्ध्वा गाढंकरणपटलद्वारनिकरम् ।
शतच्छिद्रात्कुम्भादुदकमिव विष्वक्परिगल-
न्मनो रुद्ध्वात्मानं गमयितुमसावेव निपुणः ॥ २८ ॥

अविद्या—अयि विषयवासने, ननु प्रागेव मयाभिहितम्—'प्रतीप एवायम्' इति । संप्रति परतो जिगमिषुरिव निवृत्त्या सह किमपि मन्त्रयते । किमत्र करणीयम् ।

विषयवासना—समये साहसमवलम्ब्य पश्यामः ।

(दोनों राजाके पास जाती हैं)

निवृत्ति—(राजाके प्रति) वत्स, भगवती शिवभक्तिने विना बाधाके आपको ले आनेके लिये अष्टाङ्ग योगको भी भेजा है ।

योग—जय हो महाराजकी ।

राजा—क्या यही हैं महात्मा योग ? (प्रणाम करता है)

निवृत्ति—(योगकी ओर इशारा करके) नियमित संचारके द्वारा वशीकृत प्राणोंको रोक करके और इन्द्रिय-समुदायरूप द्वारको अच्छी तरहसे बन्द करके जैसे शतच्छिद्र घटसे पानी निकलता है उसी तरह समन्ततः प्रसरणशील मनको रोककर आत्मामें मिलानेके लिये यही समर्थ हैं ॥ २८ ॥

अविद्या—सखि विषयवासने, मैंने पहले ही कहा था कि यह प्रतिकूल है, अब तो दूसरी जगह जाने की इच्छा सी करके निवृत्तिके साथ कुछ विचार कर रहे हैं, अब यहाँ क्या करना चाहिये ।

विषयवासना—समय आ पड़नेपर हमें साहस करके देखना है ।

(निवृत्तिर्विवेकादीनां कर्णे 'एवमेवम्' इति कथयति ।)

तापसाः—(सशिरःकम्पम् ।) महाराज, तदितः पदान्तर एवास्माकमाश्रमपदम् । तदवलोकनेन वयमनुग्रहीतव्याः । (इति राजानं हस्ते गृहीत्वा परभागं प्रवेशयन्ति ।)

(विषयवासना चित्तशर्माणमवलम्ब्य सहैव प्रविविशति ।)

योगः—(दण्डमुद्यम्य ।) धिक्त्वां पिशाचि । (इति गलहस्तिकया निवर्तयति ।)

चित्तशर्मा—कियदत्र संविहितं भगवत्या । तथाहि—

निवृत्तेरग्रे का प्रभवतु तयामी च घटिता
विवेकाद्या भक्त्या तदुपरि स योगोऽपि घटितः ।
प्रमादाशङ्का न प्रसजति कनीयस्यपि यथा
तथा संनद्धन्तः परिणतिषु मुह्यन्ति न बुधाः ॥ २६ ॥

वयस्य, दिष्ट्या योगप्रभावेण व्याधिस्त्यानसंशयप्रमादालस्याविर-

---

(निवृत्ति विवेक आदिके कानोंमें 'इस तरह' इत्यादि कुछ कहती है)

तापसगण—(शिर हिलाकर) महाराज, यहाँसे कुछ ही दूरपर हमारे आश्रम हैं, उसे देखकर आप हमें अनुगृहीत करें । (राजाका हाथ पकड़ कर दूसरी ओर ले जाते हैं)

(विषयवासना चित्तशर्माका हाथ पकड़कर उन्हींके साथ प्रवेश करना चाहती है)

योग—(लाठी उठाकर) धिक्कार है तुझ पिशाचीको । (गर्दनिया देकर लौटाता है)

चित्तशर्मा—इस प्रसङ्गमें भगवतीने कितना प्रबन्ध कर रखा है, क्योंकि निवृत्तिके आगे कौन टिक सकता है इसी दृष्टिसे शिवभक्तिने निवृत्तिको विवेकादिके साथ कर दिया इसके अलावे योगको भी साथ साथ रहनेको कह दिया । जिससे थोड़े-से भी प्रमादकी आशंका न रह जाय, परिणाम तक पहुंचनेके लिये बुधजन उसी तरहकी तैयारी करते हैं, ढिलाई नहीं करते हैं ॥ २९ ॥

वयस्य, योगके प्रभावसे व्याधि, स्त्यान, संशय, प्रमाद, आलस्य, अविरति,

(उभौ राजानमुपगच्छतः ।)

निवृत्तिः—(राजानं प्रति ।) वत्स, निरन्तरायमितो भवदानयनाय भगवत्यायमष्टाङ्गयोगोऽपि प्रहितः ।

योगः—विजयतां देवः ।

राजा—किमयमेव स महात्मा योगः । (प्रणमति ।)

निवृत्तिः—(योगं निर्दिश्य ।)

निरुध्य प्राणादीन्नियमितपरिस्पन्दवशिता-
नतो बद्ध्वा गाढंहृकरणपटलद्वारनिकरम् ।
शतच्छिद्रात्कुम्भाद्बुदकमिव विष्वक्परिगल-
न्मनो रुद्ध्वात्मानं गमयितुमसावेव निपुणः ॥ २८ ॥

अविद्या—अयि विषयवासने, ननु प्रागेव मयाभिहितम्—'प्रतीप एवायम्' इति । संप्रति परतो जिगमिषुरिव निवृत्त्या सह किमपि मन्त्रयते । किमत्र करणीयम् ।

विषयवासना—समये साहसमवलम्ब्य पश्यामः ।

(दोनों राजाके पास जाती हैं)

निवृत्ति—(राजाके प्रति) वत्स, भगवती शिवभक्तिने विना बाधाके आपको ले आनेके लिये अष्टाङ्ग योगको भी भेजा है ।

योग—जय हो महाराजकी ।

राजा—क्या यही हैं महात्मा योग ? (प्रणाम करता है)

निवृत्ति—(योगकी ओर इशारा करके) नियमित संचारके द्वारा वशीकृत प्राणोंको रोक करके और इन्द्रिय-समुदायरूप द्वारको अच्छी तरहसे बन्द करके जैसे शतच्छिद्र घटसे पानी निकलता है उसी तरह समन्ततः प्रसरणशील मनको रोककर आत्मामें मिलानेके लिये यही समर्थ हैं ॥ २८ ॥

अविद्या—सखि विषयवासने, मैंने पहले ही कहा था कि यह प्रतिकूल हैं, अब तो दूसरी जगह जाने की इच्छा सी करके निवृत्तिके साथ कुछ विचार कर रहे हैं, अब यहाँ क्या करना चाहिये ।

विषयवासना—समय आ पड़नेपर हमें साहस करके देखना है ।

(निवृत्तिर्विवेकादीनां कर्णे 'एवमेवम्' इति कथयति ।)

तापसाः—(सशिरःकम्पम् ।) महाराज, तदितः पदान्तर एवास्माकमाश्रमपदम् । तदवलोकनेन वयमनुग्रहीतव्याः । (इति राजानं हस्ते गृहीत्वा परभागं प्रवेशयन्ति ।)

(विषयवासना चित्तशर्माणमवलम्ब्य सहैव प्रविविक्षति ।)

योगः—(दण्डमुद्यम्य ।) धिक्त्वां पिशाचि । (इति गलहस्तिकया निवर्तयति ।)

चित्तशर्मा—कियदत्र संविहितं भगवत्या । तथाहि—

निवृत्तेरग्रे का प्रभवतु तयामी च घटिता
विवेकाद्या भक्त्या तदुपरि स योगोऽपि घटितः ।
प्रमादाशङ्का न प्रसजति कनीयस्यपि यथा
तथा संनह्यन्तः परिणतिषु मुह्यन्ति न बुधाः ॥ २९ ॥

वयस्य, दिष्ट्या योगप्रभावेण व्याधिस्त्यानसंशयप्रमादालस्याविर-

---

(निवृत्ति विवेक आदिके कानोंमें 'इस तरह' इत्यादि कुछ कहती है)

तापसगण—(सिर हिलाकर) महाराज, यहाँसे कुछ ही दूरपर हमारे आश्रम हैं, उसे देखकर आप हमें अनुगृहीत करें । (राजाका हाथ पकड़ कर दूसरी ओर ले जाते हैं)

(विषयवासना चित्तशर्माका हाथ पकड़कर उन्हींके साथ प्रवेश करना चाहती है)

योग—(लाठी उठाकर) धिक्कार है तुझ पिशाचीको । (गर्दनिया देकर लौटाता है)

चित्तशर्मा—इस प्रसङ्गमें भगवतीने कितना प्रबन्ध कर रखा है, क्योंकि निवृत्तिके आगे कौन टिक सकता है इसी दृष्टिसे शिवभक्तिने निवृत्तिको विवेकादिके साथ कर दिया इसके अलावे योगको भी साथ साथ रहनेको कह दिया । जिससे थोड़े-से भी प्रमादकी आशंका न रह जाय, परिणाम तक पहुंचनेके लिये बुधजन उसी तरहकी तैयारी करते हैं, ढिलाई नहीं करते हैं ॥ २९ ॥

वयस्य, योगके प्रभावसे व्याधि, स्त्यान, संशय, प्रमाद, आलस्य, अविरति,

तिभ्रान्तिदर्शनालब्धभूमित्वानवस्थितत्वादिभिर्विक्षेपैर्दुःखदौर्मनस्यादिभिस्तत्सहभाविर्वृत्तिभिश्चोत्सृष्टतया सुनिर्मलमात्मानं पश्यामि। दिष्ट्यायमस्माकमेतदनुग्रहलाभः। अस्य तावन्महात्मनोऽवयवभूता यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधय इत्यष्टाविमे महाभागाः। अत्र—अहिंसा सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्यं परिग्रह इति पञ्चैते यमा नाम। शौचसंतोषतपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानीत्येते तु पञ्च नियमाः। तदेतेषामेकैकस्य प्रभावो गिरामभूमिः। दिङ्मात्रमुदाह्रियते। श्रूयताम्—यत्रायमहिंसा नाम यमः प्रतिवसति, तत्र तनुभृतामन्योन्यवैरगन्धोऽपि न प्रसरति। दृश्यतामत्रेदमाश्चर्यम्।

गोवत्सान्पिबतो निजस्तनमियं व्यालेढि शार्दूलिका
बर्ही बर्हसमीरणैः सुखयते बाताशिनः पोतकान्।
गृह्णन्तो जरदन्धतापसगणं पाणाविमे वानरा-
स्तोयाधारगतागतेषु सुखयन्त्यव्याजमैत्रीभृतः॥ ३०॥

राजा—(स्वगतम्।) अतः किल भगवान्पतञ्जलिरसूत्रयत्—'अहिंसा-

भ्रान्ति, दर्शन, अलब्धभूमित्व, अनवस्थितत्व इत्यादि विक्षेपों तथा दुःखदौर्मनस्यादि वृत्तियोंसे परे अपनेको निर्मल देख रहा हूँ। इस महाप्रभाव योगके अवयवभूत यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान तथा समाधि हैं यह आठ महाभाग। इनमें अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह यह पांच यम हैं और शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय तथा ईश्वर-प्रणिधान यह पांच नियम हैं। इनमें एक एक का भी प्रभाव अवर्णनीय है, थोड़ा सा उदाहरण देता हूँ—सुनिये—जहाँपर यह अहिंसा नामका यम रहता है वहाँ प्राणियोंका पारस्परिक विरोध सर्वथा मिट जाता है, देखिये यहींपर यह आश्चर्य—

यह व्याघ्री अपने स्तन पीते हुए इन बछड़ोंको बड़े प्रेमसे चाट रही है, मयूर अपने पंखसे सांपके बच्चोंपर हवा करके उन्हें आनन्दित कर रहा है, निष्कपट मैत्री धारण करनेवाले यह वानरगण बूढ़े अन्धे तपस्वियोंको जलाशयपरसे ले आते तथा वहाँ पहुंचाते हैं॥ ३०॥

राजा—(स्वगत) इसीलिये भगवान् पतञ्जलिने सूत्र बनाया है—

प्रतिष्ठायां तत्संनिधौ वैरत्यागः' (साधनपादे उपसूत्रम्) इत्यादि ।

चित्तशर्मा—अथ सत्याभिधेयोऽयं द्वितीयो यमनुगृह्णाति, तेन यद्यथाभिधीयते तत्तथैव भवति । अत एव किल

सर्वेषां च मनुष्याणामर्थं वागनुवर्तते ।
यमिनां तु कृतार्थानां वाचमर्थोऽनुवर्तते ॥ ३१ ॥

राजा—ततः किल ते शापानुग्रहयोः प्रभवन्ति ।

चित्तशर्मा—तदेवमप्रमेयापरिमितप्रभावोऽयं योगः । (योगं प्रति ।) आर्य, भवदनुग्रहेण निरन्तरायमभिमतसिद्धिमभिलषति महाराजः ।

योगः—सखे चित्तशर्मन् , अपरिमितशक्तेः शिवभक्तेरनुग्रहभाजनस्य किमस्य परिहीयते । तदेतैः शमदमादिभिः स्वसमारब्धकार्यनिर्वाहजागरूकामत्रभवतीं शिवभक्तिं प्रतिपद्य तया निर्वर्त्यमानामिष्टसिद्धिमधिगच्छतु महाराजः ।

चित्तशर्मा—यदाज्ञापयत्यार्यः । (इति सर्वैः सह भक्तिं प्रति गमनं नाटयति ।)

'अहिंसाप्रतिष्ठायां तत्संनिधौ सर्ववैरत्यागः' । (साधनपाद) अहिंसापर आरूढ हो जानेसे सभी प्रकारके वैर मिट जाते हैं ।

चित्तशर्मा—सत्यनामका यह दूसरा यम जिसे अनुगृहीत करता है, वह जो कह देता है वही बात होती है—इसीलिये—

सभी मनुष्योंकी वाणी अर्थका अनुगमन करती है, परन्तु कृत-कृत्य यमी जनोंकी वाणीका अर्थ ही अनुगमन करते हैं ॥ ३१ ॥

राजा—इसीसे तो वे शाप तथा अनुग्रहमें समर्थ होते हैं ।

चित्तशर्मा—यह योग बहुत ही प्रभावशाली है । (योगके प्रति) श्रीमान् आपकी कृपासे महाराज निरन्तर मनोरथसिद्धिकी कामना करते हैं ।

योग—सखे चित्तशर्मा, अनन्त शक्ति-शालिनी शिवभक्तिके कृपापात्र इन महाराजको क्या कमी है ? ये शम-दम आदिसे अपने कार्यमें लगी पूज्या शिवभक्तिकी शरणमें पहुँच गये हैं; वह इनके अभीष्ट कार्यका सम्पादन करेगी, यह आप निश्चित समझ लें ।

चित्तशर्मा—आपकी जो आज्ञा । (सभीके साथ भक्तिके पास जानेका अभिनय करता है)

अविद्या—(पुरो विलोक्य । सातङ्कम् ।) अयि विषयवासने, किमेतदापतितम् । यदयमवधूय नः परागत एव वेदारण्यपरभागम् । देव, किमितः करोमि मन्दभाग्या ।

विषयवासना—(सधैर्यावष्टम्भम् ।) देवि, मा भैषीः । नन्विमे जगज्जयिनः कामादयः सांप्रतमसुनिर्व्यपेक्षमेव पराक्रमाय संनह्यन्ति । तदेतैः सममहमेव तानवस्कन्द्य परावर्तयामि । (इति वाढोपं कामादिभिः सह निष्क्रामति ।)

(नेपथ्ये कलकलः ।)

विवेकादयः—(श्रुत्वा । सामर्षम् ।) देव, कामादयोऽस्मदीयेषु किमप्योजायन्त इव, तत्किमिति विमृश्य परावर्तेमहि । (इति निष्क्रामन्ति ।)

राजा—(पुरो विलोक्य ।) हन्त समरसंनाहसमुद्बोधितसंस्कारेण मया स्मृतमात्राण्येव तानि दिव्यास्त्राणि संनिदधते । (सप्रश्रयं प्रणम्य ।) भवत्संनिधानमहिम्ना विवेकादितत्तत्प्रतिभटैरेव तत्तदरिनिर्बर्हणानि क्रियन्ते । तदनुगृह्यतामन्तर्धानेन ।

अविद्या—(आगेकी ओर देखकर, सभय) अरी विषयवासने, यह क्या हुआ ? इसने तो हमलोगोंको छोड़कर वेदारण्यके परभागमें प्रवेश कर लिया, हा देव; मैं अभागी अब क्या करूँगी ? ।

विषयवासना—(धैर्यधारण करके) देवि, डरो मत । यह काम आदि अब प्राणोंकी ममता छोड़कर पराक्रम दिखानेकी तैयारी कर रहे हैं, उनके साथ ही मैं भी उन्हें पकड़ कर लौटा लाती हूँ ।

(वेगसे कामादिके साथ जाती है)

(नेपथ्यमें कलकल होता है)

विवेकादि—(सुनकर, कोपसे) देव, यह कामादि हमारे जनोंपर थोड़ा जोर डाल रहे हैं, तो क्या हम भी लौटें ? । (जाते हैं)

राजा—(आगे देखकर) युद्धके संस्कारके समुद्बोधित हो जानेसे मैंने याद किया और यह दिव्यास्त्र उपस्थित हो रहे हैं, (प्रेम के साथ प्रणाम करके) आपके आते ही हमारे विवेकादि अपने शत्रुओंको खदेड़ रहे हैं, आप अन्तर्धान हो जानेकी कृपा करें ।

('तथा' इति दिव्यास्त्राणि तिरोदधति ।)

निवृत्तिः—यावदहमप्येतेषामायोधनवृत्तान्तमप्युपलभ्य सर्वमिदमावेदयितुं भगवत्याः सकाशं गच्छामि । (इति तैः सह निष्क्रामति ।)

राजा—(पुरो विलोक्य ।)

प्रासादेषु रतान्तये मृगदृशः शाटीति संमोहयन्
विष्वक्शाखिशिखासु लोध्रकुसुकादिन्दिन्दिरान्धावयन् ।
उन्मीलन्नुडुराज एष किरणैरेभिः सुधासान्द्रितै-
र्मामानन्दयते महीध्रशिखरे कैलासमध्यक्षयन् ॥ ३२ ॥

योगः—(स्वगतम् ।) अचिरादेव तदपि संपत्स्यते । (प्रकाशम् ।) राजन्, अविरतपरितप्तसकलजीवमण्डलविश्रमसुखविधायिनी परिणमति भगवतीयं रजनी तदिह नेदीयसि शमादीनामाश्रमपदे संविश्य तामतिवाहयामः ।

राजा—तथा । (इति निष्क्रान्ताः सर्वे ।)

इति षष्ठोऽङ्कः ।

('तथा' ऐसा कहकर दिव्यास्त्र गण अन्तर्हित होते हैं) ।

निवृत्ति—जबतक मैं भी इनके युद्धकी खबर जानकर इन सारी बातोंकी सूचना देने देवी शिवभक्तिके समीप जाती हूँ ।

(उन्हींके साथ जाती है)

राजा—(आगेकी ओर देखकर)

उगता हुआ यह चन्द्रमा प्रासाद-शिखरोंपर (अपनी किरणोंसे) रतान्तमें सुन्दरी स्त्री की यह साड़ी है ऐसा भ्रम उत्पन्न करता है, वृक्षोंकी शाखाओंपर लोध्रकुसुमकी प्रतीति उत्पन्न करके भ्रमरोंको दौड़ा देता है, अपनी अमृत-धवल-किरणोंसे यह पर्वतपर कैलासका प्रत्यक्ष कराता हुआ हमको आनन्दित कर रहा है ॥ ३२ ॥

योग—(स्वगत) शीघ्र ही अब वह भी होगा । (प्रकट) महाराज, समस्त परितप्त जीवोंको विश्राम द्वारा सुख देनेवाली यह रात आ रही है, अतः समीपवर्त्ती इस शमादिके आश्रममें सोकर हमलोग रात्रि व्यतीत करें ।

राजा—तथास्तु । (सभी जाते हैं)

षष्ठ अङ्क समाप्त ।

सप्तमोऽङ्कः

(ततः प्रविशति निवृत्तिर्विविदिषा च ।)

विविदिषा—ततस्ततः ।

निवृत्तिः—तदनु कामादिभिः स्मृतमात्र एव
गर्वोन्मादप्रहर्षा इति कति कति वा कामदूताः समेता
नैर्घृण्याक्षान्तितैक्ष्ण्यादय इति शतधा निःसृताः क्रोधयोधाः ।
कार्पण्यातृप्तिदैन्यादय इति कति वा निर्गता लोभवर्ग्याः
किंचैते मोहदूताः कति बत मिलिताः स्तम्भतर्कभ्रमाद्याः ॥ १ ॥

हन्त, विवेकादिभिरपि तत्तत्प्रतिभटतया निजनिजपरिवाराः संनिधापिता एव । अतएव

दिशि विदिशि प्रसर्पति बले परितस्तुमुले
बहलदुरन्तसंतमससंततिदन्तुरिते ।
बलपदरेणुभिर्घनघनाघनमेदुरितै-
र्बत हरिदन्तरं सकलमेव निरन्तरितम् ॥ २ ॥

[निवृत्ति तथा विविदिषाका प्रवेश]

विविदिषा—तब क्या हुआ ?

निवृत्ति—इसके बाद कामादि द्वारा स्मरणमात्र किये जानेपर—

गर्व, उन्माद, हर्ष आदि कितने कामके दूत आ पहुँचे, क्रोधके पट्ठे नैर्घृण्य, अक्षमा, तीक्ष्णता आदि आगये, लोभके साथी कार्पण्य, अतृप्ति एवं दैन्य आदि उपस्थित होगये, और मोहके दूत स्तम्भ, तर्क, भ्रम आदि आ टपके ॥ १ ॥

फिर विवेक आदिने भी उनके प्रतिभाके रूपमें अपने परिवारको उपस्थित किया । अतः—

चारो ओर भयङ्कर सैन्य-राशिके फैल जानेसे घोर भयङ्कर अन्धकारसे व्याप्त दिगवकाश सैन्यके द्वारा उड़ाई गई धूलसे भर गया और ऐसा लगने लगा मानो मेघमालासे व्याप्त हो, इसप्रकार समस्त दिगवकाश पूरित हो गया ॥ २ ॥

अपि च । पूर्वपश्चिमसमुद्रयोरिव सरभससमरसाहसविनिद्रयोर्मोहविवेकसैन्ययोरन्योन्यसंकलनतः प्रस्तुत एवाभिमर्दः । तथाहि ।

शस्त्रास्त्रपक्षे मोहसैन्ये सति समागते ।
चिन्मुद्रायाश्रयन्त जेतुकामाः शमादयः ॥ ३ ॥

विविदिषा—(श्रुत्वा सहर्षम् । स्वगतम् ।) जयस्तु कस्य पक्षमवलम्बते वा द्रष्टव्यम् । (प्रकाशम् ।) ततस्ततः ।

निवृत्तिः—तदनु

पश्यन्नग्रे विवेकं तरणिमिव तमः कापि दुद्राव मोहः
कामः क्षामो विरागाद् द्रुतमभजत वा कां दिशं कांदिशीकः ।
क्रोधः प्रध्वस्तयोधः शमसविधगतः सद्य एव प्रलिल्ये
शेषा तूलाविशेषा कथमरिपृतनोपद्रुता विद्रुता वा ॥ ४ ॥

विविदिषा—(सपरितोषम् ।) तदनन्तरमविद्या किमाचारा ।

निवृत्तिः—सा तावदसूयाभिहितनिजबलपराभवजनितदुःखसंवेगमो-

और—मोह तथा विवेकके सैन्यगण पूर्व-पश्चिम सागरकी तरह एक दूसरेसे भिड़गये, फिर महान् संमर्द उपस्थित होगया ।

शस्त्र तथा अस्त्र में अति भीषण मोह सैन्यके आ मिलनेपर विजयेच्छु शम आदि ज्ञान-मुद्रामें उपस्थित हुए ॥ ३ ॥

विविदिषा—(सुनकर, सहर्ष, स्वगत) देखना है कि विजय किसके पक्षमें होती है । (प्रकट) इसके बाद ?

निवृत्ति—इसकेबाद,

जैसे सूर्यको सामने देखकर अन्धकार भाग जाता है उसी तरह विवेकको सामने देखकर मोह भाग गया, भयभीत होकर काम विरागशील बनकर किसी अज्ञात दिशामें खिसक गया, शमके सामने पहुँचतेही क्रोधके सभी पट्ठे पस्त होगये, वह स्वयं कहीं छिपगया, इसके अतिरिक्त सैन्य तूलकी तरह यातो शत्रु सैन्यसे मारे गये अथवा भाग खड़े हुए ॥ ४ ॥

विविदिषा—(संतोषके साथ) इसके बाद अविद्या की क्या स्थिति रही ?

निवृत्ति—अविद्याको जब असूयाने अपने बलके पराभव की बात कही,

हिता तयैव साश्वासमित्थमभिहिता—'भट्टिनि, तदेवंविधे महति संकटे भवतीमन्तरेण का प्रगल्भेत । तदिह भवत्यैव व्याप्रियताम् । भवदुपगम-मात्रेण यथापुरमेव सकलं परावर्तते ।' तदनु सा । (दीर्घं निःश्वस्य ।)

क्रोधागारमनुप्रविश्य दयितं व्याधूय पादानतं
संमत्यापि च तत्प्रतिश्रुततपःकान्तारयात्रामपि ।
भूयस्तस्य कथं व्रजामि पुरतः सिद्धिस्तथात्वेऽपि का
किं कुर्यामिह चित्तशर्मवचसो विस्रम्भतो वञ्चिताः ॥ ५ ॥

इति सविषादं परावृत्य गन्तुमैच्छत् । अथ प्रवृत्तिस्तामभिहितवती—'भट्टिनि, मन्युसंवेगजनितदुरध्यवसायैः पुरुषमेनमपहाय क्व गमिष्यसि । यत्र क्वापि तमन्तरेण स्वयमेव किं प्रभविष्यामि इति मन्यसे । किंच परभागगताः' इति किमस्माकमेते विप्रकृष्टाः पदान्तर एव तिष्ठन्ति । अत-स्तदग्रहणेनैव तदाचरितानि निरूपयिष्याम इति यथापुरं व्यवहिता एव तिष्ठन्तीति' । त्वं पुनरिह क्व समागता ।

तब वह दुःखसे विमूढ़ हो उठी, अनन्तर असूयाने उसे आश्वासन दिया और इसप्रकारसे समझाया कि—स्वामिनि, इसप्रकारकी विपत्तिमें आपके अतिरिक्त दूसरी कौन रमणी दृढ़ता दिखला सकती है । अतः आपही कोशिश करें, आपके पहुँचतेही सारी स्थिति पूर्ववत् होजायेगी । इसके बाद अविद्याने—(लंबी सांस लेकर) ।

क्रोधागारमें प्रवेश किया, पैरोंपर पड़ते हुए प्रियतमका तिरस्कार कर दिया, प्रियतमने जब वन जाने की प्रतिज्ञाकी तो उसने अपनी सम्मति भी देदी । फिर उसने सोचाकि कैसे वनमें भी प्रियके आगे पहुँच जाऊँ ? कैसा करने से भी क्या लाभ होगा ? हाय, क्या किया जाय, चित्तशर्माने धोखा दिया ॥ ५ ॥

इसप्रकार विषादके साथ लौट जाना चाहा । इसपर प्रवृत्तिने उससे कहा—स्वामिनि, आप इसप्रकार कोपके वेगमें उत्पन्न गलत व्यवसायके चलते इस पुरुषको छोड़कर कहाँ जायेंगी ? क्या आप ऐसा सोचती हैं कि इस पुरुषको छोड़कर जहाँ कहीं आप अपना प्रभुत्व कायम रख सकती हैं ? और क्या दूसरी ओर चले जानेसे वह हमसे दूर चले गये हैं ? यहीं बगल में ही तो हैं ? अतः

विविदिषा—अहं किल संदिष्टास्मि भगवता योगेन । वत्से विविदिषे, तत्रभवतीं शिवभक्तिमुपेत्य मन्मुखेन ब्रूहि—'भवन्नियोगमनुसंदधता मया कामपि निद्रामुपकल्प्य तत्र साक्षात्कारितसाम्बदक्षिणामूर्तिर्जीवराजः प्रमोदातिशयतरलितो भवत्पादकमलमवलोकयितुमतिमात्रमुत्कण्ठते । तदयमविलम्बितमेव भवदनुग्रहभाजनीकरणीयः' इति ।

निवृत्तिः—(श्रुत्वा सपरितोषम् ।) यावदिममर्थं भगवत्याः कर्णगोचरीकृत्य तामत्र सपदि संनिधापयामः ।

(इति निष्क्रान्ते ।)

प्रवेशकः ।

(ततः प्रविशति चित्तशर्मणा विवेकादिभिर्योगेन च सह यथानिर्दिष्टो जीवराजः ।)

जीवराजः—

मन्दस्मितस्नपितमञ्जुमुखारविन्दं
वामाङ्कसञ्चिवनितामुखलोलनेत्रम् ।

पुरुषका त्याग नहीं करकेही उनके आचारोंको देखती रहूँगी, अतः पहलेकी तरह छिपकर ही रहें" । तुम यहाँ कहाँ आईहो ?

विविदिषा—मुझे योगने कहा है कि—"वत्से विविदिषे, तुम भगवती शिवभक्तिके समीप जाकर मेरी ओरसे कहो कि आपके आदेशका पालन करते हुए मैंने एक प्रकारकी निद्रासी उत्पन्न करदी, उसी निद्रामें मैंने जीवराजको साम्ब दक्षिणामूर्ति शिवका साक्षात्कार करा दिया, शिव-साक्षात्कार-जनित आनन्दसे जीवराज अत्यन्त आह्लादित हो उठे हैं और वह आपके चरणकमलोंको देखनेके लिये अत्यन्त उत्सुक होरहे हैं । अतः आप उन्हें शीघ्र अपनी कृपाका पात्र बनायें" ।

निवृत्ति—(सुनकर सन्तोषके साथ) तबतक मैं इस बातको भगवती शिवभक्तिसे कहकर उन्हें यहाँ बुला लाती हूँ ।

(दोनोंका प्रस्थान)

प्रवेशक समाप्त

(चित्तशर्मा, विवेकादि, तथा योगके साथ जीवराजका प्रवेश)

जीवराज—मन्दहास्यसे प्रसन्नमुख मण्डल, वामभागमें सटी हुई प्रियतमाके

चिन्मुद्रिकाविधुतचित्तमलान्धकारं
ज्योतिर्मनो बत न जातु जहाति तन्मे ॥ ६ ॥

अपि च ।

सा दृष्टिः सदया स च स्मितसुधाह्रदः प्रसादो मुखे
तद्धोदारगभीरधीरमधुरं वीरासनाध्यासनम् ।
चिन्मुद्रापि च सा चिरंतनतमःसंदोहविध्वंसिनी
सर्वंहन्त पुरःपुरो दिशि दिशि प्रत्यक्षमालक्ष्यते ॥ ७ ॥

(पुरो विलोक्य ।) हन्त, विभातप्राया रजनी । यदिदानीम्

आयान्त्या दिवसश्रियेह भगवद्भक्त्येव विध्वंसिते
विश्वङ्मोहतमःप्ररोहनिकरे पुण्यत्प्रसादोत्तरम् ।
आविर्भावयितुं जगत्प्रसवितुर्ज्योतिर्वरेण्यं पुर-
श्चित्ते शुद्धिरिवाधिरस्ति कृतिनः प्राच्यां दिशि श्वेतिमा ॥ ८ ॥

(पुरतो विलोक्य ।) अहो खलु सार्वत्रिकता विषयानुबन्धस्य ।

मामन्विष्य समागमिष्यति वपुः स्पर्द्धत्यथ प्रेमतः
संलापैरपि तोषयिष्यति ततो भुक्तावशेषं बिसम् ।

मुखको देखनेमें आसक्त-नेत्र तथा ज्ञानमुद्रा द्वारा हृदयके अन्धकारको दूर करने वाले शिवरूप तेजको हमारा मन कभी नहीं छोड़ना चाहता है ॥ ६ ॥

वही दयापूर्णदृष्टि, हास्यपूर्ण वही मुखकी प्रसन्नता, वही उदारता तथा धीरतासे मनोरम वीरासन, चिरन्तन अन्धकार-समुदायको दूर करनेवाली वही ज्ञानमुद्रा, अहा, प्रतिदिशामें मैं अपने सामने प्रत्यक्ष देख रहा हूँ ॥ ७ ॥

(आगेकी ओर देखकर) अहा, रजनी प्रभातमें बदल रही है । क्योंकि अब—

आती हुई दिवसश्री की तरह भगवद्भक्तिने चारो ओर फैले हुए तमःसमूह रूप मोहको दूर करके प्रसन्नता फैला रही है । भगवान् सूर्यके श्रेष्ठ तेजको प्रकट करनेके लिये योगियों की चित्त-शुद्धिकी तरह पूर्वदिशामें स्वच्छता प्रकट हो रही है ॥ ८ ॥

(दूसरी ओर देखकर) अहो, विषयानुबन्ध कितना व्यापक है ! मुझे ढूँढ़ती, वार्त्तालाप द्वारा मुझे सन्तोषित करेगी, फिर मेरे मुँह से निकालकर

मद्वक्त्रादुररीकरिष्यति वधूरित्थं सदा चिन्तयन्
प्रागागत्य विहारपुष्करसरः कोकोऽयमास्तेऽधुना ॥ ६ ॥

सखे, भवदीयसंविधानसुदृढप्रवहणेन निस्तीर्ण इवायमविद्यासंकटविषयसागरः ।

चित्तशर्मा—वयस्य ननु निस्तीर्य विश्रमसुखमप्यनुभूयते । किमुच्यते—'निस्तीर्ण इव' इति ।

राजा—सखे चित्तशर्मन्, अपि नाम निष्प्रत्यूहमेव तामत्रभवतीं विद्यामुपलभेय ।

(नेपथ्ये ।)

इयमहमागतास्मि ।

राजा—(श्रुत्वा । सहर्षम् ।) सखे, प्रसन्नमधुरगम्भीरवृत्तिः 'इयमहमागतास्मि' इत्युपश्रुता वाचोयुक्तिः कर्णविवरमाप्याययति ।

(पुनर्नेपथ्ये ।)

वत्से निवृत्ते, कियच्चिरं विलम्बसे । सत्वरमुपगम्यताम् । अपि च सत्यमागतोऽत्र चित्तशर्मणा सह राजा ।

भुक्तावशेष कमलनाल खायेगी, इसप्रकार सोचता हुआ यह कोक पहले ही आकर विहार-सरोवर पर बैठा हुआ है ॥ ६ ॥

सखे, तुम्हारे बताये गये उपाय रूप मजबूत नौकाके सहारे मैंने अविद्यासंकट रूप सागर पार सा कर लिया है ।

चित्तशर्मा—वयस्य, पार करके विश्राम सुखका अनुभव भी कर रहे हैं, आप 'पार-सा कर लिया है' ऐसा क्यों कहते हैं ।

राजा—मित्र चित्तशर्मा, विघ्नबाधाके बिना विद्याको मैं पा जाता ?

(नेपथ्यमें)

यह आगई मैं ।

राजा—(सुनकर, सहर्ष) सखे, 'यह आ गई मैं' इस प्रकार का यह प्रसन्न गम्भीर शब्द कर्ण-विवरको तृप्त कर रहा है ।

(फिर नेपथ्यमें)

वत्से निवृत्ति, कितना विलम्ब करती हो, शीघ्र आओ । ठीक ही यहाँ चित्तशर्माके साथ राजा आ गये हैं ॥

निवृत्तिः—नन्वत्र संनिहित एवायम्। यावदेनमुपसरामः।

(ततः प्रविशति निवृत्त्या सह शिवभक्तिः।)

शिवभक्तिः—वत्से निवृत्ते, अपीदानीं सफलस्ते परिश्रमः। अपि दिष्ट्या-वमविद्याहुर्पहान्मोचितो महाराजः। अपि हतकल्पास्ते मोहादयः। अपि सफलमोजायितं शमादीनाम्। अपि निर्व्यूढप्रतिज्ञश्चित्तशर्मा। यद्-थमिममुद्देशमनुप्रापितश्चित्तशर्मणा महाराजः।

निवृत्तिः—अम्ब, भवदनुग्रहः किमिव हि श्रेयो न समग्रयिष्यति।

राजा—(सत्वरमुपसृत्य।)

भवविषसागरतरणे तरणे तरणे तमोविमोहस्य।
भगवति भावुकमूर्ते शतकृत्वस्ते नमोऽस्तु शिवभक्ते॥ १०॥

(इति चित्तशर्मणा सह साष्टाङ्गं प्रणमति।)

शिवभक्तिः—वत्सौ, अविलम्बितमेवाभिमतेन युज्येथाम्।

चित्तशर्मा—भगवति, भवदीयनिर्देशेन कथं कथमप्यमुं देशमानीतो

निवृत्ति—यही तो यह है। इनके पास चलें।

(निवृत्तिके साथ शिवभक्तिका प्रवेश)

शिवभक्ति—वत्से निवृत्ति, अब तुम्हारा परिश्रम सार्थक हुआ। भाग्यवश अविद्याके हाथसे महाराजको छुटकारा मिला है। मोह आदि हतकल्प हो गये हैं। शम आदिका पराक्रम-प्रदर्शन सार्थक हुआ। चित्तशर्माकी प्रतिज्ञा पूरी हुई कि महाराजको चित्तशर्मा इस प्रदेशमें लासके।

निवृत्ति—अम्ब, आपका अनुग्रह किस कल्याणको नहीं सम्पन्न करेगा?

राजा—(शीघ्र आकर)

संसाररूप विषसागरको पार करनेमें नौकास्वरूप तथा मोहान्धकारको दूर करनेमें सूर्य-किरणस्वरूप, कल्याणमयमूर्त्ति, भगवति शिवभक्ति, आपको सौ बार प्रणाम॥ १०॥

(चित्तशर्माके साथ साष्टाङ्ग प्रणाम करता है)

शिवभक्ति—वत्सो, आप लोग शीघ्र अभिमत सिद्धिसे युक्त हों।

चित्तशर्मा—भगवति, आपके आदेशसे किसी तरह महाराज इस देशमें लाये गये हैं। अग्रिम कर्त्तव्य आपके वशमें है, परन्तु महाराज विद्याके विरहमें

महाराजः । अनन्तरकरणीये तत्रभवती प्रमाणम् । परंतु विद्याविरहकातरः क्षणमपि विलम्बं न सहते देवः ।

शिवभक्तिः—वत्से विरक्ते, मद्वचनाद्उपनिषदेवीमुपेत्य ब्रूहि—'अत्र किल कुलमहत्तरासु त्वमेकिका परावरज्ञा सर्वस्य जनस्य विधेयार्थसंदर्शिनी दृष्टिरिव सर्वकार्येषु प्रभवसि । भवदसंनिधानेन सर्वैरितिकर्तव्यतामूढैः स्थीयते । तदविलम्बितमेव विवाहनेपथ्यविधिना प्रसाधितामत्र भगवतीं विद्यामानीय पुण्डरीकभवने संनिधापय' इति ।

विरक्तिः—यदाज्ञापयति भगवती । (इति निष्क्रामति ।)

शिवभक्तिः—वत्स, किमतीव संभ्रान्त इव दृश्यसे ।

राजा—भगवति, तत्किं ब्रवीमि । हर्षातिशयगद्गदया वाचा निगदितुं न पारयामि । भवन्नियोगेन किंचिदिव विश्रान्तिसुखमनुभवन्नवशोपपन्नया विरचितसकलबाह्यकरणमुद्रया योगनिद्रया परिगृहीतोऽस्मि । तत्र किल दिव्यमङ्गलसूचकं कमपि स्वप्नमालोकयम् ।

इतना अधीर हो रहे हैं कि वह क्षणभरके विलम्बको भी सह सकनेमें असमर्थ हो रहे हैं ।

शिवभक्ति—वत्से विरक्ति, उपनिषद् देवीके पास जाकर मेरी ओरसे कहो कि "यहाँ कुलवृद्धाओंमें आप ही अकेली ऊँच-नीच समझनेवाली और सभी व्यक्तियोंके कर्तव्योंको समझने वाली दृष्टिकी तरह सभी कार्योंमें समर्थ हैं । आपके नहीं रहनेसे सभी कर्तव्यताज्ञानमूढ हो रहे हैं । अतः शीघ्र वैवाहिक विधिसे सज्जित भगवती विद्याको लाकर इस पुण्डरीक-भवनमें सन्निहित करें" ।

विरक्ति—आपकी जो आज्ञा । (जाती है)

शिवभक्ति—वत्स, तुम बहुत घबड़ायेसे क्यों दीख रहे हो ?

राजा—भगवति, सो क्या बताऊँ ? हर्षकी अधिकताके कारण गद्गद वाणी द्वारा कहनेमें असमर्थ हो रहा हूँ । आपके आदेशानुसार विश्रमसुखका अनुभव कर रहा था कि अवशभावसे आई हुई समस्त बाह्येन्द्रियोंको व्यर्थ बनानेवाली योगनिद्राने मुझे अपने वशमें कर लिया, उस योगनिद्राकी स्थिति में मैंने दिव्यमङ्गल-सूचक कुछ स्वप्न देखे ।

शिवभक्तिः—वत्स, कथमिव ।

राजा—

वर्षानिशीथे गहनान्धकारे वनं किमप्यद्भुतदुष्टसत्त्वम् ।
कुतोऽपि हेतोरवशात्प्रपन्नो दीनां दशां कामपि निर्विशामि ॥११॥

तथासति ।

विघटितसकलक्लेशं विपरीतविभावितास्खिलावस्थम् ।
आनन्दकन्दलमिव किमपि महोमण्डलं समाविरभूत् ॥ १२ ॥

तदनु दुःस्वप्नतः प्रबुद्धोऽहमिति निकाममभिनन्दता सावधानप्रणिहित-दृष्टिना मया तस्मिन्महोमण्डले निभृतं निरूप्यमाणे

श्यामामुत्पलशोभिनीमगसुतामङ्के दधानं मुदा
पुस्तं चामृतकुम्भमक्षसरमप्याबिभ्रतं पाणिभिः ।
अद्राक्षं भसितावदातवपुषं रुद्राक्षमालापुषं
चिन्मुद्राविशदीकृतात्मविभवं स्मेराननेन्दुं शिवम् ॥१३॥

शिवभक्ति—वत्स, क्या देखा ?

राजा—मैंने देखा कि बरसातकी रात है, निबिड़ अन्धकार सर्वत्र व्याप्त है, मैं किसी घोर वनमें भटक रहा हूँ जहाँ भयङ्कर हिंसकजन्तु घूम रहे हैं, किसी कारणवश मैं दीन दशाको प्राप्त हो रहा हूँ ॥ ११ ॥

उसी समय, समस्तक्लेश विघटित हो गये, मेरी दीन-दशा विपरीत अवस्थामें बदलने लगी, और मेरे आगे आनन्दकी जड़स्वरूप तेजःपुञ्ज प्रकट हुआ ॥ १२ ॥

इसके पश्चात् मैं दीन-दशामें पहुँचानेवाले उस दुःस्वप्नसे जग उठा, उस जागरणसे मुझे बड़ी खुशी हुई, सावधान भावसे मैंने दृष्टि डाली तो मुझे उस तेजःपुञ्जके बीचमें—

श्यामा उत्पलदल-सुन्दरी-पर्वत-राजपुत्रीको प्रसन्नतासे गोदमें लिये हुए, हाथोंसे पुस्तक, अमृत-कलश तथा अक्षमालाका धारण किये हुए, भस्म-लेपनसे शुभ्र शरीर, रुद्राक्षमाला-भूषित, तथा ज्ञानमुद्रा द्वारा अपने आत्म-तत्त्वकी भावना करते हुए प्रसन्न-वदन शिवजीके दर्शन हुए ॥ १३ ॥

तदनु—

जय जगदेकनाथ जय सर्वसुराधिपते
जय निगमान्ततत्त्व जय सत्यसुखाम्बुनिधे।
जय निरुपाधिवत्सल जयाश्रितकल्पतरो
जय जगदार्तिभञ्जन जयेश दयाजलधे॥ १४॥

जय करुणानुषङ्गवदपाङ्गतरङ्ग कणा-
धिगततथाप्रभाबलजिन्मुखदेवतते।
जय जलजासनादिविबुधव्रजमौलिमणि-
प्रकरमयूखकर्बुरितपादसरोजरुचे॥ १५॥

दुर्वारोपनमद्भवार्तिदवशुष्प्रध्वंसिमन्दस्मित-
ज्योत्स्नाचारुमुखारविन्दपरमानन्दैकसान्द्राकृते।
सानन्दाश्रुसनन्दनादिशमवत्संघातचूडातटी-
हस्ताम्भोरुहकोरकीकृतशरत्पर्वेन्दुबिम्बायित॥ १६॥

इसके बाद—

हे संसारके एकाधीश्वर, समस्त सुरगणके स्वामी, वेदान्तके रहस्य, सत्य, ज्ञान तथा सुखके सागर, अकारणदयालु, आश्रित जनके लिये कल्पवृक्षरूप, संसारके कष्टोंको दूर करनेवाले दयासागर, परमेश्वर, आपकी जय हो॥ १४॥

हे करुणापूर्ण अपाङ्गशाली, आपके अनुग्रहसे इन्द्रादि देवगणने थोड़ा-थोड़ा करके उतना महान् प्रभाव प्राप्त किया है।

ब्रह्मादि देवगण के मस्तकस्थित मणिगणकी किरणोंसे आपके चरण-कमलकी कान्ति-मिश्रित होती रहती है॥ १५॥

आप दुर्वाररूपमें आनेवाली संसार-बाधाको अपने मन्दहास्यसे दूर करते हैं आपके कान्तिपूर्ण मुखकमलसे परमानन्द प्रकट होता रहता है, आनन्दाश्रुसे भरे नयनवाले सनन्दन आदि शमीजनोंके समुदायके मस्तक-लग्न कर-कमल ऐसे प्रतीत होते हैं मानो आप शरत्-कालके पूर्णचन्द्र बिम्ब हैं जिसके सामने वह कमल कोरकमें बदल गये हैं॥ १६॥

संसारार्णवकर्णधार सकलक्लेशान्धकारच्छिदा-
चण्डांशो सकलेप्सितार्थघटनासंतानचिन्तामणे।
सत्यज्ञाननिधे सकृत्प्रणमते सायुज्यलक्ष्मीप्रद
स्वामिन् दैवतसार्वभौम दयया मां पाहि साम्ब प्रभो ॥ १७ ॥

इति नितान्तमानन्दपरवशो भगवन्तमहमस्ताविषम्। तदनन्तरं च शिरसा निपीड्य चरणाम्बुजे गुरोरसकृत्प्रणम्य मयि किंचिदुत्थिते, उपहूय मामुपगतस्य दक्षिणे श्रवणे किमप्यकथयद्दयानिधिः।

शिवभक्तिः—(श्रुत्वा सपरितोषम्। स्वगतम्।) हन्त, अतिवत्सलेन भगवता महोपनिषदुपदेशेन परमनुगृहीतोऽसि। इतः करगतकल्पैव भवतो विद्या।

(ततः प्रविशति निजपरिवारेण समुपनिषदेवी।)

उपनिषदेवी—

अजरमनादिमध्यमविनाशि चिदेकरसं
किमपि महो जगज्जनकमस्ति तदेव सुखम्।

आप संसाररूप सागरके पार करानेमें कर्णधार-स्वरूप, तथा संसाररूप अन्धकारको दूर करनेमें सूर्यतुल्य हैं, समस्त अभीष्ट वस्तुको देनेमें चिन्तामणि समान हैं, सत्य ज्ञानके निधि हैं? एकबार प्रणाम करनेवालोंको आप सायुज्यलक्ष्मी प्रदान करते हैं, आप सकलदेवश्रेष्ठ हैं, हे साम्ब शिव, आप कृपया मेरी रक्षा करें ॥ १७ ॥

इस प्रकार नितान्त आनन्दपरवश होकर मैंने भगवान् शिवकी स्तुति की। इसके बाद मैं गुरुदेवके चरणोंमें शिर नवाकर उठा तो दयालु साम्ब-शिवने मुझे पास बुलाकर कानोंमें कुछ कहा।

शिवभक्ति—(सुनकर प्रसन्नताके साथ) (स्वगत) अहा, अति दयालु भगवान् शिवने आपको महोपनिषद्के उपदेशसे अनुगृहीत किया है। इसके आगे तो विद्या आपके हाथमें ही है।

(इसके बाद सपरिवार उपनिषद् देवीका प्रवेश होता है)

उपनिषत्—जरा आदि तथा मृत्युसे रहित, अविनाशी, ज्ञानमय, कुछ ऐसा तेज है जिससे संसार उत्पन्न होता है। यह समस्त प्रपञ्च मरुमें मरीचिकाकी

मरुपु मरीचिकाजलमिवासदिदं सकलं
तदवगमेन मृत्युमतितीर्य सुखीभवत ॥ १८ ॥

विविदिषा—अम्ब, कथमेतत् ।

स्मृतिः—

अभीषोरज्ञानादहिरुदयति त्रासयति च
प्रतीते तत्तत्त्वे न किमपि यथा संप्रति तथा ।
स्वरूपस्याज्ञानाद्वरमभित्येवमुदभू-
दिदं तस्य ज्ञाने सति फलति मिथ्यैव सकलम् ॥ १९ ॥

अत्र का नाम कथंता ।

(विविदिषा पुराणादीनां मुखं पश्यति ।)

पुराणादयः—वत्से, एकमेवैतत् ।

आनीतं न परेण केनचिदिदं स्वाज्ञानविस्तारितं
स्वस्मिन्नेव निषद्य तुच्छविषयक्लेशान्विधत्ते बहून् ।

तरह असत्य है, उसी तेजके ज्ञानसे मृत्युको पार करके आप सभी सुखी होवें ॥ १८ ॥

विविदिषा—मातः, यह कैसे होगा ?

स्मृति—रज्जुके अज्ञानसे ही सर्प उत्पन्न होकर भय उत्पन्न करता है, तत्त्वके समक्षमें आ जानेपर न सर्प होता है न भय; उसी प्रकार स्वरूप-ज्ञानके नहीं होनेसे यह उच्चावच प्रपञ्च पैदा हो जाता है । और स्वरूप-ज्ञानके हो जानेपर यह सब मिथ्या सिद्ध हो जाता है ॥ १९ ॥

यहाँ पर यह कैसे होगा ? यह प्रश्न ही क्यों हो ?

(विविदिषा पुराणादिका मुख देखती है)

पुराणादि—वत्से, यह एक ही बात है—

इसको किसी दूसरे ने ला नहीं दिया है, यह तो स्वरूप-ज्ञानके नहीं होनेसे फैलता तथा अपनेमें ही रहकर नानाविध वैषयिक क्लेशोंको उत्पन्न किया करता है । जिस व्यक्तिको "सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म" यह ज्ञान हो जाता है

सत्यं ज्ञानमनन्तमस्मि तदहं ब्रह्मेति जानाति चे-
त्तस्येदं तपनोदये तम इव स्फीतं जगल्लीयते ॥ २० ॥

श्रद्धा—उपपन्नमेवैतत् ।

विविदिषा—भवत्वेवम् , किमत्र मूलमिति विविदिषामि ।

पुराणादयः—वत्से, श्रूयताम् ।

माया नाम विचित्ररीतिरसती काचिन्मनोलासिनी
सत्यं वस्तु निगूहति प्रकटयत्यत्यन्तमिथ्यायितम् ।
द्वे शक्ती प्रथिते चिरेण सहजे तस्यास्तथा तद्वशा-
दात्मा सन्नपि नेक्ष्यते जगदसत्सद्भूतमालोक्यते ॥ २१ ॥

(राजा सरभसमुत्थाय चित्तशर्मणा सह साष्टाङ्गं प्रणमति ।)

उपनिषद्देवी—वत्सौ, अचिरेण लिप्सितलाभहर्षितौ भूयास्तम् ।

(शमादयः सर्वेऽपि ससंभ्रममुत्थाय यथोचितमुपचर्य यथावथमुपविशन्ति ।)

शिवभक्तिः—भगवति, महानुभावा ह्यसि ।

उसका वह क्लेश सूर्योदय होनेपर अन्धकारकी तरह स्वतः समाप्त हो-जाता है ॥ २० ॥

श्रद्धा—यह तो ठीक ही है ।

विविदिषा—ऐसी ही बात हो, लेकिन इसका मूल क्या है ? मैं यह जानना चाहती हूँ ।

पुराणादि—वत्से, सुनो—

माया कुछ ऐसी विचित्र तथा ठगनी है कि वह मनको मोहित करके सत्यको छिपा देती तथा अत्यन्त मिथ्या वस्तुको प्रकाशित करती रहती है । उसकी दो स्वाभाविक शक्तियाँ प्रसिद्ध हैं, आवरण शक्ति तथा विक्षेप शक्ति, इसी शक्तिद्वयके प्रभावसे सत्यभूत आत्माका भी प्रत्यक्ष नहीं होता है और असद्भूत जगत्का साक्षात्कार होता है ॥ २१ ॥

(राजा वेगसे उठकर चित्तशर्माके साथ साष्टाङ्ग प्रणाम करता है)

उपनिषद्—बच्चे, अचिर कालमें आपलोगोंको अभीष्ट लाभ होवे ।

(शम आदि सभी शीघ्रतासे उठकर और उचित सत्कार करके बैठते हैं)

शिवभक्ति—भगवति, आप महाप्रभावशालिनी हैं । कपिल, कणाद,

कपिलकणादजैमिनिपतञ्जलिसत्यवती-
तनुभवगोतमाभिमतमार्गविभिन्नतया ।
सुरतटिनी समुद्रमिव दीव्यदनेकमुखी
गमयसि वस्तुतत्त्वमखिलानपि भिन्नरुचीन् ॥ २२ ॥

तदत्र भगवत्या कियच्चिरमुदास्यते ।

उपनिषद्देवी—भगवति, मत्तो न किंचिदन्तरमास्ते । प्रागेव साम्बशिवानुग्रहेण सिद्धरूपतया प्रणवादयः सम्यक्प्रसाधितया विद्यया सह पुण्डरीकभवनोपकण्ठे निर्विकल्पसमाधिनामनि महेशितुरारामे युष्मदुपगमं महेश्वरसान्निध्यं च प्रतीक्षमाणास्तिष्ठन्ति ।

(नेपथ्ये)

बध्यन्तामुरुतोरणानि सरसैराशाश्च गीतामृतैः
पूर्यन्तामपि तन्यतां पुरमिदं संस्कारशुद्धान्तरम् ।
आरूढो वृषराजमद्रिसुतया देवोऽयमागादितो
जीवस्यानितरत्वतो मम तया विद्याविवाहोत्सुकः ॥२३॥

पतञ्जलि, व्यास, तथा गौतम द्वारा प्रकटित मार्गोंमें बँट जानेके कारण—अनेक धारामें बहनेवाली गङ्गा जैसे समस्त धाराओंसे समुद्रमें गिरती है—उसी तरह तुम सभी तरहकी रुचियोंवालोंको वस्तुतत्त्वका ज्ञान कराती हो ॥ २२ ॥

फिर यहाँ आप कब तक उदासीनता दिखायेंगी ।

उपनिषद्—भगवति, मुझमें कोई अन्तर नहीं है । साम्ब शिवकी कृपासे सिद्धरूप प्रणव आदि साधुरूपमें सजाई गई विद्याके साथ पुण्डरीक-भवनके समीप निर्विकल्प समाधि नामक शिवके उद्यानमें आपके तथा शिवके आनेकी प्रतीक्षा कर रहे हैं ॥

(नेपथ्यमें)

तोरण बाँधे जाय, सरस गीतोंसे दिगन्त पूर्ण हों, गांवका अभ्यन्तर भाग पूर्णरूपसे परिष्कृत किया जाय, इधर वृषभरूढ शिव पार्वतीके साथ पहुँच गये, जीव तो परमात्मासे अभिन्न है, उसका विवाह विद्यासे सम्पन्न हो रहा है, यह महान् उत्सव है ॥ २३ ॥

शिवभक्तिः—संनिहित एव परमेश्वरः । यदिदानीं

श्वेतन्ते हरितो दशापि परितश्चूडाविधुज्योतिषा
नृत्यच्छांकरघण्टिकाघणघणारावैः श्रवः पूर्यते ।
संमर्दोपनमत्सुपर्वमुकुटीकोटीरवाटीरसा-
वुद्दण्डप्रमथौघदण्डपटली साटोपमाटीकते ॥ २४ ॥

(ततः प्रविशति साम्बशिवः ।)

साम्बशिवः—प्रिये, सिद्धकल्पसंकल्पा भवती । यदयमुपनत एव जीवस्य विद्याविवाहोत्सवः ।

देवी—नाथ, भवदनुग्रहः किं न समग्रयिष्यति ।

(सर्वे सरभसमुत्थाय प्रणमन्ति ।)

राजा—(चित्तशर्मणा सह सप्रश्रयमसकृत्प्रणम्योत्थाय भक्तिसमुत्तेजिताभिर्वाक्प्रवृत्तिभिरभिष्टौति ।) जय जय विजयी भवापारसच्चिद्घनानन्दभूमन्नविद्यातमः-सिन्धुनिर्मग्नदीनोद्धिधीर्घारसोपात्तकल्याणमूर्ते, समस्ताभिनन्द्याद्भुतोदारचित्रापदानस्फुरच्चारुकीर्ते, विखण्डं निजान्येव रुण्डानि

शिवभक्ति—शिव समीप आ गये हैं, क्योंकि इस समय—शिव शिरःस्थित चन्द्रमाकी किरणोंसे दिशायें स्वच्छ हो रही हैं। महादेवके गण नाच रहे हैं उनकी घण्टियोंके शब्द कानको पूर्ण कर रहे हैं, वेगसे आते हुए देवगणके मुकुटपर उद्दण्ड प्रमथ-गणके दण्ड वेगसे गिर रहे हैं ॥ २४ ॥

(साम्ब शिवका प्रवेश)

साम्ब शिव—प्रिये, तुम्हारा संकल्प पूरा हो गया, क्योंकि जीवके साथ विद्याका विवाहोत्सव उपस्थित है ।

देवी—नाथ, आपकी कृपासे क्या नहीं सम्पन्न होगा ।

(सभी वेगसे उठकर प्रणाम करते हैं)

राजा—(चित्तशर्माके साथ सादर उठकर प्रणाम करके भक्तिपूर्ण वचनोंसे स्तुति करता है)

जय हो, आपकी जय हो, हे अपार सच्चिदानन्द स्वरूप आप विजयी हों, अविद्याऽन्धकाररूप सागरमें डूबे हुए दीन जनोंके उद्धारकी इच्छासे आपने कल्याणकारी रूप धारण किया ।

तद्भोमतः प्रीणितत्वदयालेशलब्धप्रभावाधिकस्तब्धविष्वग्जगन्मण्डली-लुण्ठनाकुण्ठनाच्चण्डिमोद्दण्डदोर्दण्डकण्डूलतागेन्दुकक्रीडितान्दोलितत्रस्त-चण्डीककैलासतत्कूटकिंचित्पदाङ्गुष्ठविन्यासपातालनिर्मग्नतन्मूललग्नाखु-वक्त्रं ददत्यार्तरक्षःकुलाध्यक्षदाक्षिण्यभूयःप्रवृत्तानुकम्पार्द्रचित्तवृत्तेर्मादा-द्गणोद्यच्चपेटाहतोद्यण्डमार्तण्डगण्डच्युटत्कीर्णदन्तौघनक्षत्रलोकीभवद्व्यो-मास्तुद्रुतानुद्रुतातिद्रुतानुद्रुताटोपसंक्षोभतः साध्वसध्वस्तधावत्पतत्क्रन्दद-ब्रह्मेन्द्रविष्णुशक्रादितत्तत्सदस्यामरश्रोणकं गाढरभ्याहतध्वंसदण्डाहतिप्रच्युट-च्छिष्टरस्रुक्स्रुवादिच्छटापर्पटस्फोटवट्टापठापोद्भटं घोरठाठारिगम्भीरकुम्भी-सहध्वस्तसर्पिर्घटौघस्रवद्भूरिसर्पिर्घणौघः (?) समिन्धानविष्वक्कृनिरुन्धा-नवैतानवह्निश्चरिचिरालीढशालापिनद्धस्फुटद्वंशठात्कारघोराभटीभूमनिर्वृत्तसं-

---

सकल प्रशंसनीय अद्भुत तथा उदार चरित्रके द्वारा उत्पादित कीर्तिगाथासे आप युक्त हैं।

रावण ने अपने शिर काट काट कर उनके होमसे आप को प्रसन्न किया, आपने थोड़ी दया कर दी, उसे प्रभाव प्राप्त हो गया, वह घमण्डी हो गया, उसने विश्वको लूटना प्रारम्भ किया, उसकी प्रचण्डताजनित युद्धलिप्सा इतनी बढ़ी कि उसने गेन्द की तरह कैलास पर्वतको उछालना प्रारम्भ किया, इस पर पार्वती भयभीत हो उठी, तब आपने चरणके अंगूठेसे पृथ्वी छू दी, और कैलासकी जड़ें पातालको पहुंच गईं, उसकी जड़ें पातालवर्त्ती चूहोंके मुखोंमें पैठ गईं, इस अप्रत्याशित घटनासे क्षिप्त राक्षसराज रावणके ऊपर उसकी दयासे आपका चित्त आर्द्र हो उठा था।

मदमत्त शिवगणकी चपेटाके आघात से आहत मार्त्तण्डके कपोलसे उनके दांत टूटकर गिरने लगे, टूटकर गिरे हुए वह दांत आकाशमें तारेके समान दीखने लगे, देवगण यज्ञभूमिसे इधर उधर भाग चले, उनके भागनेके संक्षोभ-से रोते हुए विष्णु, ब्रह्मा, शक्र आदि देवगण भागने लगे, यज्ञीय शम्या, दृषत्, यूप आदि के द्वारा आहत स्रुक्-स्रुव आदि ठक-ठककी आवाजके साथ चकना-चूर होने लगे, घीके घड़े फूटफाट गये, उससे वह्नि धधक उठी, उस वह्निकी

वर्तमृद्धक्षुद्धतिस्तब्धदक्षाध्वरध्वंसकृद्वीरभद्रावतारारविन्दाक्षवेधश्चिरान्विष्ट नोदृष्टसांदृष्टिकव्याधपश्वादिनिःश्रेयसैश्वर्यविश्राणनस्पष्टदृष्टाकृते ।

स्मरमदतिमिरोष्णधामन्निमथोदर्पभूयिष्ठ-देवासुरव्रातसंक्षुभ्यमाणाब्धिगर्भोद्भव व्याप्तविष्वण्डचण्डज्वलज्ज्वालजालावलीढाखिलाशामुखाकालकालानलत्कालहालाहलार्चिःपरिप्लुष्टसाक्रन्दकोलाहलोद्घुष्टवेधोहरिप्रष्ठनष्टत्रिलोकीसमुज्जीवनायाशु तन्निप्रहारध्वनियंत्नजम्बूफलग्रासलीलायितव्यक्षिप्तापारमाहात्म्यभूमामिताम्भोनिधे देव साहन्तमावधसो विष्टपादा च पातालतः क्षिप्रमेता जगन्मण्डलीः खण्डडिण्डीरपिण्डानिवावर्तकोटौ समाघूर्णयेयेति दर्पादनल्पभटीधारमाविर्भवन्त्यभ्रकल्लोलिनीनाथ युष्मज्जटामण्डले क्वापि नीवारशूकाग्रसंसक्तनीहारलेशः किलालक्ष्यते ।

ज्वालासे यज्ञशाला जल उठी, उस शालामें लगे बांस फटने लगे, इस प्रकारसे, हेवीरभद्रावतार, आपने दक्षके यज्ञका विनाश किया ।

कमलनयन विष्णु एवं ब्रह्मा आपका चिरकालसे अन्वेषण करते हैं ।

आपने अभूतपूर्व व्याध पशु आदिको निःश्रेयस प्रदान करके अपना प्रभाव व्यक्त किया ।

काम रूप अन्धकारके लिए आप सूर्यसदृश हैं ।

देव तथा दानव गर्वोद्धत होकर सागर मन्थन करने लगे, उस समय सागरके गर्भसे निकले हुए विषकी ज्वालासे दिशायें भर उठीं, कालानलकी ज्वालासे जलते हुए तथा चिल्लाते हुए ब्रह्मा-विष्णु एवं त्रिलोकीको समुज्जीवित करनेके लिये आपने जम्बूफलकी तरह उस काले कालविषको निगल कर अपने दयासागरके अमित माहात्म्यकी अभिव्यक्ति की थी ।

हे नाथ, अहङ्कारके साथ ब्रह्मलोकसे लेकर पातालपर्यन्त वर्त्तमान जगन्मण्डलीको फेनपुञ्जकी तरह मचा दूंगी इस घमण्डसे आगे बढने वाली गङ्गा आपके जटाजूटमें नीवारके अग्रभागमें लगन ओसकी बूंदकी तरह दीखती है ।

पामरास्त्वाममेयप्रभावोच्छितं प्राकृतैर्देवतैरेकवन्मन्वतेऽहो भवान्नाम विश्राणने कोऽपि चिन्तामणिर्नाम संतानको नाम हन्तातिफल्गुप्रबोधानुरूपातिमूढस्तुतिप्रक्रिया सेयमत्यद्भुते विश्वविद्योतनोद्दामतेजोनिधौ भास्करे कीटखद्योततारोपबद्धाति मे कल्पकप्रष्टताद्दिभूत्युत्कटानेककोट्या सहावेक्षणेन क्षणेनैव लोकाननेकान्विधाय प्रणत्या प्रणुत्या प्रपत्त्यापि वा जातु यस्ते मतस्तस्य तत्स्वाम्यविश्राणनं ते किंयच्चन्द्रचूडामणे।

सकलविबुधदुर्जयैतज्जये जातु केनापि रूपेण किंचिद्यशोऽहं लभेयेति लोभाच्छताङ्गं तदङ्गं शरः सूत इत्यादि यस्किंचिदायोधनाङ्गत्वमालम्ब्य सनद्धद्वृष्टेषु विश्वंभरापुष्पवच्छीरिवेधःपुरोगेषु जाग्रत्सु देवेषु नैडालरोचिःसनाथेन मन्दस्मितेनैव तिस्रः पुरो भस्मसात्कृत्य दैत्यान्विनिर्जित्य दृप्तान्मनुष्यान्पशूकृत्य विश्वस्वशूनां पतित्वेन शश्वन्तमः स्वाम्यतः संभृतापारविश्वाधिपत्योन्नते।

अपरिमित प्रभावसे पूर्ण आपको अज्ञानवश लोक अन्य देवोंके सदृश ही मानते हैं।

अभिमत फल प्रदान करनेमें आप चिन्तामणि हैं या कल्पवृक्ष हैं, यह आपकी स्तुति तो अज्ञानोपहत जनोंकी स्वज्ञानानुसार प्रवञ्चना है, यह आपकी स्तुति उसी तरहकी है जैसे सूर्यमें खद्योतका आरोप हो, कल्पनासे परे अपनी विभूतियोंसे अनेक लोगोंका निर्माण करके नमस्कार स्तुति तथा शरणागतिसे जो आपका प्रिय बन जाता है—उसे आप उन लोकोंका स्वामित्व प्रदान कर देते हैं, हे चन्द्रशेखर; आपके लिये यह कौनसी बड़ी बात है।

समस्त देवमण्डली द्वारा अजेय इस त्रिपुरको किसी प्रकार जीतकर मैं कुछ यश प्राप्त करूँ, इस लोभसे पृथ्वीकी पूंछके समान विष्णु, ब्रह्मा आदि कोई धनुष बना कोई बाण बना, सभी तैयार होकर प्रसन्न हो रहे थे कि आपने ललाट-नयन-ज्योतिसे सनाथ मन्दस्मितसे ही त्रिपुरको दग्ध करके गर्वोद्धत मनुष्योंको पशु बना दिया, स्वयं पशुपति बने, और अपने अपार विश्वाधिपत्यको उन्नत किया।

संनिकृष्टं निजस्यायुषोऽन्तं विदित्वा विपद्विघ्नतः प्राग्झटित्येव पूजासमाप्त्याशयारब्धपूजे मृकण्डोस्तूजे लुठत्स्वव्रतो दैन्यकारुण्य-भूयिष्ठमाक्रन्दनैर्बन्धुषु, स्वाधिकारावलेपेन कालेऽथ काले तमाकर्षति क्रोधतो वामपादाभिहत्या स विध्वंसितो मेषविध्वंसमेतत्प्रहारप्रणादोद्भव-द्भक्तवात्सल्यकीर्तेर्दिगन्तप्रयाणोचितप्रोच्चलत्यन्त्रठात्कारितो नाम तेना-न्तकः सर्वतोऽद्यापि साशङ्कमाहिण्डते तत्समो भक्तवात्सल्यसिन्धुर्न कश्चिन्न भूतो न भावी च।

किं भूयसा जल्पितेन त्वमेकोऽसि सत्यस्वरूपः त्वदन्य-न्मृषैवाखिलं सत्यमत्युत्कटार्कादितेजस्त्रयीकोटिकोट्यापि नो भास्यसे, भास्यते भानसिन्धो भवद्भानलेशेन कृत्स्नं जगत्, किंच लिप्सा-पदं वल्लभाद्वल्लभं वस्तु न त्वत्परं, किंचिदिष्टं भवेदात्मकामाय सर्वम्, ह्यतो वस्तु सत्यं त्वमेव प्रकाशः, त्वमेव प्रियं च त्वमेवासि तादृक्, त्व-मात्मा पुरः पृष्ठतः पार्श्वतो भूतसद्भाविकालेषु वा सर्वतः सर्वदा वर्तसे हन्त तिष्ठन्निधावेव कार्पण्यभाग्मन्दभागीव तं त्वामनन्यापरोक्षातिनेदि-

---

मार्कण्डेय मुनिने समझा कि मेरी आयुका अन्त समीप है, उस आपत्तिके आनेसे पहले ही थोड़ी देवाराधना कर लूं, इस आशासे मुनिने पूजा करना प्रारम्भ किया, उनके बन्धु-बान्धव चिल्लाचिल्लाकर लोटने लगे, अधिकारदर्पसे यमराज मुनिको घसीटने लगे, इस पर आपको क्रोध हो आया, आपने वाम-पादाघातसे भेंडकी तरह यमराजको आहत किया, उनकी चिल्लाहटसे आपकी भक्तवत्सलताजन्य कीर्त्ति उत्पन्न हुई, यम दिगन्तमें भाग खड़े हुए, आज भी यम आपके भयसे शङ्कायुक्त बने रहते हैं, आपके सदृश भक्तवत्सल न हुआ है न होगा।

अधिक कहने से क्या लाभ? आप ही एक सत्य हैं, आपसे अतिरिक्त समस्त विश्व मिथ्या है, आप तीव्र सूर्यकरसे भी नहीं भासित होते हैं, आपके ही तेजके लेशसे विश्व भासित होता है, आप से बढ़कर कोई भी वस्तु स्पृहणीय नहीं है, सारी वस्तुएं अपने लिये ही प्रिय हुआ करती हैं, अतः आप ही सत्य, प्रकाश, एवं स्पृहणीय हैं, आप ही आत्मस्वरूप, आगे-पीछे तथा भूत-भविष्य-वर्त्तमान में विद्यमान हैं, हाय, मैं निधिके रहते हुए भी दीन मन्दभागी बना

भ्रमाराद्दपश्यन्नविद्येन्द्रजालप्रसूते निमज्जामि संसारमिथ्यार्णवे ।

निगमशिखरिकूटकोटीसदोदित्यराशाकृतोद्दामतेजोनिधे सच्चिदानन्दमूर्ते जगत्सर्गरक्षोपसंहारधीरेय तालीदलादिस्फुरद्वातचक्रातिवेगभ्रमद्भूरितेजःक्षयद्योतिनानाविधैतज्जगन्मण्डलोन्मीलनध्वान्तविध्वंसनध्वान्तशश्वत्परावर्तनालातचक्रक्रमालोकलीलाविनोदिन प्रमाणीघसिद्धस्वसत्तासमत्ताकसांकल्पिकस्वाप्निकव्यावहारादिनानार्थजालेन्द्रजालोदयाविस्थतिध्वंसनानागधिष्ठान, तत्र सर्वत्र सूत्रात्मनाधिष्ठितापारनैकप्रकारोन्मिषत्क्लेशभूयिष्ठजन्मादिकुन्मोहगाढान्धकारौघनिःशेषविध्वंसनोच्चण्डमध्याह्नमार्तण्डसंसाररोगग्रसद्धन्वयोगोन्द्रसंसन्मनोमन्थनिर्मथ्यमानश्रुतिप्रातदुग्धाब्धिसंभूयत्सदानन्दचिच्चन्द्रिकासान्द्र तत्पूर्णचन्द्रोदयाद्वैतसाम्राज्यसिंहासनाध्यक्ष मन्नाथ केनापि सत्संततिर्जायतां श्रेयसाम्, मामकप्राग्जनुःकोटिकोट्यार्जितेनापि पुण्येन दृष्टोऽसि दिष्ट्या न मामुञ्झ दीनम्, त्वदन्यः शरण्यो

रह गया, आप सदा प्रत्यक्ष तथा समीपस्थित बने रहे फिर भी मैं आपको नहीं देखता हुआ अविद्याकृत इन्द्रजालस्वरूप इस संसार में डूबता रहा हूँ ।

हे वेदस्वरूप पर्वतकी चोटीपर सदा प्रकाशित होनेवाले दिव्यतेजके निधान, हे सच्चिदानन्दस्वरूप, हे संसार-सृष्टि-रचा एवं संहार में दक्ष, ताड़के पत्ते आदि में पैदा होनेवाली आंधी की तरह वेगसे घूमते हुए सूर्य, चन्द्रमा एवं वह्नि रूप तेजस्त्रयको द्योतित करके जगन्मण्डलको अन्धकार में डालकर इच्छाप्रसूत अलातचक्रको आप विनोदार्थ घुमाया करते हैं ।

प्रमाणोंसे सिद्ध अपनी सत्तासे ही सत्तावाले संकल्पसिद्ध, स्वप्नसिद्ध, तथा व्यवहारसिद्ध नाना पदार्थरूप इन्द्रजालके विनाशके आप पात्र हैं ।

उन सभी स्थानोंपर आप सूत्ररूपमें स्थित रहकर नाना क्लेशपूर्ण जन्मादिके कारण बनते हैं, मोहरूप गाढान्धकारके विनाश करनेमें आप मध्याह्नमार्तण्ड हैं ।

हे संसाररूप रोगसे ग्रस्त योगिगणकी मण्डलीके मनोमन्थनरूप क्षीरसागरसे उत्पन्न सदानन्दज्ञानचन्द्रिकासे पूर्णचन्द्र, उस चन्द्रके उदित होनेपर जो अद्वैत-साम्राज्य प्रकट होता है, आप उस राज्य के सिंहासनके अध्यक्ष हैं ।

हे मेरेनाथ, किसी तरह वह अद्वैत-साम्राज्य मुझे मिल जाय, जो कल्याणकी जड़ है, भाग्यवश मेरे जन्म-जन्मान्तर के पुण्यों से मुझे आपके दर्शन मिले हैं,

न मे पामरस्याधुना त्वामपि प्राप्य तीर्णो न चेत्स्यामहं मे परा का गतिः दीनबन्धो दयापारसिन्धो भवाम्भोधिनिस्तार धौरंधुरीकर्णधारातिदुर्वार-तापत्रयप्लुष्टसंजीवनोदारधाराधरानादिमोहान्ध्यनष्टामितस्वार्थमाद्दग्दृगा-नन्दसिद्धाञ्जनात्मन्, नमस्ते नमस्ते समस्तेश्वरायाप्रधृष्यौजसे तेजसां तेजसे भूयसां भूयसे प्रेयसां प्रेयसे ॥ २५ ॥

साम्बशिवः—वत्से, किमितो विलम्ब्यते।

शिवभक्तिः—नाथ, सर्वे वयमितः प्रस्थिता एव कल्याणमण्डपाधि-गमाय।

तण्डुः—इत इतो देवः।

(सर्वे कल्याणमण्डपगमनं नाटयन्ति।)

शिवः—हन्त, महासार्थगमनमहोत्साहेनाविदितविप्रकर्षः पदान्तरवद्-ऋजुरेष महानतीतः पन्थाः। (पुरो विलोक्य।)

शुकादिनानाद्विजघोषघोषितं फलोपनम्रागममण्डलोज्ज्वलम्।

मुझ दीनको मत छोड़िये, मुझ दीनकी आपके अतिरिक्त कोई रक्षक नहीं है, आप दयाके अपार सागर हैं।

हे संसारसागरसे पार करवानेकी चतुरता रखनेवाले कर्णधार, हे अतिदुर्वार तापत्रयसे दग्धजनके लिये उदारमेघ, हे अनादि मोहरूप आन्ध्यके कारण अनन्त स्वार्थसे रहित हमारे सदृश जनके लिये सिद्धाञ्जनस्वरूप, आपको नमस्कार है, आप अजेय पराक्रम, तेजके तेज, भूमाके भी भूमा और प्रेयके भी प्रेय हैं ॥२५॥

साम्बशिव—वत्से, अब विलम्ब क्यों कर रही हो।

शिवभक्ति—नाथ, हम सभी यहाँ से कल्याणमण्डप जाने के लिये प्रस्थित ही हैं।

तण्डु—इधरसे चलिये महाराज।

(सभी कल्याणमण्डप जानेका अभिनय करते हैं)

शिव—अहा, बहुत बड़े जनसमुदायके साथ चलनेके उत्साहसे दूरीका पता ही नहीं चला, और पदान्तरकी तरह इतना बड़ा मार्ग तय कर लिया। (आगे देखकर)

यह परमेश्वरका सुन्दर उद्यान है जहाँ शुकादिनानाब्राह्मणरूप पक्षी कलरव

समाधिनामस्फुरदन्तरातपं प्रसन्नमुद्यानमिदं महेशितुः ॥ २६ ॥
यावदेतदुपसरामः ।

(इति कल्याणमण्डपमधिगम्य यथोचितमुपविशन्ति)

शिवभक्तिः—वत्स, भद्रपीठमिदमासनपरिग्रहेणालंक्रियताम् ।

(राजा तथा करोति ।)

देवः—प्रस्तूयतामनन्तरकरणीयम् ।

(नेपथ्ये)

कोणे यस्य जगन्त्यमूनि जलधेर्डिण्डीरजालोपमं
जन्मस्थेमलयान्भजन्ति सहरिब्रह्मादिमृग्योऽपि सन् ।
लोकस्यानुजिघृक्षया धृतवपुः शक्त्या स्वयानन्यया
स श्लिष्टो जगदम्बया पशुपतिः कुर्यात वां मङ्गलम् ॥ २७ ॥

शिवभक्तिः—(श्रुत्वा । सहर्षम् ।) इदं प्रसादनाम्नो निदिध्यासनमहाराजपुरोहितस्य सुलग्नसांनिध्यसूचनमाशीर्वचनम् ।

कर रहे हैं, जहाँ फलभारनम्र आगमरूप वृक्ष वर्तमान हैं, और जहाँ समाधिनामक प्रकाश फैल रहा है ॥ २६ ॥

(सभी कल्याण-मण्डपमें जाकर यथोचित रूपमें बैठते हैं)

शिवभक्ति—वत्स, तुम इस भद्रासनको सुशोभित करो ।

(राजा वैसा करता है)

देवी—आगेका कर्त्तव्य सम्पादित हो ।

(नेपथ्य में)

जिस प्रकार समुद्रके कोणमें फेनसमुदाय उत्पन्न होते, स्थिति प्राप्त करते तथा नष्ट होते हैं, उसी तरह जिस पशुपतिके एक अंशमें यह जगत्-समुदाय जन्म स्थिति तथा प्रलय प्राप्त करते हैं, वह ब्रह्मा-विष्णु आदि द्वारा ढूंढे जाते हैं, लोकानुग्रहवश उन्होंने शरीर धारण करके अपनी शक्तिरूपा जगज्जननी पार्वतीसे आश्लेष प्राप्त किया है, ऐसे पशुपति वर-वधूका मङ्गल करें ॥ २७ ॥

शिवभक्ति—(सुनकर, सहर्ष) यह निदिध्यासन महाराजके पुरोहित प्रसादका सुलग्नके समीपवर्त्ती होनेकी सूचना देनेवाला वचन है ।

(पुनर्नेपथ्ये)

इयं न लभ्या तपसा न धर्मेण मेधया नापि बहुश्रुतेन ।
शिवप्रसादेन तवोपनम्रा विद्या तदेनां भज सावधानः ॥ २८ ॥

शिवभक्तिः—(श्रुत्वा । सहर्षोल्लासम् ।) संनिहितो मुहूर्तः । प्रवर्ततामातोद्यम् ।

राजा—

यद्गर्भं जठरं हरेरिव जगन्त्यध्यासते वृत्तय-
स्तिस्रस्तत्र्यपि तादृगोमिति परब्रह्माभिधानं परम् ।
एतद्रूपतया निरन्तरमितस्तौर्यत्रिकोदञ्चिते
नादब्रह्मणि पूर्वरङ्गविधया कृत्स्नं जगल्लीयते ॥ २९ ॥

(ततो निदिध्यासनमहाराजः सह विद्यया प्रविश्य ।)

रहितारातिवितत्या राजन्नदसीयवृत्तिसंतत्या ।
भव परमानन्दघनो भवसागरपारविश्रान्तः ॥ ३० ॥

(फिर नेपथ्यमें)

"यह तपस्या, धर्म, मेधा, वा शास्त्राध्ययनसे नहीं प्राप्त हो सकती है, यह विद्या तो केवल शिवभक्तिसे ही प्राप्य है, इसलिये इसे सावधान होकर स्वीकार कीजिये" ॥ २८ ॥

शिवभक्ति—(सुनकर—प्रसन्नतासे) मुहूर्त्त नजदीक आ गया है, बाजे बजें ।

जैसे भगवान्‌के जठरमें चतुर्दश भुवन लीन रहा करते हैं उसी तरह 'ओम्' इसपदमें तीन वृत्तियाँ तथा तीन वेद लीन हैं। वह ओंकार परब्रह्मका नामान्तर है । ओंकारके रूपमें नृत्य-गीत-वादित्रके द्वारा जब नाद ब्रह्म उठाया जाता है, तो पूर्वरङ्गके रूपमें समस्त विश्व उसमें लीन हो जाता है ॥ २९ ॥

(इसके बाद निदिध्यासन महाराज विद्याके साथ आकर)

राजन्, विरोधि-समुदायसे रहित होकर इस विद्याकी सततानुवृत्ति रूप सन्ततिके साथ भवसागरके उसपार विश्राम पाकर आप परमानन्दमय हों ॥३०॥

(इति विद्यां जीवराजाय प्रयच्छति ।)

जीवराजः—(विद्यां पाणौ गृहीत्वा सपरितोषम् ।)

दृष्टिर्ममासि दयिते सुकृतातिरेकाद्
दिष्ट्याधुनापि मिलिता मुषिता विमोहाः ।
सुप्तप्रबुद्ध इव सुभ्रु तव प्रसादा-
दात्मा किलायमहमित्यवधारयामि ॥ ३१ ॥

विद्या—

अस्तं विमुक्तमिव शारदचन्द्रबिम्बं
शाणावलीढमिव शैवलितं च रत्नम् ।
भूयः प्रपद्य पुरुषोत्तम वल्लभं त्वा-
मात्मानमस्मि सुहिता परिपूरितेव ॥ ३२ ॥

चित्तशर्मा—(पुरोऽवलोक्य । सविस्मयम् । राजानं प्रति ।) अहो पारेगिरामसुष्याः प्रभावः । यदधुना—

शतकोटिकोटिजननेषु भूरिशः
सुखदुःखभोगपरिपाकसाधनम् ।
यदविद्ययातिचिरकालसंचितं
तदियं प्रदीपयति कर्म बल्वजम् ॥ ३३ ॥

(ऐसा कहकर विद्या जीवराजको सौंपती है)

जीवराज—(विद्याका हाथ पकड़ कर, प्रसन्नताके साथ)

प्रिये, तुम मेरी दृष्टि हो, पुण्योदय होनेसे अब आकर खुल गई हो, हमारे सारे मोह दूर हो गये । हे सुन्दरि, सोकर जगे हुए जनकी तरह मैं अब अपनेको आत्मस्वरूप निश्चित कर रहा हूँ ॥ ३१ ॥

विद्या—ग्रहण-गृहीत होकर मुक्त चन्द्रमण्डलके समान तथा शाण पर चढ़ाये गये शैवलित रत्नके समान पुनः पुरुषोत्तम रूप आपको अपने प्रियतमके रूपमें पाकर मैं तृप्त तथा पूर्ण हो रही हूँ ॥ ३२ ॥

चित्तशर्मा—(आगे देखकर, आश्चर्यसे, राजाके प्रति) अहा, इसका प्रभाव अवर्णनीय है, इस समय—

शत-शत कोटि जन्मोंमें सुख तथा दुःखके भोगका साधन जिसकी अविद्या अतिचिरकाल-संचित नानाविध कर्मको प्रदीपित किया करती है ॥ ३३ ॥

(तदिदमवलोक्य नितान्तपरिक्लिष्टा यथागतमविद्या सपरिवारा परावृत्य गच्छति ।)

राजा—(विलोक्य । सहर्षम् । चित्तशर्माणं प्रति ।)

त्वयेदं निर्व्यूढं ननु परममीदृङ्मम सुखं
ब्रुवे किं कुर्वे किं भवदुचितमेवं व्यवसितम् ।
अविद्याशक्त्याहं भवदनितरो ह्यस्मि सुचिरा-
दितो विद्याशक्त्या मदनिरभूतो भव सुखी ॥ ३४ ॥

(पुरतो निर्दिश्य । सप्रश्रयम्)

विवेकाद्या एते विरतिरियमेषा विविदिषा
निवृत्तिः सा सर्वैरनितरतया साधितमिदम् ।
अहं कश्चित्ते केचिदिति सति भेदे खलु मिथो
भवेदायस्तानामुचितमुपचारोक्तिरचना ॥ ३५ ॥

(शिवभक्तिं प्रणम्य । सविनयादरम् ।)

क्वाहं मोहमहान्धकारजलधौ गाढं निमग्नश्चिरा-
दीदृक्शाश्वतचित्सुखाव्यवहिता केयं भवत्संगतिः ।

(इसको देखकर दुःखिनी अविद्या अपने परिवारके साथ वापस चली गई)

राजा—(देखकर—सहर्ष—चित्तशर्माके प्रति)

आपने मेरे इस सुखमय कर्त्तव्यको पूर्ण किया, हम क्या कहें और क्या करें ? यह कार्य आपके ही योग्य हुआ । अविद्या शक्तिके कारण अब तक मैं आपके अभिन्न था, अब विद्याशक्तिके कारण आप मुझसे अभिन्न रहकर सुखी हों ॥ ३४ ॥

(आगे दिखाकर, नम्रभावसे)

यह विवेक आदि, यह विरति, यह विविदिषा, यह निवृत्ति, सभीने अभिन्नभावसे मिलकर यह कार्य संपन्न किया, मैं कोई दूसरा हूँ और ये कोई दूसरे हैं यह बात भेद रहने पर होती है, इन श्रान्त व्यक्तियोंके प्रति औपचारिक बात ही अब उचित है ॥ ३५ ॥

(शिवभक्तिको प्रणाम करके, विनय तथा नम्रतासे)

कहाँ तो मैं मोहरूप महान्धकारमें लीन था और कहाँ यह आपकी

मन्ये विश्वगुरोर्मूर्ध्नस्य मुकुटालंकारमालायिता
गङ्गा कीकटकीटतापशमनी जाता किमन्यद् ब्रुवे ॥ ३७ ॥

(ततः सहैव भक्त्या साम्बशिवमुपसृत्य ।)

दुग्धार्णवे दुग्धलवः प्रविष्टो यथा तथाहं त्वमभूवमेव ।
भेदावभासेन तथापि किंचिदौपाधिकेन प्रणमाम्यहं त्वाम् ॥ ३७ ॥

(प्रणम्योत्थाय बद्धाञ्जलिः शिवं प्रति ।)

विलीय स्वाविद्याघनयवनिकायामथ वदन्
विचित्रं नेपथ्यं नटसि शिव नानात्मकतया ।
स्वयं जाग्रत्पश्यस्यपि च परमानन्दभरितो
जयत्यत्याश्चर्यं जगदिति भवन्नाटकमिदम् ॥ ३८ ॥

शिवभक्तिः—(परमेश्वरीं प्रति ।) भगवति, निरुपाधिकया भवदनुकम्पया तदेवमयं कृतार्थो जीवराजः ।

सङ्गति, जो नित्य ज्ञान तथा सुखसे सम्बद्ध है । मालूम पड़ता है कि विश्वपिता शिवके मस्तकपर मालाकी तरह लगनेवाली यह गङ्गा मुझ कीटकी तरह क्षुद्र जनके लिये भी तापशान्तिकरी हुई है, अधिक क्या कहूँ ॥ ३६ ॥

(शिवभक्तिके साथ साम्बशिवके पास जाकर)

जब क्षीरसागरमें क्षीरबिन्दुका प्रवेश होता है तब उसकी सत्ता अलग नहीं रह जाती है, उसी तरह आपसे मिलकर मैं आप ही हो गया हूँ । औपाधिक भेद ज्ञानके कारण आपमें तथा निजमें भेद मानकर मैं आपके चरणोंमें प्रणाम करता हूँ ॥ ३७ ॥

(प्रणामोपरान्त उठकर, हाथ जोड़कर शिवके प्रति)

हे शिव, अपनी अविद्यारूप यवनिकामें लीन होकर आप विचित्र रूप धारण करके नाना भावसे नृत्य किया करते हैं, जागरूक भावसे आप अपना नाटक स्वयं देखा करते तथा परमानन्द-मग्न बने रहते हैं, आपका यह जगत् रूप नाटक आश्चर्य है ॥ ३८ ॥

शिवभक्ति—(परमेश्वरीके प्रति) भगवति, आपके अकपट कारुण्यसे यह जीवराज कृतकृत्य हो रहे हैं ।

देवी—(सप्रसादस्मितम् ।) वत्स, किं ते भूयः प्रियमुपहरामि ।

जीवः—अम्ब, किमितोऽपि परमवशिष्यते । तथापीदमस्तु ।

अस्तु स्वस्ति जगत्त्रयाय जगतीं रक्षन्तु भूमीभुजो
धर्मेणैव पथा भवन्तु सुखिनः सर्वेऽपि गोब्राह्मणाः ।
पर्जन्यान्नमखक्रमेण जगतश्चक्रं तदाबध्यतां
विद्वांसो विजयीभवन्तु भगवद्भक्त्या श्रयी वर्धताम् ॥ ३९ ॥

इति ।

(निष्क्रान्ताः सर्वे ।)

इति सप्तमोऽङ्कः ।

देवी—(प्रसन्नताकी हँसीके साथ)

मैं तुम्हारा और क्या प्रिय सम्पादित करूँ ?

जीव—अम्ब, अब क्या अवशिष्ट रह गया है ? फिरभी यह हो, जगत्त्रय-का कल्याण हो, राजगण धर्ममार्गसे पृथ्वीकी रक्षा करें, सकल गोब्राह्मण सुखसम्पन्न हों, मेघ—अन्न—यज्ञ इस क्रमसे जगत्का चक्र चलता रहे, विद्वानोंकी जय हो, और भगवद्भक्तिसे वेदका अभ्युदय हो ॥ ३९ ॥

(सभीका प्रस्थान)

सप्तम अङ्क समाप्त

मैथिल पण्डित श्रीरामचन्द्र मिश्रकृत 'विद्यापरिणयन' का
हिन्दी रूपान्तर समाप्त ।

टिप्पणी

(NOTES)

१—'नैमित्तिकनित्यकाम्यकर्मपरः' (पृ. ३)

नित्यकर्मत्वञ्च—तदनुष्ठाने चित्तशुद्ध्यतिरिक्तफलविशेषाजनकत्वे सति तदननुष्ठाने प्रत्यवायसाधकत्वम् , यथा—

'यावज्जीवमग्निहोत्रं जुहोति'।

'अहरहः सन्ध्यामुपासीत'।

नैमित्तिककर्मत्वं च—तदनुष्ठाने फलविशेषजनकत्वे सति तदननुष्ठाने प्रत्यवायजनकत्वम् , यथा—

'यस्याहिताग्नेरग्निर्गृहान् दहेत् सोऽग्नये क्षामवते पुरोडाशमष्टाकपालं निर्वपेत्'।

'राहूपरागे स्नायात्'।

काम्यकर्मत्वं च—तदनुष्ठाने फलविशेषजनकत्वे सति तदननुष्ठाने प्रत्यवायाजनकत्वम् , यथा—

'सौर्यं चरुं निर्वपेद् ब्रह्मवर्चसकामः'।

'उद्भिदा यजेत पशुकामः'।

\+ \+ \+

२—मत्स्यालकः (पृ. ९)

'मम श्यालकः' समास होने पर 'मत्स्यालकः'।

श्यालक यह तालव्यशकारघटित रूप प्रसिद्ध है, परन्तु सकार दन्त्यघटित रूप भी होता है, देखिये—

स्वामीकी अमरकोषटीका २-६-३२।

देवी—(सप्रसादस्मितम् ।) वत्स, किं ते भूयः प्रियमुपहरामि ।

जीवः—अम्ब, किमितोऽपि परमवशिष्यते । तथापीदमस्तु ।

अस्तु स्वस्ति जगत्त्रयाय जगतीं रक्षन्तु भूमीभुजो
धर्मेणैव पथा भवन्तु सुखिनः सर्वेऽपि गोब्राह्मणाः ।
पर्जन्यान्नमखक्रमेण जगतश्चक्रं तदावर्ततां
विद्वांसो विजयीभवन्तु भगवद्भक्त्या त्रयी वर्धताम् ॥ ३९ ॥

इति ।

(निष्क्रान्ताः सर्वे ।)

इति सप्तमोऽङ्कः ।

देवी—(प्रसन्नताकी हँसीके साथ) :

मैं तुम्हारा और क्या प्रिय सम्पादित करूँ ?

जीव—अम्ब, अब क्या अवशिष्ट रह गया है ? फिरभी यह हो, जगत्त्रय-का कल्याण हो, राजगण धर्ममार्गसे पृथ्वीकी रक्षा करें, सकल गोब्राह्मण सुखसम्पन्न हों, मेघ—अन्न—यज्ञ इस क्रमसे जगत्का चक्र चलता रहे, विद्वानोंकी जय हो, और भगवद्भक्तिसे वेदका अभ्युदय हो ॥ ३९ ॥

(सभीका प्रस्थान)

सप्तम अङ्क समाप्त

मैथिल पण्डित श्रीरामचन्द्र मिश्रकृत 'विद्यापरिणयन' का
हिन्दी रूपान्तर समाप्त ।

टिप्पणी

(NOTES)

१—'नैमित्तिकनित्यकाम्यकर्मपरः' (पृ. ३)

नित्यकर्मत्वञ्च—तदनुष्ठाने चित्तशुद्ध्यतिरिक्तफलविशेषाजनकत्वे सति तदननुष्ठाने प्रत्यवायसाधकत्वम्, यथा—

'यावज्जीवमग्निहोत्रं जुहोति'।

'अहरहः सन्ध्यामुपासीत'।

नैमित्तिककर्मत्वं च—तदनुष्ठाने फलविशेषजनकत्वे सति तदननुष्ठाने प्रत्यवायजनकत्वम्, यथा—

'यस्याहिताग्नेरग्निर्गृहान् दहेत् सोऽग्नये क्षामवते पुरोडाशमष्टाकपालं निर्वपेत्'।

'राहूपरागे स्नायात्'।

काम्यकर्मत्वं च—तदनुष्ठाने फलविशेषजनकत्वे सति तदननुष्ठाने प्रत्यवायाजनकत्वम्, यथा—

'सौर्यं चरुं निर्वपेद् ब्रह्मवर्चसकामः'।

'उद्भिदा यजेत पशुकामः'।

\+ \+ \+

२—मत्स्यालकः (पृ. ९)

'मम स्यालकः' समास होने पर 'मत्स्यालकः'।

स्यालक यह तालव्यशकारघटित रूप प्रसिद्ध है, परन्तु सकार दन्त्यघटित रूप भी होता है, देखिये—

स्वामीकी अमरकोषटीका २·६-३२।

'अतः स्यालः स ते किञ्चित् स्वद्गुणैः समवाप्स्यति'।

कथासरित्सागर ४।७६.

३—अष्टावात्मगुणाश्च (पृ. ४४)

'वायोर्नवैकादश तेजसो गुणा जलस्त्रिप्राणभृतां चतुर्दश।
दिक्कालयोः पञ्च पडेव चाम्बरे महेश्वरेऽष्टौ मनसस्तथैव च' ॥

दिनकरी।

४—इष्टापूर्त्तपुरोगमाः

इष्टम्—यज्ञादिकर्म,

'अग्निहोत्रं तपः सत्यं वेदानां चार्थपालनम्।
आतिथ्यं वैश्वदेवञ्च इष्टमित्यभिधीयते' ॥

इति हेमचन्द्रः।

पूर्त्तम्—खातादिकर्म,

'पुष्करिण्यः सभा वापी देवतायतनानि च।
आरामश्च विशेषेण पूर्त्तकर्म विनिर्दिशेत्' ॥

इति भरतः।

पूर्तमेवापूर्त्तमिति साम्प्रदायिकाः, यथोक्तम् :—

'इष्टापूर्त्तं द्विजातीनां प्रथमं धर्मसाधनम्'

इति वराहपुराणम्।

५—'शबरताविमूढः'

एक राजा थे, उन्हें एक छोटा-सा पुत्र था, संयोगवश युद्ध में शत्रु से पराजित होकर वह वनमें रहने लगे। उनका वह पुत्र किसी तरह शबरों के हाथों में पड़ गया, सुन्दर देखकर शबरोंने उसे पाला, पोसा, स्वसम्प्रदायोचित आखेटादिकी शिक्षा देकर पूरा शबर बना दिया, कालक्रमसे कभी वह बालक अपने पितासे मिला, पिताने उसे पहचाना, अपने पास रख लिया, और उसे समझा दिया कि तुम शबरपुत्र नहीं राजपुत्र हो। धीरे-धीरे उस बालकके शाबरसंस्कार मिट गये, और उसमें राजपुत्रके संस्कार प्रकट हुए। पूर्णतः राजपुत्रसंस्कारोंसे युक्त हो जानेपर उसका विवाह राजपुत्रीसे करा दिया गया।

६—संव्यानमैणीं त्वचम्

संव्यान—परिधान, देखिये—

'अन्तरं बहिर्योगोपसंव्यानयोः' पाणिनिसूत्रकी वृत्ति—'बाह्ये परिधानीये चार्थे' इत्यादि।

७—संकल्पलेशोद्भवम्

जीव परमात्माके संकल्पमात्रसे उत्पन्न होता है।

'एकोऽहं बहु स्यां प्रजायेय'

यही ईश्वरका संकल्प है।

८—देवयान-पितृयान-पथानभिज्ञाः

देवयानम्, देवानां यानम्, देवविमानम्, देवरथ इति शब्दार्थकल्पतरुः, देवप्रापकं यानम् देवयानम्, यथा ऋग्वेदे :—

"प्रमे पन्था देवयाना अदृश्रन्नमर्धन्तो वसुभिरिष्कृतासः"

इसी तरह पितृप्रापकं यानं पितृयानम्। देवयानसे स्वर्ग तथा पितृयानसे पितृलोक लिया जाता है।

विद्यापरिणयनम्

श्लोकानुक्रमणिका

श्लो०	पृ०
अंसे विश्रद्	८९
अग्रेऽभूद्	३२
अङ्गेनैव	११०
अजर	१५६
अद्वैतं	४३
अपथ	१३१
अपूर्व	५
अप्राकृत	७
अप्राकृता	८६
अभीषो	१५७
अयं विरागः	१३१
असार	७१
अस्तु	१७२
अस्मत्काम	३०
अस्या	५८
आचार्य	८६
आदर्श	६४
आनन्द	४
आनीतं	१५७
आप्लाव्य	५२
आबाल्या	७
आयान्त्या	१५०
आयुर्भूरि	३७
आर्द्रांगसा	६२
आलिङ्गितो	९०
आलिप्ये	५२
आलीभिः	११८
इन्द्रः	९९
इयंन	१६८
इष्टापूर्तं	९८
उच्चैर्भूरि	७८
उत्तुङ्ग	८७
उद्यानानि	२०
उद्यानो	४२
उन्मीलिता	९७
उपवास	९०
ऊर्णाचन्दन	९
ऊर्ध्वं	७४
एतद्वाङ्	४०
एतास्तावद्	२२
एतेमच्छ	४९
एषा चित्र	११०
कपिल	१५९
कमपि	१०९
कमलो	१०२
कर्माणि	११
कर्मोत्तेजित	७५
का चिन्ता	९३
का पुण्यातु	१६
कामक्रोध	४८
काले क्वापि	४५
किं दैवं	३२
किमेतै	१२३
किमेभि	१३८
कियत्काला	१३९
कुतोऽपि	६४
कोजे	१६७
क्रीडा	१७
क्रीडोद्यान	१
क्रोधागार	१४८
क्व स्या	४६
क्वाहं	१७०
क्षणादूर्ध्वं	७५
क्षुण्णा	५
गते तादृक्	१३८
गन्धेन	५९
गर्वोन्माद	१४६
गाढोन्नद्ध	२४
गाढोद्ध	१२९
गुरुदेव	३
गात्रानु	६६
गोवत्सा	१४२
ग्रस्तं	१६९
चित्रेणा	१२५
जनिप्रभृति	११
जय करुणा	१५५
जय जगा	१५५
जीवः	४२
जीवस्या	४९
जीवस्यावरणं	७८
ज्योत्स्ना	८१
तडिज्जटि	१०४
तत्रास्ते	२५
तदागमा	८०

तदेतेषु	१३५	पद्मोल्लास	५१	मन्दस्थित	१४९
तस्मिन्क्षिप्ट	२५	परिहित	७४	मयूर	७८
तापत्रस्त	२७	पश्यच्चग्रे	१४७	मां कल्याणि	५७
तामालिख्य	५०	पश्यन्त्येव	३३	मामन्विश्य	१५०
तिर्यंगति	८९	पिष्टर	४४	मामेवं	११४
तेजोवैभव	६०	पृथिव्यापो	७२	माया नाम	१५८
त्वं चित्ता	५७	प्रक्रीड	१०२	मुदितालि	८
त्वङ्ग	२०	प्रत्यच्च	१७५	मृदुनाभि	५३
त्वयेदं	१७०	प्रत्यच	३५	मोक्तुं ताप	५८
त्वस्य	१३२	प्रत्यक्षमनु	७५	मोहस्य	११५
दृश्वा	१७	प्रत्यक्षा	७७	यः स्नातो	४
दर्पणवद	२४	प्रत्यग्र	८१	यत्किञ्चित्	१७
दिशि	१४६	प्रत्यङ्ग	८३	यदि खलु	२९
दुग्धार्णवे	१७१	प्रसीदन्ने	१३६	यद्गर्भ	१६८
दुर्वारो	१५५	एतासु	१३६	यद्वाभतो	५
दृष्टि	१६९	प्राग्जन्मीय	२	यस्य ताता	४
देवस्यास्य	५७	प्रातरचन्द्र	३४	यस्यां	४८
देशः कालो	७२	प्रावृषि	१११	यातं तरप्रण	१२०
देहो भूत	४३	प्रासादेषु	१४५	याच्ञा	४४
देहोऽयं	७७	बध्यन्ता	१५९	ये देवयान	४५
धुनीते	६१	बालोऽप्ययं	८५	ये संसार	९९
ननु ते	३३	बृहस्पति	१०५	रचित	१०७
न ब्रूषे	५६	ब्राह्मं	४५	रतिकङ्कण	९२
न वाग्	११५	भवदन	१२१	रहिता	१६८
न स्तोतामिह	१२७	भवविष	१५२	रूपं नाम	४३
नादब्रह्म	१२८	भस्मलेप	८०	रोमन्थाल	२७
नानापूर्व	४	भस्मा	११	वर्ध्यं च	९६
नामैव	१०	भस्माव	३६	वर्षानिशीथे	१५४
निरुप्य	१४०	भुञ्जानः	६६	वामङ्गे	९२
निर्व्याजो	१२५	भूतं भावि	१०	विगर्हित	९७
निवृत्ते	१४१	मज्जत्स्वर्ण	१३१	विघटित	१५४
नेदीयः	१०८	मधुलहरी	११२	विद्याख्या	३७
नैदाघोष्म	११७	मन्त्रोऽयं	१३४	विद्यानाम	१४

विशुत्ताण्ड	१३०	श्यामोहाद	१२	सत्यानन्द	४७
विनोतो	१०५	शतकोटि	१६२	समीरणे	३९
विलासिनीनां	३७	शश्व	१३	सरसभविता	३
विलासे	१२७	शस्त	१०३	सर्वेषां	१४३
विलीय	१७१	शस्त्रास्त्र	१४७	सा दृष्टिः	१५०
विवेकाख्या	१७०	शार्दूल	१९	सारूप्यरूपं	८४
विश्लेष	११७	शास्त्रं	८७	सुखमस्त्र	२१
विष्णुर्न	२६	शास्त्राणि	३२	सुचिर	९
विसृज	१२२	शुकादिनाना	१६६	सुषुप्तिर्वा	१११
विस्तम्भ	४६	शुद्धामृत	५१	सोत्कम्प	८
विस्तम्भप्रण	६०	श्यामा	१५४	सौवर्ण	९८
विहरति	१०२	श्येनेनाभि	१३५	स्नान	९०
विहिते	१०२	श्वेतम्ते	१६०	स्फायन्ते	१०१
वीक्षानि	६८	संदिश्ये	१२५	स्मृति	१०८
वेदारण्य	३६	संसारा	१५६	स्वाध्याया	३५
वेदारण्यनिकं	२९	सज्जन्तो	२	हस्तेनानु	९६
वेदारण्यनिवासि	४२	सत्यं नैव	१२४	हृद्यं वस्तु	४१
वेदारण्या	४७	सत्यज्ञान	१४	हृष्टाङ्ग	१०५
श्यामुग्ध	१३	सत्यज्ञानसुखा	१		

R. SK. S. LIBRARY
Acc. No...1117
Class No.

चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस
वाराणसी-१